

प्रकाशक
प्रदीपकुमार
श्री पूर्वोदय प्रकाशन
दरियागज, दिल्ली

●

मूलात्सङ्गे पारु रूपये
सर्वोच्चैः सुरक्षित
द्वितीय संस्करण १९
मूल्य चार रूपये

●

मुद्रक
ओम्प्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड,
बाराणसी (बनारस) ५४१६-१

प्रस्तावना

अग्ने इन कतिपय लेखों के संग्रह को मैंने 'पूर्वोदय' नाम दिया। यही नाम पुस्तक के प्रकाशकों ने अग्ने लिए स्वाकार किया है। अग्ने का चाहे तो एशिया का जागरण समझ लिया जाय। पर सही बात यह नहीं है। एशिया के जागरण में ध्वनि सान्नीत्य और ऐहिक। पुस्तक का पूर्वोदय स्वया आत्मिक है। उसका आशय है उस जीवन और जीवन-भूतों का उदय जिनका निवेश पश्चिम के देशों की मध्यम उन्नति है। उन मूल्यों के उदय के साथ उस उन्नति की ओर जा रही और पूरव के टाग, का पिछले मन्त्रों कात है, उठते हैं। मन्त्रों वही दृष्टि और वही शक्ति हमें द गये हैं। उस न्त में पश्चिम का भी पतन नहीं है, केवल ठोकर खाकर उसके लिए का का अन्तर है। दूसरे शब्दों में यह पूर्वोदय सर्वोदय का चरण है। मानव-भारदार का बड़ा भाग पूरव में जाता है। मानव के अवनत का विज्ञान बड़ा फल-पूरा हो, मानव सम्मान की संस्कृति का इधर में उठना है। सभ्य का अन्वय नहा कि व्यक्तित्व की सम्भावनाओं का सम्मान करनेवाली नाति के साथ ही मानव-जाति का मरिय हो सकता है। जो एक-पर एक बुद्ध उपजाता गयीं आर मनुष्य को रूचन मानकर उसमें शक्ति गयी है—उस विद्वति के चगुल में वाय अधिष्ठ का मानव पैसा नहीं रह पायगा। वह प्रतिनिधि मानव अदरस घनी भी अंग्य हो रहा और अपने द्रष्ट त्वात्प्य में लीन आना चाह रहा है। निश्चय ही इसके लिए वह पूरव की ओर देख रहा है।

७, दरियागज
दिली

११ १० ५०

—चैनेन्द्रप्रभुमार

प्रकाशकीय सूचना

श्री जैन-द्रकुमार के विचारों की मालिकता मार्मिकता और वेग-शीलता के विषय में कुछ कहना हमारे लिए अनावश्यक है। इधर के उनके लेखों, भाषणों और प्रश्नोत्तरों के सकलन प्रकाशित करने की हमने योजना की है। सामग्री का निर्वाचन पद्य वर्गीकरण सांस्कृतिक साहित्यिक, दार्शनिक और सामयिक, इस प्रकार चार खण्डों के अन्तर्गत किया जा रहा है। प्रश्नोत्तरों को अलग से छापा जायगा। यह 'पूर्वोदय' पुस्तक उम विचार धीमा का प्रथम सांस्कृतिक सकलन है। शेष सप्रह भी प्रेस में दिये जा रहे हैं और वे जल्दी प्रकाश में आयेंगे।

—व्यवस्थापक

विषयानुक्रम

सर्वोदय १—३८

१ गांधी नीति सर्वोदय	३
२ सर्वोदय की नाति	७
३ सर्वोदय धनमान और भविष्य	११
४ सर्वोदय	२५
५ पूर्वोदय	३१

गांधीजी ३९—१२२

१ निरपेक्ष मानव गांधी	४१
२ समुक्त मानव	५०
३ गांधीजी का अखण्ड योग	६१
४ गांधी-नीति	६७
५ गांधी और विश्व-व्यवस्था	७९
६ अगर गांधीजी होते ?	८७
७ गांधीवाद का भविष्य	९५
८ नाति या राजनीति ?	९९
९ गांधी धर्म और कमवाद	१०४
१० गांधीजी और हमारी राष्ट्रियता	११४

३ अहिंसा १२३—१४४

१ अहिंसा का षड	१२५
२ अहिंसा और मुक्ति	१३०
३ अहिंसक आरम्भ	१३७

४. संस्कृति	१४५—१७६
१ संस्कृति की भाषा	१४०
२ संस्कृति और विकृति	१५२
३ संस्कृति धार संकट	१६०
४ रोदी का मोर्चा और संस्कृति	१६९
५ शान्ति : युद्ध	१७७—२१२
१ शान्ति और युद्ध	१७९
२ युद्ध की जगह शान्ति का उपयोग	१८९
३ युद्ध और भारतीयता	१९८
४ तोप और हथ	२०५
६ अपरिग्रह	२१३—२४०
१ सब छोड़ो	२१५
२ दिगम्बर	२२२
३ अपरिग्रह और द्रुस्तीशिप	२३०
७ स्फुट	२४१—२६४
१ भारतीय जनतन्त्र	२४३
२ ध्येय नहीं नित्य कृतव्य	२५१
३ उपवास और लोकतन्त्र	२५३
४ निरासक्तवाद	२५८

पूयोदय

११

सर्वोदय

गांधी-नीति सर्वोदय

गांधीजी के जाने के सिन्धु में मेरा ध्यान नीचे लिखी बातों पर जाता है

(१) श्वर उन्होंने मृत्यु को मित्र-रूप में याद किया था ।

(२) प्राथना के समय अपने और अन्य के बीच किसी अधिकारी के अधिकार को जाने की दृष्टि नहीं दी थी । कहा था, वहाँ काह चाहे तो मुझ खुले मार सकता है ।

(३) कहा था, श्वर उगना चाहेगा तब फोड़ इन्तजाम मुझ यहाँ रख नहीं सकेगा । और

(४) गोली लगने पर उनके मुँह से 'इ राम' निकला था, हाथ सबके प्रति प्रणाम में पुं थ, और जैसे किंचित मुस्कराहट से प्रयाणनेला पर टहाने अपनी कृतापता यत्न की थी ।

इन बातों से लगता है कि गांधीजी नहा पसन्द करने कि त्याग हत्या पर और हत्याकारी पर रुकें और राम के नाम को आर उसक ध्यान का इया जैसी तुच्छ घटना पर कुवान कर द । सदा उन्होंने कहा कि श्वर का मर्जी के बिना पता भी नहीं दिल्ता । गांधीजी का मानना है ता हम यह भी मान ल कि श्वर की ऐसी ही इच्छा रही होगी ।

गांधीजी के शब्दों को हम याद करें । उन्होंने कहा था, बुराद का हस्ती नहीं है । बुराद अपने आप में टिक नहीं सकती । टिकने को उसे सहारा चाहिए । यह हत्या निश्चय बुराद है । हत्यार का नाम गोहसे कहत हैं । उस गोहसे को लखर कुछ सहारा था, नहीं ता वह काम उससे नहीं बनता । लखर उम्ने माना कि वह कुछ बढ़िया काम कर रहा है,

और उसे बड़ा मिलेगी। उस बहादुर समझा और कहा जायेगा। इस सहारे पर ही उस पाप का बटने और चटने की हिम्मत हुई। नहा तो पाप कातर और स्वयं मं मुदा होता है।

सवाल है कि क्या हम और आप उस गाडसे के काम के लिए सहारा रहे? यानी गांधीजी के जाने पर जो तनिक भी चिन्तित और विह्वल हैं, उन्हें गोडसे नामधारी की तरफ नहीं, अपने दिल के अन्दर देखना है कि उसके काम को क्या उनका भी सहारा नहीं रहा? गोडसे हम-आप से अलग नहीं है। हम-आप उसके इस काम से, या जैसे दूसरे कामों से अपने को अलग कर लेते हैं, अपना सहारा वहाँ से लीच लेते हैं, तो निश्चय है कि जैसे काम और उन कामों के करनेवाले नहीं रहनेवाले हैं।

सरकार धर-पकड़ कर रही है। भरोसा है, वह अपने भरसक करने में कसर न उठा रखेगी। पर बेचारी सरकार क्या चीज है? आगाखों ने सच तो लिखा कि गांधीजी उस दिन, उस हालत, के लिए जीत थे जब फार रहेगी ही नहीं, इतनी पालतू वह चीज हा जायगी। यानी सरकारारी का घस थोड़ा है। यह तो बेजान मशीन है। पुलिस, अदालत (जेल से आगे उसकी पहुँच नहीं है। तभी तो गांधीजी सरकार न थे, रुभी होनेवाले थे। यानी कांग्रेस और कांग्रेसी हुकूमत राष्ट्रीय स्वयं-सेवकों को एक सपाट म नाबूट कर दे, तो भी चलनेवाला नहीं है। वह साकारी काम है, असल काम दूसरा है, और वह फिर भी बाकी है।

एक मत या दल दूसरे दल को दया दे या मिटा दे, यह बन सकता लेकिन सिर्फ ऊपरी आँखों के लिए। ऊपरी ये आँख सग्न धोस्ता देता र धोन्वा ग्वाठी रही हैं। ऐसे हिंसा का हिंसा से काटने की कोशिश तो नहीं है। लेकिन उससे गॉठ भी नहीं कटी है, शमेल्या आर उल्लसता गया है।

यह शमेल्या हिन्दुस्तान का ही एक ग्यास मसला नहीं है। दुनिया में

मी वही है। इसी गांधी का प्रयोग हिन्दुस्तान में, और उसका गरा, हुआ मही, पर वह सारा दुनिया के लिए था। असल में तो सत्य और अहिंसा का प्रयोग गांधी ने अपने प्रति निम्न होकर आर आने का मगवान का दया बनाकर किया। जागते-जाते, अन्त-अन्त, हर एक आना सारा वह दिये रह। क्या मी अपने को सिखाने नहीं दिया और उनका अन्दर और बाहर के शैतान का हर फल उनसे ललकार और चुनता मिला रहा। भारत का राष्ट्र उनके सत्य और अहिंसा के प्रयोग का माध्यम मात्र बना। गांधी राष्ट्र या राष्ट्रीयता के नहीं थे, राष्ट्र और राष्ट्रीयता उनसे मी। वह तो राम के ध और राजनीति में मी 'राम-राज्य' के लिए ही उनका प्रयत्न रहा। राम-राज्य, याना इस दुल और उस दुल का नहीं इस मत या दूसरे मत का नहीं यह तत्र या वह तत्र नहीं कौनिक प्रेम का राज, सयका, पंचायत का राज। किसी राज का नहीं, हर धर्मिक का राज। वह राम-राज्य का जन्मत पत्तन पर उदर कल्पित मा हो सक, और या एकलम विकल्पित हो।

ये प्रयोग संरग और भूगोल की दृष्टि से कितने मा मामित हों, इतु में मामित नहीं थे। यानी सारा सकार और आगामा सारा इतिहास अन लिए उनमें सामग्री और प्रकाश सोजता और पाता रंगा।

हमें, हममें से प्रत्येक का, अपने तह गुद हागा है। दुष्ट साधु से अलग कब है? इसलिए वा जितना साधु हागा, वह उतना हा दुष्ट का और दुष्टता को आने अन्दर दखेगा। मी अभ्यास का नाम है अहिंसा। यही है यज्ञ, यही ऋति यानी निरतर आत्मशाध, आत्मजागरण और आत्मशुति। काग, दुष्टता यदि बही है, और दुष्ट कार है, तो वह तमी है जबकि हमारा उसे सहारा है। धुन रहकर, दरकर, किनारा लेखन हम पुरार से यचने नहीं, उसे निमत्रा दत हैं। इसलिए मूट और नम्र अन्त योग या मयाग्रह उदर सुरार को सहज में परसुत और घटागी कर मूटा है। सय दुलन में आता है कि जिन दुष्ट याना बही अच्छा दन जाता है।

संस्कृति की सहज सम्भावनाएँ तब किसी मं से पिलती और जीवन को परिपूर्ण बनाती हैं।

कौन कह सकता है कि दुनिया में कुछ भी या कोद भी एकदम 'यथ है' ? फिर भी एक दूसरे को व्यथ करने की जा चेष्टाएँ दुनिया में चल रही हैं, और सम्भावित स्वर्ग को यथाय नरक बनाये हुए हैं, सो क्यों ? निश्चय ही किसी अमुक को व्यथ करने की कोश नयी चंष्टा धनकानेक सदियों में सं चल आत हुए मानव विकास को आगे बढ़ानेवाली नहीं हा सकती। उस विकास की साधक नीति तो एक वही हो सकती है जा प्रत्येक को सफल हुआ देखना चाहती है जो एक की सफलता दूसर की विफलता में किसी तरह भी देन्धन को तैयार नहीं है। जा इस तरह सर्वो दय में योग देती है, उस नीति का नाम है 'गांधी-नीति'। उस नीति की व्याख्या, व्यवस्था, प्रयोग, उदाहरण और चित्र का नाम है 'गांधी-जीवन' आर उस चित्र के सार भाग को समझने के लिए दो शब्द का सूत्र है, सत्य और अहिंसा।

गांधी की महिमा तो रूप में अनन्त है। उसका देखे जाइये, गाये जाइये—मला कहा उसकी याद है, कहीं अन्त है ? इसलिए इस विभूतिमय जीवन के ऐश्वर्य में नहीं जाना है। उसकी निपटता को ही जान और पहचान लेना है। यह है, हर क्षेत्र और हर समय की हर समस्या के लिए सत्य आर अहिंसा में सं समाधान प्राप्त करने की प्रतिष्ठा और तत्परता।

कौन नहीं जानता कि दुनिया आज ज्वालामुखी के मुँह पर खड़ी है। क्या चिनगारी प्रलय भस्का उठेगी, का कह नहीं सकता। ऐसे में गांधी ने उठ जाने की और ईश्वर ने उन्द उठा लन की जा ठहरायी आत्मिक मानगे कि उसमें भी कुछ गुम ही है। अगर सचमुच गुम है, तो सिवा इसके वह क्या हा सकता है कि इस गहरे शाक के समय भारत, और उसके द्वारा जगत, उस नीति में भ्रष्टा प्राप्त करे कि जिसकी ओर विधाता ने एक अघाह अभाव हमारे बीच पैग करके हमारा ध्यान रखा है।



सर्वोदय की नीति

नये समाज के निर्माण की आज चाह है। इस चाह में यह ता आ ही जाता है कि वह समाज रहतर होगा। नया हो, इतना भर काफी नहीं है। यों तो कभी पुराने से ऐसा जी ऊत्र जाता है कि कुछ भी नय पर वह ललच उठता है, फिर चाहे पहले से वह बदतर ही साबित हो। आंदोलनों म पढनेवालों में ऐसे लोग हो सकत ह, जिनके पास मौजूदा समाज से असन्तोष ज्यादा है, भावी समाज की कल्पना उतनी नहीं है। केवल असन्तोष की यह प्रेरणा विधायक नहीं होती। वह बनाती कम है, बिगाडती है अधिक। 'नया समाज' कहकर आज का हालत स असन्तोष तो हम जतगत ही ह किन उस असन्तोष के साथ आत्मी समाज जो हम लाना चाहते ह, उसका विचार भी होना जरूरी है। नहीं तो खाली असन्तोष में हम बने को ही गिरायगे, उसकी जगह कुछ नया बना नहीं पायगे। पुराना ग टेन से नहीं, अभी से नया निर्माण करने लगने से नया समाज बनेगा।

समाज पदाध की तरह की चीन नहीं है। वह यजान नहीं, जानदार है। इसलिए पण्य को जिस गणित के विज्ञान के उखल से हम तोडते जोडते ह, ये ख्यों-के ख्यों समाज की रचना म काम नहीं भेते। समाज की इकाई आदमी है और आदमी म मन है। इसलिए समाज की रचना का विज्ञान कुछ दूसर तरीके का होगा। वह भानभिकता से जुडा होगा और उसकी नव-रचना बाहर के प्रहार से नहीं हा पायेगी। वैस लकड़ी को लोह के औजारों से नाप-काटकर हम चीन तैयार करते ह, वैसे समाज के मामले में हमार पास लकड़ी अलग और उसको छालने-काटनेवाले

औजार अलग नहीं है। हम ही औजार हैं और हम ही वह हैं जिनको गढ़ा जाना है। इस तरह समाज का निमाण आत्म निमाण हो जाता है। समाज से हम अलग नहीं और समाज हमसे अलग नहीं है। तब कोई भी उसूल, जो हमारा तो नहीं बल्कि समाज का स्वेच्छा-जोखा दत्त है, बसल उसका मुधार और निमाण करते हैं, ऐसे परिणाम कैसे ला सकते हैं ?

चुनाचे काम करनेवाला म दा पोंते रेगने म आती है। एक, जो मानते हैं कि सारे साधना और धार आदमिया को 'स्टेट' के अधीन में पहले एकत्र कर लिया जाय, फिर सब में सम-व्यवस्था और समान वितरण सहज हो जायगा। बाधा बनने को तब कोई चीज बीच में नहीं रह जायगी। ऐसे लग सगठन बनाते और राजनीति चलाते और उपजाते हैं। वे दलों की सृष्टि करत और उसी भाषा में उन्नति देखते हैं।

दूसर जो मानते हैं कि यात ऐसी नहा है कि मुधारा जानबाला एक हो और मुधारनेवाला दूसरा हो। समस्या का यह रूप मिलता है कि बखेडा बन जाता है। यानी एक विषम चन पैदा होता है जो बटता नहीं। समस्या चेतन की है, सृष्ट की नहा। सो चतना का सस्कार करना होगा। वह काम सदा अपने से शुरू हो सकता है। वह सगठना का नहीं, साधना का है। वह बल पर भी मौकफ नहीं, इस घड़ी से ही शुरू हो जाता है। वे कहते हैं कि खुदी से हम न चल, बल्कि सवा की, यानी दूसरे में अपनी-सी, भावना रमन काम वैस ही और उसी भावना से करें त्याग हथियाना और बगोरना न चाह, जरूरी जितना ल लें और नक्य जितना उपजाते और बनाते चले जायें। एस एक चते, थोड़े चले, अधिक चल ता आपही आप नया समाज उम चलेगा। उसम विषमता न होगी स्पदा की जगह यहाँ स्नेह हागा, क्षोण की जगह सहयाग लेगा और आत्मी की शक्ति जो एक दूसरे को पीठे और नीच रखने में लगती है, एक-दूसरे का सदान और उठान में काम आयगी। तब हम देखगे कि आत्मी की समस्याएँ खुद उन्नति परती जाती हैं। समस्याओं का मिटना ता नहीं है। तब ता सिन्दगी ही मिट

जायगी और पुरुष का अर्थ पुरुषाय ही मूल्य हो जायगा। नहीं, बल्कि सम्स्याओं का धरातल उठेगा और नॉन-सेल्-सुक्की की चे न रह जायेंगी। वे सामूहिक और नैतिक होंगी। तब आदिमियों की होड़ आर्थिक न हारर पारमार्थिक होगी।

भारत की राजनीति को मौका नहीं है कि यह माने कि बिना नीति के राज-काज चल सकता है। नीति यानी धर्म-नीति, डिप्लोमेसी नहा। नैतिकता का याद लेकर स्वयं विग्रह का राजकारण आगे नहीं घन्टा। साथ ही गार्गीना से यह भी प्रत्युत हो गया है कि अध्यात्म न किफ सकार स विमुक्त नहीं है बल्कि सकार के अभाव में यह अयुक्त और पीला हो रहता है।

इस तरह यद्यपि ऊपर के दो, मौक्तिक और नैतिक, दृष्टिकोणों का अन्तर गहरा और मालिक है, फिर भा विचार का गुञ्जाण्ड नहीं रहती। जा चतना का छाड़कर याहरी परिस्थिति ने चूझ रह है, ऐसे सञ्चारिकों न अटक और दिलगे बिना सत्कारिकों का काम चलते रहना चाहिए। चुनाव का और दलवाद का काम उस प्रकार का दूमान और म्भाव रन्वन्वाल् लाग क्यों न करें ? न्याद-स-ज्जाण यही हो सकता है कि कुछ उसका रचनात्मक न मान। ता ऐसे रचनात्मक विचार के लोग उस दल गत काम से अलग रहकर अपना काम किये जावें ता म्बय उन दलों का सदयाग उनका मिला सकता है। बल्कि रचनात्मक काम एक हा साथ सब दलों का ताकत पहुँचानवाला है। यह तो जर्मीन है जिस पर हर बीज का पडना भाग वहाँ से रस लना है, नहीं ता यह जड न पक्क पायगा।

'रचनात्मक' शब्द इधर बहुत चलता है। जिमकी ना करना हाता है, उमी का रचनात्मक कहकर वह पद करता है। गांधीजी ने जा एक नयी भाषा हमें दी, उससे कम्पिनाइ भी कुछ घने है। व्यवहार नैतिक दाय्यों के सहारे चलने लगा है। इस दाय्य से यहाँ तक कहा जाता है कि जहाँ अन्दर पाप हो, वहाँ मुँह पर घन पाआगे जहाँ भीतर पात हा, वहाँ ऊपर मिलाय होगी। यानी आत्म-जाद और नीतिवाद जहाँ है

दफ़ोसल्ला है, ऐसा प्रवाद हो गया है। यह कठिनाई बट तो गयी है। कारण, संजय और अविश्वास बढ़ गया है। फिर भी उसे पार करना है, इतने मात्रसे रचनात्मक शब्द और काम से पिंड छुड़ा नहीं लेना है। रचनात्मक वह है जा—

(१) भ्रम से पदाथ की उत्पत्ति या निमाण करे, और

(२) आपस में सहयोग साधे और उसकी बाधा का हटाये।

दूसरी कोटि का काम भावना और प्रचार का है। जात-पाँत और रग-रीत का भेद, ऊँच-नीच का विचार, अपने-अपने धर्म का अभिमान ये और ऐसी बात सहयोग के फलव में रुकावट होती हैं। इसी से ये फिर स्वार्थों के पोषण में सहायक होती हैं। इन्हें गिराना और जीतना होगा।

पर मूल रचनात्मक है वह जहाँ भ्रम में सं पत्यर्थ पलता है। इसके बिना भावना प्रचार का काम भी बेजान रहता है। प्रेम नहीं हाँ पाता। प्रेम का प्रचार किसने नहीं किया ? साहित्य ने किया, धर्म ने किया, सब समझदारों ने किया। पर उस प्रेम के नीचे स्वार्थ भी मजे में पलता गया। जिस प्रेम में अपनी और अपने की घुरगानी हो, वह प्रेम तो विरलों के हाथ आया। अधिकतर वह भावना में समाकर और सूखकर रह गया, और व्यवहार को अछूता छोड़ गया। नतीजा यहाँ तक कि धनी ही धर्मों की गहनता का शेष रहा। यानी, भावना को भ्रम में उतारे बिना बात पूरी बनती नहीं। भावना तक बात व्यक्तिगत रहती है, कर्म में उतरकर ही वह सामाजिक रूप लेती है। भावना एकाकी है कम सहयोगी। भक्त भ्रमिष्ठ न हाँ ता हाँ भरता है कि उसकी भक्ति उत्कृष्ट दीन, पर वह भक्तियोग न काट। वह असामाजिक भाँटा बनती है कारण, वह अनुत्पात्क ही रहती है। अब व्यक्ति पदाथ को उपयोग में लाये बिना, और इस तरह उसे चुकाये बिना, तो रह नहीं सकता। वह खाता है और कुछ-न-कुछ रखता और पहनता है। तो पत्यर्थ उपजान में भी उसका भाग दाना चाहिए। भ्रम सं छुट्टर भक्ति माना इस कथय से भी छूट जाती है। तब वह नैतिक की जगह पायद कुछ भावुक भी हो जाती

होगा। भावुकता अनजाने अपन नीच एक विशेष प्रकार की निममता की धरती बना या बचा छाडती है। यहाँ असामान्यता की जड़ शय रहती है और वह कटती नहीं, बल्कि अन्दर-ही-अन्दर फैलती रहता है। ऐसे व्यक्ति में और समाज में घोर द्रव्य पैदा हो जाता है। तपस्वा स्वलिप्त होता है और मन मालगार बनता है।

इस प्रकार 'रचनात्मक' में मुख्य शार है यज्ञार्थ किया गया उत्पादक भ्रम। उत्पादक का मतलब है जगानिक। बवल भ्रम स नहीं चला। न इतना काफी है कि वह भ्रम कुछ ता भा अपना दे। नहा, उसमें वैज्ञानिक व्यवसाय-बुद्धि को भी लगाना हागा। तब वह सही माना में रचनात्मक हा सधगा।

शाक की तरह आष पशु चला चला लिया आर वह रात भी चलाया, पर सूत का हिसाब नहा रक्त्वा, आग उसके बुनगान आदि में लापरवाही की ता वह काम भावनात्मक ता हुआ, रचनात्मक पूरा नहीं हुआ। उसमें मानसिक सन्ताप कुछ हमका अवश्य हागा पर नन समाज की रचना की नींव नहीं पड़ेगी।

समाज आदमियों की बहुतायत का नाम नहीं है। उस बहुतायत से तो भीड होती है। समाज आपसी सम्बन्ध स बनता है। सख्या आर भूगोल में सामाजिकता नहा है। इसलिए आपसा सम्बन्ध में जितनी गहराई, ऊँचाई आर घनता होगी, उनमें मयादा और व्यवस्था हागी, उतना हा समाज विकसित समझा जायगा। यों माता और पुत्र में अन्तर होता है दानों किसी लिहाज से बराबर नहीं हा सकने आर नहीं कि ब जा सकने। जात्रिक बुद्धि चाह सकती है कि दानों अपने अधिकार में बराबर हों पर माता तब तक तृप्त नहीं हा सकता जब तक पुत्र का उसके अधिक न मिल, न पुत्र तब तक शान्ति पा सकता है, जब तक कि माँ स माँगने और पाने का, अपना छान बनने का अधिकार उसके पास सुरक्षित न हा। परिवार की शक्ति इतमें नहीं है कि सब में समानता हो। व ता इसमें है कि उनमें सहज स्नेह हो।

परिवार की यह उपमा भायुकता की छात्रा सकती है। पर इसी को वैज्ञानिक समझकर न चला जायगा तो हो सकता है कि हमारी सब कोशिशें एक नयापन तो हम दे द, पर ऐसा फलित न दीखे कि वह समाज पहले से बेहतर है। बेहतर वह समाज हो ही नहीं सकता जहाँ पर हर एक की आँख अपने और इसलिए दूसरे के धन पर है। ऐसे समाज में तो विकार मुल्यो ही रहेंगे। ऊपर कानून में जोर से कितनी भी शान्ति और सुरक्षा हो, भीतर तो लपलपाती जीम होंगी, जो सदा ही खतरा रहेंगी।

समाज में जो असांमाजिक और विकारी तत्व हैं उनको जड़-मूल से नष्ट कर दिया जाय तो शायद में आसानी के साथ सुयवस्था लायी जा सकेगी—प्रचलित मतवाद कुछ इसी कक्षीर पर सोचते हैं। उनके दल फिर उसी नीति पर चलते भी हैं। पासिस्ट मानवता का दुश्मन है, एक हाथ से उसका सफाया किया कि याथा ही सब मिट जायगी। इसी तरह इम्पीरियलिस्ट, कम्युनिस्ट, कैपीटलिस्ट आदि आदि शब्द ऊँच उठाकर एक विनोद प्रकार की मनोवृत्ति और राज्यनीति चल रही है जो सार इतिहास में चलती आयी है। वह इस तरह अपनी प्रभुता साधने के लिए शत्रुता उभारती और शान्ति के नाम पर युद्ध मचवाती है। इसको विशान की भाषा ने द्रुद्रात्मक भौतिकवादी विशेषण दिया है, जो बहुत उपयुक्त है। उस वृत्ति के लिए यही यथाय तत्व-दर्शन है और विग्रह ही मांग है। अमुक की पराय की भाषा में वह अपनी (जिसको वह मानवता की कहती है) विजय मानती है।

व्यावहारिक, सांसारिक, आर्थिक और यादृक्-वैज्ञानिक नीति इसके पार जा भी नहीं सकती। प्रत्यक्ष द्रष्ट उसका चरम सत्य है और अद्वैत यति उसके लिए है ता कल माया के रूप में है।

किन्तु एक दूसरी भी नीति है। उसको कहें 'सर्वोत्थ'। यानी एक के उदय के लिए दूसरे का अस्त चाहना भूल है। सर्वोत्थ अर्थात्मी की नीति के तौर पर तो मान्य रहे, कम की नीति के तौर पर वह अक्षय्य हो जायगा—ऐसा अनेक क्षमियों का आग्रह है। फिर भी कुछ ही निष्ठा

है कि कर्म की भी सच्ची नीति यही है। ये उस सब कर्म का इकार करने को तैयार है, जो सर्वोदय के कोटे पर सही नहीं सुल्टता। उनका मानना है कि ऐसा कम प्रपंच रचता है, बंधन धनाता है, आजादी नहीं लाना।

गांधीजी के बाद अभी जमाव हुआ था, जहाँ कुछ लोगों ने घोषणा की कि वे कर्मा हैं, कर्म में रहगे लेकिन उस समस्त कर्म में और उसने जरिये उन्हें सर्वोदय को ही साक्षित करना और साधना है। सर्वोदय समाज के इस ऐलान में वे सब लोग शामिल थे जो गांधीजी के चलाये चौट्टह सुप्रसाले रचनात्मक कामजम में लगे रहे हैं। उनका मानना है कि वह काम हिन्द में होता रहा है सही, लेकिन उसमें तो दुनिया के सवाल का भी हल है और दुनिया उसको मानकर और उस पर चलकर ही लड़ाई से छुटकारा पा सकती और शान्ति और उन्नति के लिए खुल सकती है।

सदा पर चलनेवाले समाज में सर्वोदय की और अहिंसा की नीति स रात कैसे चलेगा और समाज कैसे बनेगा या बदलेगा, यह सबल्य स जिसे समझ नहीं आता, उसे समझना समय नहीं है। तर्क से अद्दा आ भी कैसे सकती है। यह बुद्धि की नहा, हृदय की चीज है। अन्ग्राह भी एक है और इन्गर भी दूसरा नहीं है। फिर भी मतवादी बुद्धि दोनों म एक को नहीं दगपती, उनमें भेन दख चलती है और अनबन ठान बैठती है। इसलिए यह जा माया पर न्किकर नाम आर नारों के पीठे नहीं चलता, जो सीधा जानता और सीधा दिखता है, ऐसा हृदय ही उसको पा सकता और धार सकता है।

गांधीजी के बाद यह अब रयाली चीज नहीं रह गयी है कि अहिंसा से राजकान और कामकान भी चल सकता है। हिन्दुस्तान की आजादी खुद सबूत है कि अहिंसा में बडी ताकत है जो आत्मिक होने की वजह से भौतिक तीर पर धम नहीं, ज्यादा ही कारगर है।

वह दशन, जो विग्रह की माया से सचाह का ग्योल्ता और लेता है,

झमेले को निचटा पाया है ऐसा कहीं दीखता नहीं है। बल्कि उसे जब मौका मिला तो लडाइयों ही उससे पैदा हुए ह।

दूसरा आस्तिक दर्शन है। यह अद्वैत में निष्ठा रखता है और उससे कभी डिगने को तैयार नहीं। उसका सत्य अहिंसा है यानी, यज्ञ, कुरबानी, क्रॉस।

पहले में से मारना निकलता है। मरने के अन्दर खुद मरने से बचने की चाह छिपी रहती है। दूसरा मार बिना मरने की राह चलता है। यह दुनिया को कुछ उन आँखों से देखता है जहाँ दूसरे का फलना-पूलना अपना ही मालूम होता है और अच्छा लगता है। दूसरे की तकलीफ अपनी मालूम होती है और तकलीफ देती है। यह दर्शन दिखाता है कि बालक को पालकर माँ छीजती जाती है और बूढ़ी होती जाती है सही लेकिन बालक के बचने के साथ उसकी खुशी भी बढ़ती जाती है। यह मरती है तो यह भी दरती है कि बालक में वही जी रही है। यह प्रेम की राह है और दुनिया देखे या न देखे, यह प्रेम ही इस दुनिया को जिलाये रख रहा है। यों बेगों-बेटों में या माँ-भेटों में भी क्या कलह नहीं होती? यह कलह होती ही तब है, जब दोनों के पैरों तले मुहबत की जमीन है जिसे वही टुक भूल गये होते हैं।

मुश्किल यह है, और यह बहुत बड़ा खतरा भी है कि प्रेम जब हृदय की और भावना की सचाई है, तब कर्मेन्द्रियाँ अहंकार-जन्म बुद्धि से अनुमति लेकर चल पड़ती हैं। कम ऐसे धम से छूट जाता है। इसलिए सारे रचनात्मक कार्य को बराबर फसने रहना जरूरी है कि वह अहिंसा की कसौटी पर सही तो उतर रहा है न। बड़ा फल देनेवाला काम भी जड़ में गलत हो ता फँक देने लायक है। चला अमली अहिंसा है। अहिंसा ही चरखे में अमल न पा रही हो तो क्या वह सिर्फ लकड़ी ही नहीं रह जाता जो चूल्हे के काम की है?

दश अभी घँट चुका है। हिन्दुस्तान घट रह गया है जो पाकिस्तान से अलग है। गांधीजी के नीचे हम क्या सपना रते आये, क्या-क्या

सीखत और करते आये थे ? क्या हम न सोचते थे कि हिन्दुस्तान में सब कौमें एक होंगी और दुनिया के एके की ही उससे, यानी हमसे, शुरूआत होगी ? पर मुन्वी आर कौमी एकता तो नहीं हुई, उपर से रेखा आ गया । लेकिन सबमुच क्या दिल भी बँट गया है ? तब तो गांधी सबमुच ही भर गया और यह छूट है कि यह अमर है । लेकिन अमर अगर एकता ही नहीं है, एकता को बानी और एकता के काम ही अमर नहीं है, तो अमर फिर इस ससार में है क्या ?

गांधीजी कहते रहे कि दुःखदायी यनी हैं सही हिन्दुस्तान का दिल एक है । यह दा नहा हो सकता । कारण, हिन्दुस्तान का दिल बहो है, जहाँ इन्मानियत का दिल है । हमेशा से यहाँ अनेक घम, जाति और रंग के लोग आते रहे हैं और एक दूसरे का पहचाना और जानना सीखते रहे हैं । गैर मानकर आये, पर अपने उनकर रह गये हैं । आपस आपस की दुःखनी आर गैरियत कमी ला मित्रनी है, नहीं तो दुनिया का धीरान और नतम हो रहना है । सब भेद रहते हुए यह हिलमिलकर एक बन जाने की कला का उदय भारत में होता आया है । मनुष्य-जाति के निमित्त जैसे भारत अपने समूच इतिहास में से इसी प्रयाग को साधता आया है । भारतीय सस्कृति, भारतीय घम, अगर कुछ है तो वह इसी महाप्रयाग का परिपाक फल है । मानो यह भूमि अगत व लिए प्रयोग गाला थी, जहाँ से समन्वय के सूत्र को फलित हाना था । ताकि अब मान्यता पार आवश्यकता में है तब भारत उस परीतित प्रयोग को पूर वैज्ञानिक और सचिध रूप में दुनिया को नकर साधक हो सके ।

सर्वोदय-नीति की तरफ सनका आगा की निगाहें हैं । उन आगाओं को उठाने और पूर करन के लिए विधासियों को अपने कंधे तैयार कर लेने हैं ।



सर्वोदय वर्तमान और भविष्य

प्रश्न—राज के सर्वोदय समाज-सम्मेलन के बारे में आपको क्या राय है ?

उत्तर—मैं उसे सफल हुआ समझता हूँ। प्रस्ताव एक आया और विनोबा के सुझाव पर प्रस्तावक ने सद्भावना के साथ उसे वापस र्वाच लिया। यह सफलता का ही प्रमाण है।

प्रश्न—आपका निर्देश शायद श्री गुलजारीलाल नन्दा के प्रस्ताव की ओर है। उसके बारे में आपको क्या कहना है ?

उत्तर—प्रस्ताव अपने में क्या गुरा था, पर बात की गहराई तक शायद यह नहीं जाता था। भूमिका में एकाध वाक्य सरकार के लिए आलोचनात्मक थे जो गौरवही माने जा सकते थे। काला-बाजार की बुराई पर उसमें चार था। जिस उपाय माना जाय, उस बाजार में और काँबेबाजार में विभाजक-रखा सरकारी कानून की ही है न ? नैतिक कानून स दब वा खुला बाजार भी कोइ खास उजला नहीं रहता। वह भी खाया काला समझा जा सकता है। असल में आज की अधनीति ही आधी है। वह नफे के लिहाज से चलती है और सरकार खुद एक-यापा रिक संस्था बन जाती है। सर्वोदय माननेवाले कालेबाजार की बात कहकर उजले बाजार को अड़ता छाँ और उमना एक तरह अपनी सदी मुहर दे दें, इसे मैं तो अपनी तरफ से टीक नहीं मानूँगा। हुदमत का काम शायद अपने कानून की रक्षा पर रक जाता है। सेवक का काम उससे आगे जाता है। तीन हजार या अधिक तनगवाह पानेवाले की पीठ टाक कर, बाजिन स ज्यादा दाम लेकर घासलेट की बत्ती घर में जलाकर काम

करनेवाले दीन को लताउन म कानून की सेवा हा जाती हा, इन्सान की तो सेवा विशेष नहीं होती। इस दृष्टि से प्रस्ताव कुठ गहरा जाता था, एसा मर मन को आश्वासन नहीं है। इससे मेरे मन म उसका समर्थन भी न था। यों अपने म प्रस्ताव निर्योप था। लेकिन अन्त म तो वह वापस रिच ही गया। इसलिए उसकी चचा करा। ध्यान में यह रखना है कि कम का दृष्टि एक है, घम की दृष्टि कुठ दूसरी है। सर्वोदय-समाज में दोनों तरह क लाग ई। विनाका की दृष्टि कार्मिक स अधिक धार्मिक है और यह सर्वोदय-समाज क भविष्य क लिए अच्छा ही है।

प्रश्न—उक्त प्रस्ताव से सम्मेलन में काफी गर्मी पैदा हो गयी थी। उसे वापस लेने पर समझो एगा कि सम्मेलन ने काइ विधायक कार्यक्रम उ ई नहीं दिया। है न ?

उत्तर—हाँ, एगा तो। आखिर लगभग दो दिन जिस बात का बीच म लकर बीते उसको कुछ मूत करनेवाला प्रस्ताव ही बीच से गिच गया, तो लोगों को जवाब एगा होगा कि चैने वे अक्षर में रह गये। बात यह दुखती रग की थी, चैने उस रग का छुला और दुखता ही छान लिया गया। कोर-कोर यह भाव लेकर गय हा कि यहाँ यातें उड़ी है, लेकिन काम स्थिर है, ता मुझ यहूत विस्मय न हागा। जानता हूँ कि वस्तुस्थिति यह नहीं है। प्रस्ताव पास न करन की दृष्टि क पीउ जररान्त पग पटा हुआ है। भीतर का वह घंग (दादनीमिम) ऊपर उभरा नहीं दीख पग, इसमें हम भ्रम में न पड। असल म सर्वोदय का काम सबका अपनी अपना आत्मा, इस तरह समामा, की तरफ अभिमुख कर देना है। किसी असुक प्रस्ताव की तरफ समझो र्त्तचने की कोशिश से वह नहीं हागा। इस आत्मालोचन की तीव्रता में से प्रचण गति उत्पन्न हो आनवाली है। आत्मशाप की यह प्रक्रिया उपर स गूंगी हो, चाचा में से जब उसरु पूटने का समय आयगा और कम में जब वह जगेगी, तब जान पडगा कि वह अमोत्र है। फिर भी अभिनेशन के व्यवस्थापका की कम-कुशलता की त्रुटि ही में मानता हूँ कि लोगों को एक अनिश्चय क भाव म विदा

होने दिया गया। उसी सभ्य प्रार्थना के समय विनोबा ने जो प्रवचन किया वही यदि अधिवेशन में हुआ होता, तो लोग अभाव नहीं, एक मिजली लेजर जाते। गूण्यता की जगह आगे के लिए उत्साह और स्फूर्ति उनमें भर गयी होती। पर हम मान कि सेवक उतना शब्द की अपेक्षा में नहीं है, वह आत्मोन्मुख है और बाहर के अभाव का अपनी श्रद्धा से भर देने के लिए कटिबद्ध है।

प्रश्न—आत्मशोध की आपकी बात सही है, पर अधिकांश लोग ऐसा कार्यक्रम चाहते हैं जिसका वे करें और जिसका परिणाम आँखा से दीये। सर्वोदय-समाज के सेवकों को क्या आप ऐसी कोई चीज सुझायेंगे ?

उत्तर—आँखा में दीपने के लालच को बचना देना अच्छा नहीं है। काम की कमी कहाँ है ? अनेक राष्ट्रीय कार्यक्रम तो समाज की रचना के प्रत्याश में ही पड़ा है। प्रश्न काम के अभाव या चुनाव का नहीं है। प्रश्न है कि उस हाथ के काम का और हृदय की श्रद्धा का सूत्र एक है न ? काम में से यह श्रद्धा प्रकट होती है तब काम बहुत छोटा होकर भी बहुत फल देनेवाला है। अन्यथा वह मात्र जड़ता का सूचक हो सकता है। काम में से अहिंसा नहा निकलती है, अहिंसा में से काम निकालना चाहिए। यानी प्रार्थना ही बाहर रूप लेकर काम बने तब वह काम अक्षम हाता और बंधन काटता है। यह दृष्टि जो काम पर अटकती है, परिमाण की भाषा में सोचने लग जा सकती है। यही राजनैतिक दृष्टि है। यह आर्थिक दृष्टि है और व्यक्ति की गणना इसमें अंक में होती है। इसमें फल की तरफ निगाह है। यह दृष्टि मिल और कारगराने गन्धी करती है जिसे आदमी सिर्फ हाथ हा जाता है। माना वह आत्मा या विवेक नहीं रहता। स्वर की भाषा में इतने आदमी का मतलब है—‘सा मनी ईड्स। आदमी की संख्या × काम करने के घंटे = फल का परिमाण। यह उल्टा दान सूत्र है। यह फामूला हम जानते हैं, गलत है। आदमी सचतन है और या तो वह अपना समझकर मन से काम करता है या पराया समझकर गाली मजदूरी के खातिर दमन से काम करता है। हम जानते हैं कि दानों

हालतों में फल एक-सा नहीं आ सकता। ऊपर परिमाण में एक-सा दीखे भी, पर एक में अहिंसा है, दूसरे में हिंसा है। सामाजिक दृष्टि से एक घम है, दूसरा पाप। एक में प्रसन्नता का और सामाजिकता का विस्तार होगा, दूसरे से नकार और घैर फैलेगा। इसलिए प्रश्न यह नहीं है कि फल यह हो कि वह हा, प्रश्न तो मुख्य यह है कि उसमें वृत्ति स्वैच्छित सेवा की हो। मूल में यह वृत्ति अनिनाय मानकर चरने से बढ़ नये के लिए किये गये भारी आयोजन हमें अनिष्ट ठहरते हैं। वही से विकेन्द्रित अर्थनीति अर्थात् व्यक्ति-केंद्रित अर्थनीति का सिद्धान्त प्राप्त होता है। इसी से आप पायगे कि सर्वोदय-समाज का ध्येय वहाँ नहीं है जहाँ पर कि वजन रखने और देने के हम आभी घनते आये हैं। राजनैतिक काम की धूमधाम में हमारी दृष्टि बहुसुगी जा हो गयी, उसका अनिष्ट चारों तरफ देखने में आता है। सर्वोदय-समाज को उस अनिष्ट से लड़ना है। इसमें बृहत् काम की भाषा में उसे सोचना भी क्यों चाहिए ?

प्रश्न—सर्वोदय-नीति पर चोखत हुए आपने अपने भाषण में कहा था कि रचनात्मक कार्य करनेवाले अनुभवी लोगों को सरकार में जाना चाहिए और अपने अनुभव का लाभ ग्रासन को देना चाहिए। इससे आपका क्या तात्पर्य है और इसके लिए आपके निश्चयात्मक सुझाव क्या हैं ?

उत्तर—हाँ, राजा और प्रजा के बीच इस घट भारी नासमझी है। आपकी ग्राह घट रही है और वहाँ दुभाव पैदा होता जा रहा है। राजा इस समय कौन है और प्रजा-सेवक कान ! दोनों ही अपने को गांधी भक्त मानते हैं। यानी एक ही गांधी कुटुम्ब के घे आत्मी हैं। तब दाना में अनदन और दुभावना कैसी ? यह स्थिति बहुत चिन्तनीय है। सन्नि अकारण भी इसे नहा कह सकते। गांधी की टक थी—अहिंसा। जिसने उ ह गोली से मारा, क्या नसर प्रति भी उनके हाथ नहा चुके ? और उन समय उनके मुँह में निकला—'दि राम'। उन गांधी का पिता मानने वाला राष्ट्र की हुकूमत का पौजी खच घट नहीं रहा है, घट रहा है। ऐसी

शास्त्र में प्रजा सबक शुभ हों ता उसे भी क्या कहा जाय ! पर क्या खेरु यह मानगे कि राजा आर प्रजा के बीच ता अहिंसा नहीं हिंसा चाहिए ? दूसरी हिंसाओं का ता लोग अनुचित मानने लगे ह । जैसे हिन्दू-मुसलमान के बीच, अन्त्यज और कुलीन के बीच, श्रमिक और धनिक के बीच विराध और हिंसा अनिराय और इष्ट नहीं है, एसा लोगो को दीवन् लगा है । लेकिन राजा के प्रति प्रजा में पर और विद्रोह जगामा जाय तो जैसे यह अभी भी उचित मान्द होठ है । यह हिंसा मानो हिंसा ही न हा, एसा कुछ घातावरण बना हुआ है । अथ-तर पर सगार रखनवाला ज पश्चिम का राजनैतिक विचार हमारे बीच आया ता इसन कुछ पेसी हवा पैदा कर दा कि जैत विद्रोह सनाठन और परम धर्म है । उसी परिपाटी में हमारा पिछला जीवन चला ह और चल रहा है । मेरा मानना है कि सर्वोदय-भावना के लिए इस जगह सन से भारी चुनौती है । कुछ मियराण जैस सरकार क प्रति सशनुभूति की कोर जगह रहने देना जरुगे नहा मानने । गांधी-परिवार म इस तरह का मनमुटाव अच्छा नहीं है । गांधी नीति क्या जीवन की समग्र-नीति नहीं ह ? उसम आदश भी है और व्यवहार भी । दाना यहाँ एषमएक ह । व्यवहार म अलग आदश की चितना यहाँ नहीं है आर आदश म जितना हल हा, उसम ज्यादा व्यवहार का रसना जैस यहाँ परिग्रह का रगना हो आठा है । उस गांधी-नीति का दुनिया कैसे मानगी अगर उसके चारिस राज-पत्र और प्रजा-क्षेत्र में काम करने वाटे हम लोग, समग्र भाव से नहीं चलकर दिरता सकगे ? यानी, जब शासन का शासन क रूप में भी अहिंसा की तरफ चाह फिर कितनी ही धीमी गति से हा, नहा बढ़ात छ जा सकगे ? सर्वोदय-समाज क सामने इस समय इससे बड़ा सनाल दूसरा है, ऐसा मैं नहीं मानता । छब क्या हा ? इस थारु म मन माना है कि मरी भयान्त सीमित ह । मैं ता समाज का सेवक भी नहीं बना हूँ । अपनी तरफ देखता हूँ ता मन हार जाठा है और सन्त्य बनने की हिम्मत नहीं हाती है । अपन मन की चिन्ता सेवकों क सामने रख देने स आग मुस क्या करना चाहिए, रूत नहीं पठता ।

राज्य में उतना ही मैं कर सका था। आगे विनोया जान और राज्य वापू जानें।

सरकारी नौकर इधर युद्ध पूर्व से पंचगुने हो गये हैं। ऐसे हम क्या टांगेनी-रिपनिज्म की आर जा रहे हैं ? नहीं जा रहे हैं सो तमस्री मन को नहीं मिलती। भरे मन तो कसौटी वहा सनातन सिद्धान्त है कि 'हुकुमत यह उतनी ही अच्छी जितनी कम हुकुमत है।' पर हुकुमत के पास अपना तर्क है, क्योंकि उसकी अपनी खास कठिनाइयाँ और ग्रास जिम्मेदारियाँ हैं। इस बीच घुमगोरी और भ्रष्टाचार की उसका निकालत है और मरको निकालत है। खाद्य के और कपण के और राजभरा के काम की दूसरी चीजों के भाव काद पास कम नहीं हो रहे हैं। दहात के आदमा की मुसारात यही जानता है। उसके आर ग्याने के बीच जान कितनी खपौणियाँ हैं। इस हालत में कुछ नहीं किया जा सका, शासित को अमहाय और शासक को स्वच्छन्द ही अनुभव करन दिया गया ता गानों के बीच का धैर आर विचोली खाइ में जीनेवालों का भोगाचार बनने ही वाला है। राज्य के शीर्ष पर है गांधी के लोग और प्रजा के फल-तल में भी हैं कुछ गांधी के ही जन। उन दोनों के ऊपर दायित्व जाता है कि शासक और शासित और राजा और प्रजा के बीच सामंजस्य बना रहे और जो थोटा-बहुत स्थानिक भेद बीच में रहे भी तो उनमें मुधास और सद्भाव उपने। यह नहीं हुआ तो भेद हमका रसा जायगा। भेद यानी विग्रह और युद्ध का दगन। कम्युनिज्म और क्या है ? अथ की भाषा में वह स्टेज कैपिटलिज्म (पूँजीवाद) है। नीति की भाषा में वह वैज्ञानिक हिमावाद है। हम निमित्त और सक्रिय अहिंसा से, और उसकी तरफ, नहीं जा सकेंगे ता हिंसा को हमारे बीच फलत और फूलते हो जाना है। दमन आर इन्फ्लेशन (नाटों के पैलाय) से न कुछ बचता है, न बनता है। इनके सहारे चल्कर सरकार नाग की तरफ बढ़ती है। मन की यही सन दुभित्ता थी जिमको लकर मुझमें राज्य में चोल्ने की धृष्टता बन पड़ी। इधर विनोया और राज्य-द्रवापू आर उधर नहरू और सरदार, इन चारों का मिलकर कोई तरकीब

निकालनी हागी। दुनिया की आँखों में हिन्दुस्तान का जुलु मिलाकर एक तरफ चलना होगा। वह तरफ अहिंसा की होगी तभी दुनिया अपने अंतराष्ट्रीय क्षेत्र में गांधी को अहिंसा को मानेगी। यह हिन्दुस्तान के हाथ में है कि गांधी को या ता दुनिया के लिए निरे सिद्धान्त का धादमी बना दे या उसे सच्चे लोकनायक और लोकशाहा का रूप मिलने दे। मेरा सचमुच मानना है कि इस सङ्कट के अन्तर पर हमारा अकिञ्चन मूक लोन्सेनक गांधी के नाम पर चलनवाली सरकार की सहायता का नहीं जाया, या सरकार उस सहायता से लाभ नहीं उठा पायी ता दोना डूंगे। अहिंसा का नाम भी टूटेगा, उसका काम भी डूय जायगा। रचनात्मक और पालामन्त्रियन या एन्मिनिस्ट्रेटिव काम में मेद हा, लेकिन शकट के समय उनमें हमें अभेद भी देख लेने की हिम्मत करनी होगी। सरकारी अमल घड़ी है, जा था। वह अफसरी भावना में पला पुसा है। काम सन्काइ की भावना से ही सधनवाला है। उस अमले का दिल एक दिन में कैसे बदल जायगा? एसो हालत में प्रजा के प्रतिनिधि हाकर जा अमलदारा के शास्ता बन हैं, उन्हें अपने उदाहरण से सच्ची सधनाइ दरखाना और सिखाना हागा। इसी से राज में मुक्त कइना हुआ था कि रचनात्मक काय में तरे हुए सेवकों को खाना जाार इस नये काम में परखना हागा। निश्चय ही वह विचार सयकं खामने है आर विनावा आर नेहरू के हाथ उस अमल देने का काम पड़ा हुआ है।

प्रश्न—सर्वोदय की कल्पना में ता विश्व-बहुत्व निहित है, तब राष्ट्रीय की राष्ट्रीयता को उसमें क्या स्थान हागा ?

उत्तर—विश्व-बहुत्व मनारम शब्द है। वह मुनते ता सग से ह। लेकिन जैसे व्यवहार की धरती का न हो, कुछ आसमानी हन का ही वह हा। इस तरह के विश्व-बहुत्व से सर्वोदय का काम नहीं चलेगा। उसमें यथायता शक्ति हागी। आज विश्व-रा में वेंग है। राष्ट्रीय सरकार उनका इकाइ ह। उन सरकार का तंत्र अलग अलग तरह का हा सकता है, पर उन्हें एकत्रित करके रखनवाली जाार दुगय के साथ उनमें नय

हार-वतन को नियमित करनेवाला चीन राष्ट्र भावना ही है। आगे साम्राज्य कैसे है कामनवेलथ है, राष्ट्र-समूहों की सङ्गना है अभी हाल का एन्ग्लिक पैक है, कम्युनिस्ट 'कामिनफाम' है और इन सबके मद यू एन० जो है लेकिन इनमें से कहीं भी राष्ट्र-वतना अनुपस्थित या अलगत नहीं है। तिम पर यह सब एक या अविन सरकार के सम्मान से उन है। सरकार के मित्रों से लोग मिलते हैं यह समझना महा महा होगा। नीच प्रजाओं में प्रत्यक्ष वतना यनी चली ही जाती है। हमारा कारावार आज के दिन नेग्रनलिया (राजिना) के आधार पर चलता है। जल्द हम इस मुविधा का उपयोग करते हुए धीरे धीरे इससे उच्चाण हा रहना होगा। यह काम तब तक नहीं होगा, जब तक हर दा राष्ट्र अपने सीमान्त पर फार्ती जावनी डालकर अपने का सुरक्षित मानने की जादत जारी रखने हैं। इस राष्ट्रवाद का नारा अपने को सबसे ऊँचा उठाये बिना न रहगा और उसके प्रचार और प्रार के नाचे कुछ मा और नया मुने के मिल्गा। इधर की सत्ता को दबना या दुपकना हागा जिससे उसके स्थान राष्ट्र-सत्ता में। आज हम इसी स्थिति में हैं। सर्वोच्च भाव राष्ट्र का स्वानार कर सकता है किन्तु वहा तब जहाँ तब राष्ट्र न्यय भगवत्सत्ता का स्वाकार करता और उस राष्ट्र पर चलने में मुविधा दता हा। वाना राजनीति वही चले जो निरपेक्ष नीति, धर्म-नाति का अनुपासन स्वाकार करे। ऐसे सिमा यानी स्पदा-विग्रह पर टिक रहनाला राष्ट्रान् ग्लव न्हरेगा। कारण, वह आगे पीछे अंतरा ीन तनाव वतान में याग न्नेसाग हागा। अहिंसा का अपने सब व्यक्तिगत, सामाजिक, साव जनित, राजकाय और अंतगामीय-व्यवहार के लिए एक सूत्र बनाना हागा। हममें जकि से लगाकर राष्ट्र या राष्ट्र-समूह तब किसी भी इकाई का स्थान महा है। मैं स्वयं रक्कर हिन्दुस्तानी भी रह सकता हूँ उन्हें कि इसमें दूसरे के या इतर-राज्य के साथ गरियत या विरोध का भाव गामत न हा। जाप देखेंगे कि यह बात स्वाथ का नीति मानने पर किसी भी राष्ट्र में पा नहीं सकती। मैं अगर अपने स्वाथ में विपदा हूँ तो दूसरे के साथ

मेरा विरोध टल नहीं सकता । ऐसे पक्ष और समस्या उत्पन्न होगी ही । इस तरह राष्ट्रनीति या राजनीति किसी भी बग अथवा राष्ट्र के स्वायत्त के संरक्षण को अंत और दृष्ट मानकर चलना चाहनी, तो शेष से मेल-जोल साधना उसके लिए शक्य न होगा । यानी सर्वोदय एक चलावनी है संसार के समग्र राष्ट्रों की राष्ट्र-नीति और सब कहीं की राजनीति के लिए । अपनी कल्पना को स्व-अर्थ और विप्रेक्ष से हटाकर परम-अर्थ और संग्रह तक ये नहीं उठा पायेंगे, तो उन राष्ट्रों को आपस में लड़ भरना होगा । लड़ना कोई नहीं चाहता, फिर भी लड़ना जो पड़ता है सो कुछ ऐसे ही आंतरिक कारणों से जो उन्हें स्वाधीन छूटते ही नहा हैं । अर्थात् किसी राष्ट्र की राजनीति तब तक नैतिकता की आर नहीं चल सकती, जब तक उस राष्ट्र का आंतरिक अथवात्र विकटित और मुद्रा के स्थान पर भ्रम में केंद्रित न हो । आप देखेंगे कि इस तरह सर्वोदय निरा नारा बनने नहीं आया है । उसमें पास समग्र दृष्टि है । और वह जबकि राष्ट्र और उनकी राष्ट्रीयता, जिनको उनकी अपनी-अपनी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परम्परा धामे हुए हैं, भंग नही करना चाहता है, तब परस्पर सामंजस्य लान का माग उनके आगे अवश्य खोल देता है ।

लेकिन यह सब मनसूजों का जम्पार क्यों ? भारत का अपनी राष्ट्रीयता जब तक कौटिल्यर घनी है तब तक भाग यातचीत यत्न का साहस ही क्या करना ! मेरे ग्याल में गांधी की जन्मभूमि, कामभूमि और धर्मभूमि यह भारत अपनी राष्ट्रीयता को सही लिंगा में नहीं माड सकगा तो इस भारत का फन्द्र बनाकर उठनेवाला नैतिक अभ्युदय का यह सर्वोदय आगोलन भी बहुत आगे बढ़ सकेगा, इसमें सन्देह है । हम सबका इतलिए धमी तो अपनी पूरी धाणिग इसमें लगाने में लगाना चाहिए ।

सर्वोदय

'सर्वोदय' पर जितना ही करना चाहता हूँ, गुरु करत उतनी ही उत्पन्न होती है। उन शब्द का ता आप जानते हैं। दक्षिण अमेरिका में गांधीजी ने रस्किन की पुस्तक 'Unto This last' का अनुवाद किया ता उसे नाम दिया 'सर्वोदय'। गांधीजी के गुरु जान पर उनकी नीति में आस्था रखनेवाले लोग पिछले साल सभाग्राम में जमा हुए ता उन्हें अपनी भावना व्यक्त करने के लिए सबसे उपयुक्त शब्द जेंचा यही सर्वोदय। सीधा उसका मतलब है, सबका उत्थ। यानी अन्न किया का भी नहीं। आज के जमान में हम लोग का अंदा लगना और जतनाना यही हिम्मत की बात है। क्योंकि गुरु उत्थ होता है ता क्या चाँद का तर अन्त ही नहीं जाना पता। इसी तरह हमें यह समझ में नहीं आता है कि एक जगह जाकर रहना ता दूसरा पीछे क्यों नहीं रह जायगा। याना एक बग के नर में अर उमर में दूसरा बग का थोड़ा बहुत गन्ना और उत्थ मन्ना ही है। ता मत भिन्ना हो, या हिन भिन्नी हो, तर एक ही रूप दोनों का उत्थ कर हा सकता है। अन्त एक के अन्त के साथ ही दूसरे का उदय है।

इसी तरह खुले आँसों देकर सर्वोदय की बात कुछ शब्दों का लग आती है, जो कामकाज में रहने नहीं सकता। अन्त निष्ठा है, निष्कलता है, और सुद की सम्पादन में हवा मन है—यह में आत्य की बात आसमानी आत्मी ही ता करेगा।

लकिन लोग ता सेवाग्राम में जमा हुए थे, अन्तनी उत्थ न थे। ये टास धरती के कामकाजों लग थे। अपनी उन्त हुए गुरु-उत्थान

या प्रथम चरण या सेवा के काम में जुटे लागे थे। कवि कोर उनमें बिरला ही होगा। कोरे सपनों से उठें क्या काम? रचनात्मक भ्रम में मन और तन तपानेवाले वे आदमी निग्रह और सधप की सूचना से अनजान न रहे होंगे। शायद उसकी अनिर्णयता भी जानते होंगे। फिर भी साहस बाँधकर दुनिया को उतारने कहा कि हमारी रहने की और करने की यानी तमाम जीवन की नीति 'सर्वोदय' हानेवाली है। अर्थात् जो अपना हमसे विरोध मानते हैं उनका भी हम भ्रम चाहते हैं। चाहने के साथ उनका भला करने में ही हम लगे रहनेवाले हैं। यही सर्वोदय है। अहिंसा का मतलब इतना ही नहीं कि हम किसी का बुरा नहीं चाहेंगे और नही करगे। नहीं, बल्कि हर किसी का भग साचगे और वह भला करने के लिए उनकी तरफ आगे बढ़ेंगे।

उन लोगों की यह घोषणा, इस दुनिया में जहाँ दुश्मनियाँ हैं और दुश्मन को दूर करना मनुष्यता के प्रति लोग अपना पहला दायित्व और कर्तव्य समझ उठे हैं जहाँ इस दुश्मनी का काम का सौन्दर्य और दर्शन की गरिमा मिली है जहाँ उसने समथन में सदियाँ में से मानव-बुद्धि ने शम्भार के रूप में अनुपम चमत्कारी आश्चर्य से हम सुसज्ज किया है—वहाँ मुठ्ठीभर लोगों का यह कहना दुस्साहस समझा जा सकता है। आपसी शत्रुता के घोर रव में उसे सुना-अनसुना किया जा सकता है। फिर भी उन लोगों ने जान-बूझकर ताल परखकर यह किया। साथ ही उन्होंने कहा कि उनके अपने लिए जब यह सर्वोदय-नीति प्रवृत्त ही है, तब यानी दुनिया के लिए भी उसके सिवा वहाँ शरण नहीं है। हिंसा से हिंसा कन्ती दीप्त, लेकिन गैर जो बच रहता है उसमें हिंसा और भी गहरी पैर रहती है। गरी इतिहास में क्या यही नहीं दीखता है कि हिंसा के उपाय से जितनी हिंसा कन्ती है, उसमें कहीं बचाव उगा जाती है। यह राह नहीं है शान्ति की और एकता की। शायद हिंसा फल है जो जगती पसल के लिए फिर बीज शक्ति हा जाता है। आदमी हिंसक नहीं है, लेकिन उसने अपना समाज कुछ ऐसा बना लिया है कि आपस में सहयोग की

सदस्य है, तो मालूम होगा कि जो अपने को कहे वही उसका सदस्य है। क्या उसके नियम हैं, तो जानने को मिलेगा कि सर्वोदय का विश्वास के अलावा कोई भी दूसरा नियम नहीं है। ऐसा समाज क्या किसी ने देखा-सुना है ? पर सर्वोदय-समाज को ऐसा ही बनना है। अघम का, पापी का बच्चे का, बूढ़े का—किसी का उसमें बहिष्कार न होगा। लोग, हम आप सभी लोग, सामाज्यों से लगकर रहने के आदी हूँ। गव मानत हूँ कि हम भारतीय हैं, क्योंकि भारत वह है जो एक सीमा पर समाप्त है। इस तरह अहंकार अपने लिए और दूसरे के लिए अवज्ञा मन में रखते हुए हम जीते और ऐसे जाने-अनजाने द्वारा उपजाते रहा करते हैं। अधिकतर उसीको काम करना और उन्नति करना हम माना करते हैं। इसी से सहसा यह सीमारैख्या हीन सर्वोदय-समाज संघटन के रूप में हमारे मन में पूरी पूरी तरह जमता नहीं है। लेकिन सर्वोदय गांधी के मनीषिया ने ऐसा ही आकार प्रकाशहीन उसे रूप दिया है। सच ही यह अभूतपूर्व रचना है जिसके लिए कोई अनात्मिय ही नहीं बचता है और जिसने इसीलिए जन्म लिया है कि सबको, सभी किसी को, एक आत्मियता में बाँध ले। अवश्य इसमें जगत् का सब प्रकार का नानापन समाकर भी अभुण्ण रहेगा। हरएक की निजता को पूरा पूरा वहाँ अयकाश होगा। कोई किसी पर न रोक बनेगा, न आरोप कारण, हर अपना उदय दूसरे के, और दूसरे के उदय में से ही देखेगा। ऐसे समाज में यह डर कि वह एक नये आग्रह और नयी अस्मिता को पनपायेगा वृथा ही मानना चाहिए।

उस सर्वोदय-समाज का इसी मात्र महीने में पहला वार्षिकोत्सव हुआ। इन्दौर के पास देहात में पूस की श्रौपडियाँ खड़ी हुई और तीन रोज के लिए वहाँ किसी को यात्रा न रहा कि बाहर समाज में वह बढ़ा है कि छाग है, राता है कि रक है।

समाज-समाजों के अधिेशन तो होते हैं और वहाँ प्रस्ताव पास हुआ करते हैं। प्रस्तावों से आना बँधती है और आने के लिए सकम्प स्थिर होता है। पर वहाँ प्रस्ताव ही फोर पास नहीं हुआ। इसे क्या प्रस्ताव कहें

कि तब हुआ कि साधु के समान साधन का भी गुद हा ग्वना हागा । यह भी जाहिर किया गया कि दण विदश का इसमें फक नहीं है और सर्वोत्प्य में सभी का स्वागत है । बहुत-से दशों से हागों के पत्र जाये थ और कुछ उनम बहुत ही बन्धिया पत्र थे । सभी में चाहा गया था कि सर्वोत्प्य में उन्ह भी सम्मिलित समझा जाय और वहाँ एकत्रित बना ने हृत्प्य से उन्हें अपना मान लिया था ।

वैसे एक प्रस्ताव भी आ गया था । उस पर चचा हुई और स्वाभा विवेचन हुआ । अत में विनाया ने समझा दिया कि प्रस्ताव का मतलब इतन में हा पूरा हा गया कि उससे हमें आत्म मामाया का असर मिला । आग हमें किसी को भी पास-बन् नहीं करना है । सरका लत्र उन सरफ अदर ही बैना हुआ नहीं है क्या कि तत्र बनन का कष्ट हम अपन ऊपर ल ? आप विनाया का जानत हा होंग । सर्वोदय-समाज की वह आत्मा है । शायद इसीलिए वह उसके सम्प्य भी नहीं है । तर पद-बद ता उनक पास क्या ही पहुँच सकता है ।

अन समय हाता है और मुक्त रात खतम करनी है । सच यह कि में धरराया हुआ हूँ । क्या आप धरराये नहीं है ? बाहर घमसान मचा है । सचमुच ल्पाद अगर टिणी हुई नहीं है ता क्या इससे हममें से किसी का जरा भी गत्स पहुँचता है ? ल्पाद ऊपर नहीं है । किन भीतर क्या कहा किसी तरफ से उसम कर्मी है ? गायद हमें सर तरफ अँधरा दीवता है । एक था, जिसे हम याप कहत थे । वह भी हमें छाटकर चल दिया है । पर दण तो वह टाक ही गया है । नहीं तो अपनी आँगों दखना और अपने परों चल्ना हम सीपत कंस ?

लकिन गायद धोरता इसीलिए है कि हम प्रकाश के लिए विकल हों और उसके लिए अपन को टगोर और पायें । अँधेरा बना सभी न हाता है जब उसके फटन का बत्त आ पहुँचता है । तर दखत गवन कालिमा में से लालिमा फृती है, जा उजली धूप का आनाहन बनता है ।

क्या आप मानगे कि सर्वोदय-समाज भित्तिज पर उठी आशा की यह लाल लक्ष्मी है। लाल यह लहू से नहीं है, केवल रज्जु से है। आप चाहें तो यह कुछ देर में भी मान सकते हैं, जब यहाँ से प्रकाश उजला होकर फूट घलेगा। किन्तु मैं आपकी अनुमति से आज ही यह आशा अपने मन में रख लेना चाहता हूँ।



पूर्वोदय

सर्वोत्पन्न शक्ति परित्यक्त है। पूर्वोत्पन्न उर्जा की नकल में निकला हुआ कुछ होगा, एसा लग सकता है।

पर एतद्वक्त का आरम्भ एसा नहीं है। सर्वोत्पन्न मावना है। उन माना घटना घटने चक्रों का सर्वोत्पन्न का रूप पूर्वोत्पन्न होगा, यह उसका विश्वास है।

उत्पन्न हम स्वयं चाहते हैं। पश्चिम का आरम्भ पूर्व का दिग्गम का अन्तर्गत का। लेकिन पश्चिम का दुष्प्रभाव पूर्व का आरम्भ की अन्तर्गत में अन्तर्गत का, वास्तविक रूप हमें ज्ञात है। इसमें सर्वोदय आरम्भ का अन्तर्गत पूर्वोदय आरम्भ अन्तर्गत के आरम्भ से उसे आना होगा।

अन्तर्गत का हम अन्तर्गत समझ सकते हैं, लेकिन पूर्वोत्पन्न का स्वकारण बनने में कदाचित् मानसिक गति उत्पन्न हो सकती है। कारण, पूर्व शक्ति दुनिया का वास्तविक नया नया दिनों में बँटता है। दुनिया एक है, आरम्भ हो रही है। पूर्व का अन्तर्गत चाहते हैं इन एतद्वक्त में पूर्वोदय का अन्तर्गत है। माना पूर्वोदय में पूर्व की आरम्भ की अन्तर्गत का निनाद है। अन्तर्गत सर्वोत्पन्न का अन्तर्गत के रूप में हमें स्वकारण करना अच्छा लग सकता है, उन पूर्वोत्पन्न के रूप में उन दिग्गम से अन्तर्गत का अन्तर्गत ही हमें हो सकता है।

महा यह कि पूर्व आरम्भ पश्चिम जानों सर्वोत्पन्न घागगाएँ है। कार्य एसा नहीं है एक साथ हमारे पूर्व आरम्भ पश्चिम जानों दिग्गमों में न हो। विश्व वृत्त है अन्तर्गत दिग्गम-वृत्त का अन्तर्गत अन्तर्गत की सुविधा के लिए

हैं। पूर्वोदय में किन्हीं खास दशों का उदय और दूसरे किन्हीं का अस्त इष्ट नहीं है। इष्ट निरूपनाद स्वका उदय है। इसमें गर्भित है कि यदि कोई एक (व्यक्ति, समुदाय या देश) किसी दूसरे को परास्त करके उसके बल पर गर्वोन्नत है, तो सर्वोदय में उसको अवनत होना होगा। विनत होना सीखने के लिए अवनत होगा। इस अवनति में से विनति और फिर सच्ची आत्मवृत्ति आयगी। घमंड अगर है तो उसे गिरना होगा, बाद ही आत्मलाम की आशा होगी।

इस प्रकार सर्वोदय यदि भावना की ओर से सत्के प्रति मजबूत है तो घटना की ओर से उसे घटने और निर्मम बन रहने में बाध कल्पना नहीं होनी चाहिए।

आज या जगत् का राजकरण दो समूहों (ब्लॉक) में बँटा हुआ है। एक पश्चिम का कहा जाता है, दूसरा पूरब का। अमेरिका पश्चिम का नेता है तो रूस पूरब का सूत्रधार है। यह 'पश्चिम' और 'पूरब' यहाँ भूगोल की भाषा के हैं। भौगोलिक से अधिक उनमें सार नहीं है। पूरब और पश्चिम यहाँ अपने से किसी अधिक या अन्यत्र भाव के प्रतीक और सूचक नहीं हैं। यहाँ उनमें घोर गुटबन्दी का है। माधे और गुट मानों में दो गलत हैं, जो बढ़ा-चढ़ाई की दौड़ में हैं। अन्धाड़ में उतरने की घड़ी आये तो उसक लिए उनकी तैयारी मुश्किल बल्कि दूसरे से सजाई मिले, इसमें वे लगे हैं।

लेकिन लेख के शीर्षक का पूर्वोदय इस सबसे वास्तव नहीं रखता। उसकी आत्मा सर्वोदय है जिसका आशय यह नहीं कि सत्त्व न होगा या कि उससे किनारा ले बचना होगा, बल्कि आशय यह है कि एक आर से ध्वस्त ही वह सत्त्व सर्वोदय निष्ठा से और अस्मिन् कम की पद्धति से लिया और शून्य जायगा। पूरब, जो पिछड़ा समझा जाता है, जब अपने जन-शक्ति और मन-बल का समर्थ और पहचानेगा, यह व्यर्थ मशीन-शक्ति की हाथ में नहीं पड़ेगा। इस तरह मशीन के सहारे न बनने हुए पश्चिम को यह शक्ति अहं-दम में रहने और भूलने का अवसर न देगा।

मासल-एड और धूम-संगतता जैसी याचनाओं का माथे ठेकर मगान का और मर्जीनी हो गयारों का आदमी म जगता बगइ देने यह नहा नयगा ।

जीवन की एक पद्धति है जिस पश्चिमा कल्चर हम इगित कर सकत हैं । हम नीति और पद्धति का पश्चिमी मममे जानेवाला दशा में ही चलन हा पूरव में नहीं, मा नहा । मन्व पटिए ती सोवित्त-पद्धति पाश्चान्य सन्व-जीवन धारणा की चरम प्रगति है । यह उसका तत्काल रूप है । पश्चिम की हाउ न इन्सान के रूप में शिखरी-पैला जीवन का वैयक्तिक इकाइ को मन्व करके एक मुगलित विज्ञान सामाजिक इकाइ का जम दन की चण का, उसका नामकरण हुआ मन्व । सिद्धान्त बन गया कि मन्व हा है, तनि नहीं है । मन्व का हाउ स आवश्यक हागा ता तनि को रखा जायगा, तनिक मो अनावश्यक हागा तो उसको क्वा कर दिया जायगा । आम की आर म कहीं किसी व्यक्ति क पास जीने का बाइ समयन नहीं है । व्यक्ति म बाहर हाकर तो पैला हुआ समयन है मूल समयन मय उसमें है । वही समाज अपने म्भगीन तन्वा के आधार पर फिर मन्व में मागायाग मूत हागा और उस स्पेट म ही सय स्वच जर स्वामित्व, औचित्य और समयन केन्द्रित होगा ।

यह दगन पाँचम में पैला हुआ । पर उन्हीं देगों का स्वत्व म्मकर रण न गया । म्म दग न, जिसे अपन को पूरव का मानने का सुमोत है, उसे कम का धर घटना ना चाला पनाना ।

इस तरह आबद्ध के राजनातिक मघनों म पूरव और पश्चिम गज्दों का प्रयाग बहुत सीमित और ठग है । वह आमक मी है । मूल भूमिशा का दानों छावनियों में बाइ मेर नहीं है । दाना जगह एड स हाथियारों की तीराण है, आर पूरव पश्चिम विगोरों का प्रयाग वहाँ नाल दगों की मिति थोर उनक अमग-परिचन की हाउ से है । म्म आज पिछा हुआ नहीं, महिमावन देय है । पिछा मममे जानाल देगों के प्रति अमरीका का चा माय है, म्म का भाव उससे कुछ म्हुत मित नहीं । इन दोनों मूधन्य राशों का उन पिछा देगों का उडार कग्ना है,

उनको सहारा देना है, उह स्वावलम्बी बनाकर अपने पैरों पर खड़ा करना है, समृद्ध करना है, आधुनिक बनाना है, शिक्षित करना है, उनके जीवन-मान को ऊँचा उठाना है, इत्यादि ।

जो सत्ताशालियों की बड़ी कृपा है । जिनके पास सामान नहीं है, मशीनें नहीं हैं, अस्त्र शस्त्र नहीं हैं, बल्त फारगाने नहीं हैं, बत्तिया अम्बबार, बट्टिया मकान और बट्टिया सामग्री नहीं है, जीवन जहाँ का सीधा-सादा है सभ्यता में जहाँ सभ्यता नहीं है और मनुष्यता नहीं है, केवल जड़ता और पशुता है, ऐसे दीन और दरिद्र देश याचना की आँखों से उन सत्ताशाली प्रभु देशों की ओर देख सकते हैं । परम दया होगी और अतुल उपकार होगा जो वे अल-ग़ाल से हम लैस करगे, हम मशीनें देंगे और सभ्यता देंगे । हमारे पास सिर्फ़ कच्चा माल है । उनके अमूल्य उपहारों के बदले में हम नेचारे यही उह भंग कर सकते हैं ।

आज की विश्व की राजनीतिक स्थिति यह है । एशिया के देश पिछड़े हुए हैं । आगे बढ़े हुए देश, जिनके पास सत्ता है और प्रचुरता है, उनको अपनी शरण में बिना लिये नहीं रह सकते ।

लेकिन यह स्थिति छूट है । राजनीति का नकशा बदलाने और बह कान का है । सन् यह है कि पश्चिम की जीवन-पद्धति और उसके सहारे बढ़े हुए वे देश जिनको आज हम शरण और ऊँचा मान रहे हैं, असल में अपना दिवाला पीगने जा रहे हैं । उम जीवन पद्धति की सोंसे अन्तिम हैं बार वह टूट रही हैं । अपना अतीत उस पर स्वयं भारी है, और एक युद्ध पैदा करने से अधिक वह जीवन प्रिय भविष्य की दिशा में कुछ और नहीं कर सकती । उममें से उत्पत्ति निपटली है अवश्य, मगर ठीक उतनी जितनी आईता उपजी है । वह निरिमत करती है उतनी ही जितनी आवृत्त करती है । वेग उसकी अधीरता है और जोर नशा है ।

तब यह है कि जब जब पश्चिम की उम जीवन-पद्धति को मुठभेड़ लेनी पड़ी है पूरुष की जीवन-नीति के साथ, तभी तब रीस में हथियार खाने के अलावा अपने प्राण का उसने पाय और उपाय नहीं रह गया

है। वे हथियार जो कमजारी के समूत हैं, चल का भ्रम उपजाते रहे हैं। उन्होंने ने स्थिति में उल्लसत पैरा की है। हथियारों से प्रकृत अवस्था बदल नहीं सकती और जीवन का सहज विकास उनसे कुछ रुक मले जाये, मुट नहीं सकता।

दक्षिण अफ्रीका को लीजिये, जा गांधी-व्यक्ति धार गांधी-तत्व के निमाण में प्रनागशाला बना। भारतीय हानतम स्थिति म वहाँ पहुँच थे। अधिकांश वे 'गिरमिटिया' थे। पर कुछ ही वर्षों में उस दश की धरता में उनकी जँ गहरी पहुँच गई और उनकी स्थिति दृढ हाती गयो। यहाँ तक कि पहले के वहाँ बसे हुए गारे लागों को चिन्ता हा आयी। मुझागले में वे लाग जैसे हल्क और हीन पडते थे। भारतीय कष्ट-सहिष्णु थे, मितव्ययी थे, उद्यमी थे। वे व्यथाभिमान के शिकार नहा थे। परिणामतः निरीहावस्था में पहुँचने पर भी वे वहाँ के जीवन म अपने लिए महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने लगे। पश्चिम की जीवन विधि दूसरी थी। उसमें घमड का सहारा था। वह कभी थी। उद्यम से अधिः उसम ऐग को स्थान था। इन दो जीवन विधियों के प्रकृत दृढ में पान्चाल्य का रीतिशकर अन्न का सहारा लना पना। उन्होंने अवगा, घृणा और तिरस्कार से काम लिया। प्रहार-बल, कानून-बल और अस्त्र-बल का प्रयोग किया। लेकिन गांधी में मूत हाकर पूव की जीवन विधि उस सम हीनता और पशुता के विराध म अपने को उत्तरोत्तर अविनेय ही सिद्ध करती चल गयी। भारतीय दीन थे, दलित थे, अशिष्टित थे—यह सब ठाक, लेकिन दान के विराध म घन गर्मी होना, ललित के निरोध में दमनकारी होना और अशिष्टित के मुका बिले केमड अन्धर की स्वाय-विद्या से शिष्टित होना, अपने आप में कोइ बन्कर बात न थी—यह उस दृढ स सिद्ध होता चला गया।

जहाँ कहा भी पश्चिम और पूरव की जीवन-नीतियों आमने-सामने आकर सवय में पूहा हैं, दीन पडा है कि पश्चिम की नीति जल्पी क्षुध हा आयी है और मानवता को छाटन पर उतारू हो गयी है। मानवता से

तब वह दानवता पर उतर आयी है। दानवता के बल से मानवता पर विजय पाना गर्व और श्रेय की बात नहीं है।

आज अन्न शस्त्र के, और उनका सहारा लेकर चलनेवाले यानून के जोर से एक कृत्रिम शक्ति-संतुलन की अवस्था को बनाये रक्खा जा रहा है। लेकिन यह कृत्रिमता अधिक काल ठहर नहीं सकती। मानव-जाति का विकास अन्ततः मानवी गुणों की प्रतिष्ठा पर ही टिकनेवाला है। पदार्थ के परिमाण से मानव विचार का माप न होगा। आगे चलकर जातियों और देशों का महत्त्व उनकी अन्तस्सिद्ध मान्यता के अनुपात में ही होगा और अन्न शस्त्र उसमें किसी तरह बाधा न बन पायेंगे।

रंग, देश, जाति, भाषा आदि का जब अपने आप में महत्त्व न रहेगा—और यह महत्त्व तो अब आगे आनेवाले २०-२५ वर्षों में प्रायः समाप्त हो जानेवाला है—तब गारे या फाले अमरीकी या आदिवासी होने से ही कुछ निणय न हो जाया करेगा, बल्कि उनकी आन्तरिकता अर्थात् संस्कारिता की अपेक्षा में मूल निणय होगा। तब पता चलेगा कि भौतिक शक्ति से आभिरु गुण बढ़ी सम्पत्ति है और आदमी वह महान् नहीं है जिसके पास बहुत सामान है, बल्कि महान् वह है जिसके पास बहुत सहानुभूति है।

सामान और सहानुभूति का सम्बन्ध सच पृष्ठिण तो उल्टा है। सामान बढ़ाकर और बटोरकर सहानुभूति से आदमी दान होता है। सहानुभूति बढ़ाने पर सामान अनिवापत ही कम होता जाता है। क्योंकि यह आस पास बैठता जाता है। अर्थात् सम्पत्ति का और प्रभुता या सप्रहीकरण और केन्द्रीकरण मानवता के विकास का लक्षण नहीं है, यह केन्द्रीकरण फिर व्यक्ति में न होकर दान, मन्था में राज्य में ही चले हो। इस अर्थ में सम्पत्ति का और अधिनार को उत्तरांतर विकसित होते जाना होगा विकसित है, वही द्यात है। अर्थात् सम्पत्ति का आर अधिनार का सही समान मान से द्यात परत जाना होगा। राज्य में उसके धनि होने का मतलब व्यक्ति का उच्च आर सहीन आर बचित होना ही है।

पति अपने का निबन्धन और निरधिकार अनुभव कर—इस गुठ और इस आधार पर खड़ा होनेवाला सम्पन्न अरु सजाधिकारी गण्य मानता के विकास का नहीं, उसने दिवाल का ही शायतक होगा ।

लोक 'पूर्वोदय' का यही मत है । उसका मतलब है, मनुष्य में नैतिकता का उदय । उसमें स स्वाय का तिराभाव और नर का प्राणुभाव । जाकशा का अमिष्ठा में परिणामन, स्वाय का सवा में उन्नयन आर माग की जगह त्याग-भाव की प्रतिग ।

पश्चिम से ना एक आत्ममय जीवन-पद्धति का बाल उल्लर हमारी धार भेजी ना रहा है, जा स्वच और स्वामित्व की तृष्णा से अमार-गराव का, इस मत का धार उस धार को, सगका उच्छा और भरमा रही है—मविष्य उस बाल क हाथ में नहीं है । वह ज्वर है जिसका गुठ हाना है । मानता के न्यात्य का वह याद सदा क लिए ला न करेगा । नर बढ सकता है पर अन्त में उतरने के लिए । हाने का एक युद्ध चाहे ता आर हो र—पर शत्रों का नाग एक तिन टृष्णा । एक-दूसरे का नाश आर परास्त करन क पतय एक दिन परत्पर को समझने की और एक-दूसरे के काम धाने की भडा जनमगी । मनुष्य का मनुष्य होने स बाद, और दुष्ट, राफ न करेगा ।

आत्र यह धडा मातुकता समझी जा सकती है, मोली आदगवादितो समझी जा सकती है । भडा में सन्तु धार अगारभी जान तितानवाल को तुच्छ और पिठहा हुआ समझा जा सकता है । तनिन आधा वय यमगी और विकार बर उतरगा, तव जान पंग्गा कि सता मूत्ता नहीं यकि मय्यता है, तबकि आर्थिक तृष्णा गुड चारी आर तिसा है । तव जान पंग्गा कि जिसका जीवन का ऊँचा मान मानकर हम स्पृहणीय गिनते आय थे वह पाप का कारा एक भुलावा है ।

मूल्य जय नरनों धार दर-सुधर बालना उनसा अवगम्भावी है—जव य बाटिक की जगह शार्दिक, वृषिम के गवार प्रकृत, एन न्यायल्लो की अरणा संगभावी होंगे, तब समय आयग कि सर्वोत्प आरंभ हागा ।

तब यह दानवता पर उतर आयी है। दानवता के बल से मानवता पर विजय पाना गर्व और श्रेय की यात नहीं है।

आज अन्न गन्ना क, और उनका सहारा लेकर चलनेवाले कानून के जोर से एक कृत्रिम शक्ति-संतुलन की अवस्था को बनाये रक्खा जा रहा है। लेकिन यह कृत्रिमता अग्निक काल ठहर नहीं सकती। मानव-जाति का विकास अन्ततः मानवी गुणों की प्रतिष्ठा पर ही टिकनेवाला है। पदार्थ के परिमाण से मानव विकास का माप न होगा। आगे चलकर जातियों और देशों का महत्त्व उनकी अन्तस्मिद्ध मानवता के अनुपात में ही होगा और अस्त्र शस्त्र उसमें किसी तरह बाधा न बन पायेंगे।

२१, दण्ड, जाति, भाषा आदि का जोर अपने आप में महत्त्व न रहेगा—और यह महत्त्व तो अब आगे आनेवाले २-२५ वर्षों में प्रायः समाप्त हो जानेवाला है—तब गरीब या काले अमीरी या आदिवासी होने से ही कुछ नियम न हो जाया करेगा, बल्कि उनकी आन्तरिकता अर्थात् सन्कारिता की अपेक्षा में मूल नियम होगा। तब पता चलेगा कि भौतिक शक्ति में आत्मिक गुण बड़ी सम्पत्ति है और आदमी वह महान नहीं है जिसके पास बहुत सामान है बल्कि महान वह है जिसके पास बहुत सहानुभूति है।

सामान और सहानुभूति का सम्बन्ध सब पृथिष्ठा तो उल्टा है। सामान बढ़ाकर और घटोरकर सहानुभूति से आदमी हीन होता है। सहानुभूति बढ़ाने पर सामान अनिवायत ही घट जाता जाता है। क्योंकि यह आस पास बैठता जाता है। अर्थात् सम्पत्ति का और प्रभुता का समशीकरण और केंद्रीकरण मानवता के विकास का लक्षण नहीं है, यह केंद्रीकरण फिर व्यक्ति में न होकर दल में, संस्था में, राज्य में ही चलेगा। इस अर्थ में सम्पत्ति को और अधिकार का उत्तरात्तर विकेंद्रित हाते जाना होगा। विकेंद्रित है, यही ब्याप्त है। अर्थात् सम्पत्ति का और अधिकार का सब कहीं समान मात्र से ब्याप्त परत जाना होगा। राज्य में उसका केंद्रित होने का मतलब व्यक्ति का उप आर से हीन और वंचित होना ही है।

पति अपने का निषेध और निरधिकार अनुभव करे—इस शत और इस आधार पर स्वयं होनेवाला सम्पन्न और समाधिकारी राज्य मानता के विकास का नहीं, उसका दिशाले का ही यावक होगा ।

लोक 'पूर्वोदय' का यही मत है । उसका मत है, मनुष्य में नतिक्रम का उदय । उसमें स्वयं का विराभाव और स्वयं का प्रादुर्भाव । आकाश का अमिच्छा में परिणमन, स्वाय का स्वयं में उदयन और भाग की लक्ष्य त्याग भाव की प्रतिष्ठा ।

पश्चिम से जा एक आनन्दमय जीवन-पद्धति को बाट-लकर हमारा ओर भेजी जा रहा है, जो स्वयं और स्वामिन्त्र का नृणा से अन्त-गाराव का, इस मत का ओर उस वाद का, सबका उदय और नरमा रही है—मनुष्य उस शत के हाथ में नहीं है । वह स्वयं है विक्रम शत होना है । मानता के स्वात्म्य का वह वात स्वयं के लिए वा न सारी । स्वयं चद सक्रता इ पर अन्त में उदयन के लिए । हान का एक युद्ध चाहता और हा—पर शत्रुओं का नृणा पर दिन दूंगा । एक-दूसरे का नाश और परस्पर करन के बजाय एक दिन परस्पर का समाने की और एक-दूसरे के काम आन की भद्रा बनमगा । मनुष्य का मनुष्य हान से काद, और कुछ, राक न सकगा ।

आज यह भद्रा मासुकता समझी जा सकती है, मोली आदशनादित्त समझी जा सकती है । भद्रा में मनुष्य और जन्तु भी वायन वितान्याल को तुच्छ और निष्ठा हुआ समझा जा सकता है । लेकिन आधा बव थमगी और विकार जय उतरगा, तब जान पड़ेगा कि सदा भूता नहीं दलित मन्वता है, स्वयं आधिक नृणा गुद चारी और निम्न है । तब जान पड़ेगा कि जिसका जीवन का ऊँचा मान मानकर हम सृष्टीय गिनते आम ये वह पाप का कारा एक मुला है ।

मनुष्य बल्लो और दर-स्वर बदलना उनका अवस्थाही है—तब व बाइक की जगह हार्दिक, कृत्रिम के ज्ञान प्रकृत एवं न्यायनेवा की अज्ञा समाभावी होंग, तब समय आवगा कि सर्वोदय आरम्भ होगा ।

तब वह दानवता पर उतर आयी है। दानवता के बल से मानवता पर विजय पाना गर्व और भ्रय की बात नहीं है।

आज अस्त्र-शस्त्र के, और उनका सहारा लेकर चलनेवाले कानून के जोर से एक कृत्रिम शक्ति-संतुलन की अवस्था को बनाये रक्ता जा रहा है। लेकिन यह कृत्रिमता अधिक बाल नष्ट नहीं सकती। मानव-जाति का विकास अन्ततः मानवी गुणा की प्रतिष्ठा पर ही टिकनेवाला है। पलायन के परिमाण से मानव विकास का माप न होगा। आगे चलकर जातियों और देशों का महत्त्व उनकी अन्तस्त्रिद्ध मानवता के अनुपात में ही होगा और अस्त्र-शस्त्र उसमें किसी तरह बाधा न बन पायेंगे।

रंग, दंग, जाति, भाषा आदि का जो अपन धाप में महत्त्व न रहेगा—और यह महत्त्व तो अब आगे जानेवाले २०-२५ वर्षों में प्रायः समाप्त हो जानेवाला है—तब गारे या काल अमरीकी या आदिवासी होने से ही कुछ निणय न हो पाया करेगा, बल्कि उनकी आन्तरिकता अर्थात् संस्कारिता की अपेक्षा में मूल निणय होगा। तब पता चलेगा कि भौतिक शक्ति से आत्मिक गुण बढ़ी सम्पत्ति है और आदमी वह महान् नहीं है जिसके पास बहुत सामान है, बल्कि महान् वह है जिसके पास बहुत महानुभूति है।

सामान और महानुभूति का सम्बन्ध सच पृथि्वी ता उल्टा है। सामान बढ़ाने और बढ़ोकर महानुभूति से आदमी हीन होता है। महानुभूति बढ़ने पर सामान अनिर्वायत ही कम होता जाता है। क्योंकि यह आस पास फैलता जाता है। अर्थात् सम्पत्ति का और प्रभुता या संप्रदायिकरण और कन्द्रीकरण मानवता के विकास का लक्षण नहीं है, यह कन्द्रीकरण फिर शक्ति में न हाकर दल में, संस्था में राज्य में ही चाहे हा। इस अर्थ में सम्पत्ति को और अधिकार का उत्तराचर विकसित होना जाना होगा। विकसित है, वही प्राप्त है। अर्थात् सम्पत्ति का आर अधिकार का मर बही सामान भाव से व्याप्त करते जाना होगा। राज्य में उसके शक्ति होने का मूल्य व्यक्ति का उच्च और से हीन और शक्ति होना ही है।

व्यक्ति अपने का निषेध और निराधिकार अनुभव को—इस मत और इस आधार पर नया हानेवाला सन्नत और सहायिकारी मान्यता के विकास का नहीं, उसका दिगंत का ही लक्ष्य होगा।

एक 'पूर्वोदय' का यही मत है। उसका मत है मनुष्य में नतिक्रम का उदर। उसमें सन्तान का विराभाव और स्नेह का प्रदुभाव। आकाश का अभिलाषा में परिणमन, न्याय का सत्ता में उन्नत अरु भाग की लक्ष्य लागू-भाव की प्रतिष्ठा।

पश्चिम से जो एक आन्तरिक लीन-सदात का चाल-चलपर हमारी आरंभ की जा रहा है, जो स्वयं और स्वामिच का तृणा स जेम्बर-गराव का, इस मत का आरंभ बाद का, सत्ता उद्वेग और नरमा रही है—नियम-मया क क्षय में नहा है। यह चर है सिका शत हाना है। मान्यता के म्यात्प्य का यह मत सदा के लिए जान सक्ती। चर चर सक्ती है पर अन्त में उतरन के लिए। हान का एक युद्ध चाहता और हा ल—पर शक्तों का नया एक दिन टूटगा। एक-दूसरे का नाश और परान्त करने के दवाय एक दिन पन्धर का समझने का और एक-दूसरे के काम धान का भ्रष्टा चनमगी। मनुष्य का मनुष्य हान से काइ, और मुठ, राक न सकेगा।

आज यह भ्रष्टा मानुष्यता सम्झी जा सक्ती है। मानी आदृशनादिला समझी जा सक्ती है। भ्रष्टा में मनुष्य और अन्तरमा जान विधानशाल का तुच्छ और टिठठा हुआ समझा जा सक्ती है। किन्तु आधा अरु धनेता और विकार जब उतरगा, तब जान पन्धर कि सत्ता मूल्या नहीं बिक मन्वता है, बिकि आर्थिक तृणा शुद्ध चरी अरु सिका है। तब जान पन्धर कि सिका जीवन का उँचा मान मानकर इन सत्तापर गिनते आय से यह पन्धर का कारा एक मुलाना है।

मून तब सत्ताये और दर-दर बदला उनका अन्तर्भाव है—जब व सत्ताये की लक्ष्य शक्ति, क्षमि क सत्ताये प्रकृत, सत्ताये की नया समझी हों, तब मन्धर आरंभ कि सर्वोदय आरंभ हागा।

पूर्वोदय

एक को अपना हित दूसरे के अहित में न दीर्य पड़ेगा। उस समय
 नश्य ही पूर्य के देग, जो पिछड़े समझे जाते हैं, आगे होंगे और आज
 की उन्नति महज तमांगा दीर्य पड़ेगी। वह फाल बन आयगा—बहना
 कठिन है। पर वह नहीं आयगा तो प्रलय को ही आना होगा।

अपसोस यह है कि पूर्य के देग विलायती प्रचार में भूलकर पास
 में निधि रहते भी अपने को कंगाल मान रहे और परमुखापेयी बन रहे
 हैं। यह शोचनीय हालत जनता की उतनी नहीं है जितनी नेताओं की
 है। उन देगों की हुकूमत अपनी प्रतिभा और आत्मा के अनुसार वहाँ के
 समाज की रचना करने में नहीं लगी है, बल्कि विलायती देगों की नरल
 में पड़ी है। विलायती को इसी से महत्व मिल रहा है और उनका भ्रम
 दूरने में समय लग रहा है। पर पिछले दो एक सदिया की बनी हुई वहाँ
 की सभ्यता की इमारत इस तेजी से तहस-नहस हो रही है कि भ्रम का
 अधिक काल पोसना सम्भव नहीं है। मानव-सम्बन्धों के तनु छिन भिन
 हो रहे हैं और वहाँ की सामाजिक समस्याएँ सफट और विपत्-काल के
 नीचे गिरी जा रही हैं। केवल एक दौंचा है 'स्टे' जिसके यल पर वह
 का अन्विन्व कायम है, और व्ययन्या नैया कुछ वहाँ दिगाइ देता है।
 पिन्नु स्टे की बुनियाद में अइंता और गयुता है। विरोध में से वह
 अपने को सशक्त करती है और इस तरह वह सस्या स्वयं जा मघात
 की ओर बर रही है।

क्या हम जागा करें कि जा भविष्य नाना दुस्सम्भावनाओं के बीच में
 से भी स्पष्ट और अमोघ होकर झाँक रहा है हमारे राजराजी नेता
 लोग उसको देखने और अपने को अनुकूल दिशा में दाखने का
 प्रयत्न करेंगे ?



२

गधीजी

निपट मानव गांधी

संसार पर करने लोगों ने कृता कुछ सिद्ध है कि नती बात करने का यह नहीं जाता। उनकी हर घड़ी पर अंतरांगों का निगाह है। नदता दुनी कितना है। दुःख उनमें नहीं उनके पास नहीं, जो संसार संशुद्ध है। उनका जीवन म दुःख नहीं है। भाव उनके गहरे म सजा उठता है कपनी और कृती में बाहर आकर हा साथ अनिच्छ इतिहास का जाती बन जाता है।

किमी भी कौन उन्हें जानने का दावा कर सकता है? वृष का तरल मय के बाग वह खुले और गहरे हैं, पर अक्षर और अक्षर भी है। इसी से इतना जानकर भी गांधी के बारे में और जानने की प्यास तुनिया की कमी नहीं बुझता। उनके नाम के साथ तुरी हर बात विक्रम का तरह हाथों-हाथ चलकर भी कमी बासा नर चला नहीं जाती। हर तरह उपर हान पर गांधी एक रहस्य हैं, जिसे तुनिया कभी बन न पायगी।

एक कहानियों हुआ करती थीं, जिनमें एक-एक वैश्व-मानवों के प्राण किना पत्रा या एनी हा दिया जान में समाप्त रहन थे। वनों इन्ने तांग कि वनों उनका अन्त हुआ। ऐसे न-न-न-न-न-न का रात की रात में हजारों कसों दूर सप्तम कर दिया जाता था। यह बात निती सच न मान ली जाय। हर व्यक्ति का एक कुर्जी है। गहरी जायों पल्लो-ग प्रनृत्त है उस कुना सं हल किध सनाली की तरह गुला रहता है।

अब तुनिया के हम-हम प्राणियों के गर म इस कुना का सत्रन

और पान में बहुत फटिनाइ नहीं आती। कोई हम में धन चाहता है, कोई मान, किन्हीं को कीर्ति ही काफी होती है। कुछ की कामना कामिनी में है। मतलब हम ससारी भागों की चाह सभार के इस या उस तल में गड़ी हुई पायी जा सकती है। जहाँ जिसकी चाह है, वहाँ उसकी थाह है। इस तरह आपस में एक-दूसरे को जाँचने और एक-दूसरे का मान फिर करने में हमको दिक्कत नहीं होती।

सीधे तो सभार का ताना-बाना विचित्र लगता है। अग्रण्य आदमिया की जिन्दगी के तार आपस में मिल-जुलकर, फट-खँटकर क्या नमूना बुन रहे हैं, कुछ समझ नहीं आता। लगता है, उनकी गतिया मित्त हैं और विरोधी भी। पर मनस्सत्त्व विज्ञानी बताते हैं कि वे गतियों न मित्त हैं, न विरोधी हैं। सासारिका के यारे में आसानी से वे नियम प्रस्तुत कर सकें हैं जो बता दते हैं कि एक आदमी और एक आदमी, क्या और किन प्रेरणाओं के अधीन विविध घटन कर रहे हैं। पर कुछ लाग मानो नियमानुसार नहीं होते हैं। विज्ञान और शास्त्र उन्हें न ढूँढ़ पाता न गाल पाता है। वैज्ञानिक प्रणालियों से उन्हें पाना असम्भव होता है। इससे व्यक्ति से ज्यादा उन्हें घटना कहना होता है। उनकी बुन्नी यहाँ ढूँढ़े नहीं मिलती। उसमें या तो लोगों का रीति होती है जिस से उस आदमी को मारकर पूरी करत है। या नहीं तो विष्मय में घुटनों गिरकर उसकी पूजा करते हैं। इससे दूसरा उनके नियम बन नहीं पाता। तर का वह सात ही उन्हें हाथ नहीं आता जो उस जीवन का आर उस जीवन के कृत्यों को धामता हुआ कहा जा सके। ऐसे पुरुष अतकम होत हैं आर लोक तन्हाल ता अलौकिक कहकर उनसे अपनी सुन्नी मान लेता है, पीछे इतिहास में स फिर फिरकर उनका जाविफार करके अगीपार करने की कोशिश करता है। गांधीजी ऐसे ही अभाग पुरुषों में स मालूम हात हैं। उनकी बुजी लास खोजन पर भी दुनिया के हाथ नहीं चढ़ती।

गांधीजी न एक बार कहा कि मेरा सब कुछ ले लो, मैं रहूँगा। हाथ फाट ला आँसु-नाक उड़ा दो तब भी रहूँगा, फिर जाय तब भी

कुछ पल रह जाऊँ, पर इन्वर गया है तब तो मैं उसी दम मरा हुआ हूँ। यह बात करने में चमत्कारी लगती है। पर क्या समझ में भी यह बँधकर बैठती है ?

इन्वर के मन्दिर हों और उसकी पूजा हुआ करे यहाँ तक तो ठीक है। इससे आगे नित्य प्रति के काम से सम्बन्ध रखनेवाली बुद्धि और तर्क की भाषा उस इन्वर को अपने में कहीं पिठाये ? परिणाम यह कि जीवन नीति, जो इन्वर पूजकता से आरम्भ होती है, गांधीजी तक सीमित जान पड़ती है। व्यवहार से गांधीजी की समाज-नीति अनमिल और असिद्ध लग आती है। उसमें तर्क का साफ सूत्र नहीं मिलता।

लौकिक के और गांधीजी के बीच का यह भेद मौलिक है। किसी तरह के ऊपरी तर्क से उस भेद को उड़ा देना, पाट देना खतरनाक हो सकता है। गांधीजी का और दुनिया का, गांधीजी का और कांग्रेस का सम्बन्ध पूरी तरह इस मूल भेद को स्वीकार और पहचान कर नहीं बना। और इससे फटिनाद उपस्थित होती रहती है।

गांधीजी के बारे में यह कहा जा सके कि वह व्यवहार के आदमी नहीं हैं तब तो मुश्किल ही हल हो जाती है। ऐसे बहुत लोगों का दुनिया जानती है जो वास्तव के बजाय स्वप्न में रहते हैं। आदर्शवादियों, सन्तों, कवियों को अपने में समाना और पचाना दुनिया के लिए कठिन नहीं होता। पीठ की आर से भी वे दुनिया के अपने होते हैं। कुछ भाग में भूलते हैं तो शायद ये योग में भूलना चाहते हैं। गांधीजी के बारे में वैसा समझने का सुभीता दुनिया के बुद्धिजीवी लोगों को मिल सके तो वे बच जायें। पर ऐसी सुविधा किसी ओर से उह नहीं हो पाती। गांधीजी कुछ हैं तो कमठ हैं। वस्तु के क्षेत्र में उनका प्रभाव अमोघ है। ठोस रूपया जो समाम वास्तविकता का आज प्रतीक है उनके इशारे पर यहाँ से वहाँ होता रहता है। इस तरह गांधीजी धार्मिक के लिए एक चुनौती ही बने रहते हैं। उस धार्मिक के बनाये शास्त्र और चलाये सव शब्दा के आगे गांधीजी मानो ऐसा प्रश्न चिह्न बनकर खड़े हो आते हैं कि हटायें नहीं हटते।

धमवादी और इश्वरवादी, जो सत्कार को बंधन मानकर उससे उत्तीर्ण होना चाहता है, गांधीजी की तरफ आशाभरी निगाह से देखता है। कारण, वह बहुत अंगों में ऐसे उत्तीर्ण और मुक्त पुरुष प्रतीत होते हैं। पवित्रता में वे परित्र हैं और जितेन्द्रिय और खामी और महात्मा। पर यही पवित्रता का बाधक उस समय गांधीजी को नहीं समझ पाता जब वे राजनीति के प्रयत्न में दीखते हैं और तरह-तरह के कम की विराट् योजनाओं का संचालन करते हैं।

दूसरी आर सत्कार में (उसके मुँह में) लगे हुए प्रकार प्रकार के वादी और कर्मोजन इस कमण्य और प्रतापी पुरुष गांधी को देखकर उत्साहित होते हैं। जो घल उसने प्राप्त किया, जा लोक-समूह यह कर पाया, उसको भद्रा और इष्ट इत्या से देखते हैं। जो सत्ता उन्हें इष्ट है, गांधीजी को वह सिद्ध है। लोकनायकों में इस तरह वह मूढ है। फिर भी राज को लेकर तरह-तरह के जितने तत्रवाद मिलते हैं और समाज के निमित्त से नाना प्रकार के जा समाजवाद और साम्यवाद मिलते हैं, उनमें से किसी एक को छोड़कर किसी दूसरे का समर्थन गांधीजी से नहीं मिलता। राज की दिशा में यह गांधी चाहता है तो 'राम-राज्य' चाहता, जिसके तत्र को किसी वैज्ञानिक माप में नहीं रखा जा सकता। समाज चाहता है तो ऐसा कि जिसमें किसी की काह सम्भावना नष्ट न हो और उन स्नेह से रह। धन रहे, धनपति रह भ्रम रहे और भ्रमिक रहे। राज हो और वह चाकर भी हो, चाकर हो और यह राजा से कम न हो। इस तरह की अर्थशास्त्रिक और भाषुक बातें जा कवि को शाना हैं अर्थनीति और कूटनीति के संचालक और समाज निमाता पुरुष के लिए अस्पृशी लगती हैं। यह आदमी जा शासन और व्यवस्था की तरह-तरह की समस्याओं के बीच मुख्य सूत्रधार की मौति भिरा रहता है, हर सौंठ-सरे प्रार्थना में दोहराता है 'यह सत्कार कागद की पुकिपा', यह संसार भाह आर हाँव्यह। जो संसार और समाज प्रत्यक्ष कर्मों के लिए एक और अवेला इष्ट है वही सत्कार और समाज इन आदश (निर्नाम) कर्मों के लिए सूत्रवत् है। वे

मात्र ही चाहे होत हों, इस व्यक्ति को टिगने के लिए तब भी कारण नहीं है।

इस तरह जीवन के विभक्त दृश्यों के लिए अन्ध्यात्मवाद और नैतिकवाद के लिए गांधी एक ही साथ प्रश्न और समाधान हैं। राजनीति और धर्म में भेद है, उनमें विग्रह भी है। लेकिन गांधीजी उन दोनों के प्रभेद हैं और संग्रह हैं। वह विभक्त जापन-नीति जिससे सत्कार और सत्कार का इतिहास चलता रहा है और चलता है, गांधीजी उसके लिए एक संज्ञा हैं। वे सूत्रक हैं जीवन की अस्पष्टता के, उसने एक के। साथ ही वह जीवित उदाहरण हैं इस सत्य के कि जीवन समुक्त, समग्र और सिद्ध है ता यहाँ जहाँ वह निम्न है। अपने को उत्तरोत्तर सेवा गरा शून्य और प्रार्थना द्वारा हीन बनाते जाना ही परिपूर्णता पाने का ज्ञाना माग है।

इस मूल निष्ठा को पाकर फिर गांधीजी का बस एक ही प्रयत्न रहा। वह यह कि वह अपने समूचपन और तन को लेकर उस निष्ठा से तन्मय हो जायें। इस एक और अछूते सूत्र और मात्र के सहारे वह गांधी जो हर तरह हीन थे आज स्वसम्मत रूप से जगत् के मुखे पुष्ट हो गये हैं।

इस सूत्र को हाथ में लेकर फिर उन्होंने अपने को और अपनी को पूरी तरह छोड़ दिया। होना है जो हो। चिन्ता का अपने फिर रखने वाला मैं कौन ? क्या समझ, और क्यों अज्ञ ? चराचर जगत् को चलाने वाला जागता हुआ बैंग ता है, तब उसके आदेश का मुनते रहन और वैसा करते रहने से अलग मेरा काम ही क्या रह जाता है ?

और इस नीति से चलकर कुछ विस्मयगताएँ अनायास गांधी का स्वभाव बन आयीं। वे उन्हें सामान्यता से अलग कोटि में ले जाती हैं। जैसे—

† यह निष्पक्ष तन्त्राल करते, तक पछे पाते हैं। परिस्थितियाँ की आर स अपने को नहीं समाप्त। सीधे स्वधर्म के धार में अन्तर स आदेश प्राप्त करके परिस्थितियों को तदनुकूल बनाने में लग जाते हैं।



२ औरा के लिए सोचना, करने से बचना होता है। गांधीजी के लिए सोचना ही करना है। सोचने और करने के बीच कोई अन्तराल नहा आ पाता।

३ परिस्थितियों को उनसे उत्तर मिलता है। कारण, परिस्थितियों की भाषा में वे कभी सोचते ही नहा। परिणाम यह कि कोई परिस्थिति उन पर टिकती नहीं, उन्हें घेरती नहीं और वे सदा गतिशील हैं।

४ अशक्य शब्द उनके कोप में रह नहीं जाता, क्योंकि आदमी के हाथ धम और तानुसार कम ही है, फल नहीं।

५ कम की सीमा है। उस सीमा को संकल्प पर क्यों लिया जाय ? इसलिए सत्संकल्प को कभी ढीला करने, उसमें विकार या आरोप लाने का असर ही नहीं है।

मूल भद्रा की इस भूमिका से आरम्भ करके, निरन्तर अभ्यास और साधना के सहारे एक ऐसी अगमता और अद्विगता उन्होंने प्राप्त कर ली है जो बड़े-से-बड़े सकट में उनका साथ नहीं छोड़ती। मनुष्य म से उनका विनाश कुछ या कोई नहीं तोड़ पाता। चारों ओर छल-कपट है, मार धाड़ है, लूट मसोट है, उसका बबर-से-बथर रूप सामने है, फिर भी उस आदमी को गांधीजी इस कोशिश में छोड़ नहीं सकते कि उसमें के अस्मिता (दैवी) मनुष्य का वे जगा सकेंगे।

इस तरह इस दुनिया में रहकर गांधीजी मानो सदा परीक्षा में हैं और उनका हाथ में राजनीति भी सदा परीक्षा में है। आज तो परीक्षा विकट है। अब भारत और पाकिस्तान दो अलग राज्य ह और ब्रिटिश राष्ट्र-परिषद के अग हैं। ऐसा जन हो ही गया ता उस पर सोच विचार करना बेकार है। वैसे राजी से हुआ। दानों राजनीति-पाटियों, लोचन हाकर ही सही, ब्रिटेन के साथ उस निभाजन को मानने को राजी हुई। उसके बाद जा हुआ उसकी मजबूरता जतान को शक नहीं मिलता। आग ऐसी जली कि सदियों के सम्पन्न स्वाहा हो गये। धैर और बदला धम बन आया। दुनिया का धम तात्विक ता नहीं हा सकता

उसे तो तात्कालिक होना पड़ता है। इसमें शास्त्रा की सीधी उपदेश की बातें उसके लिए असंगत होती हैं। इस तत्काल घम का अलग ही शास्त्र होता है। और क्या अनगिनत दूर-बीर, नेता और नायक नहीं हो गये जो शस्त्र लेकर रण में वृष ह और इतिहास ने, काव्य ने, नाना महिमाओं से जिनको मण्डित किया है। वह आग अब भी अर्धत की नहीं बन गयी है, बुझा अभी नहीं है, जल हा रही है और गाजानी उसके बीच में हैं।

और दुनिया की क्या हालत है ? किसी अग्रगण्य का काह कोना कारी है कि उस घरे में यह आप क भ्रम का दूर कर दे। माना अबस वेग से यह चली जा रहा है जिसका के मुँह में। राजनता, जो समझत है कि वे दुनिया को चला रहे हैं, भीतर मन्हे, भय, इष्या और वैर का पास रहे ह। माना चारों तरफ शारुद भरा है जो भमकन मो लगी है। घस लौ फा इन्तजार है कि कय मक् से मक्क उठ। 'एटम-बम' के जमान में तैयारी की बात क्या की जाय ? 'एटम-बम' है, तो उसके आस-यास हाइड्रोजन यम जेवा मिमती-बुलती दूगरा इनाद भी तो कम नहीं ह !

इसके मुकाबले दूसरी तरफ आधी से ज्यादा दुनिया में घन का निचाला है जो नात का अकाल है। मुक्क है जो साहूवार ह और अनाज से भरे-पूरे ह। पर यही भौका क्या व्यवसाय क लिए भी अचूक नहीं है ?—यह व्यवसाय जो सहायता को घम समझता है, साथ ही सौदे को श्रम नहीं समझता।

दुनिया की और दश की एसी हालत की हल्लम के बीचों-बीच गांधीजी रहे ह। अहिंसा उनका घम है, दण्डन है, नीति है, सब-कुछ है। लेकिन यह अहिंसा उस दुनिया क लिए है, जो हिंसा स काम लेती आयी है। जिमता इमान अब भी हिंसा में है, जो घम और कतल्य की राह से हिंसा में पहुँचती है, जो बहादुरी और पगल्लम उभी में देखती है, जो समझता है कि अहिंसा सिर्फ जीवन की चुनौती स बचना और मागना है। श्रिति इतना निगम है कि अहिंसा कुछ देसा ही निवारत और मनाक का

सयुक्त मानव

आस्तिक के लिए अवतार क क्षण में विश्वास करना सहज है। वह मानता है कि यहाँ ईश्वर का वादा होता है, इसलिये कतल सब उसी का है। आदमी तो साधन मर है, भगवान् क आदेश का पालन उसका काम है। उस अर्थ में हम सभी उसके भेजे यहाँ ह। जो यहाँ अपने मन-बुद्धि कम को पूरी तरह उस मौपदर स्वयं गून्व बन, उगने लिए अवतार से दूसरा क्या विशेषण आत्मिक के पास हा ?

गांधी एम ही पुत्र थे। प्रतीक की भाषा में नहीं, विज्ञान की भाषा में उन्हें अवतार कहना हाता है। उनको साधना महान् अथवा गुणवान् आदि बनने का नहा थी। वह निगुण, अकिञ्चन और एकदम गून्व हाने के प्रयत्न में रह। इस काश्चित् म भणुमर भी उन्होंने अपने को नहीं बचाया। साधना के इस रूप का ऐहिक बुद्धि से समझना असम्भव है। भक्ति ही उस मम का पा सजती है। ऐसी भीमा भक्ति म अपने को स्थान करने की मृतत चक्षा करनेवाला पुरुष अनायाम फिर कैसे अन्तःप्रीय राजनीति म अनिवाय और अन्त्य बन उठा, यह कितनी भी आर तरह समझ म नहीं आ सकता। गांधी उस बुद्धि के लिए मत्त पहली रहगे, जो जगत् को जगत्पाधार के बिना समझती है। अन्यथा गांधी द्वैत से प्रल जगत् के प्राण का एक समन्वित समाधान है।

गाँधीजी का काम ईश्वर का पास था। यानी आत्म बुद्धि का काम था। जीवन म् तत्र तत्र उसम एक बाधा था, वह बाधा थी शरीर। शरीर रहा वह पूरी तरह गून्व कम बनते ? उनका उत्तर तत्र तत्र अनूरा था। कैसे जीता, यह वा वह चता म् पर मरना पसे, यह

भी तो उन्हें बताना था। जीने से मरने तक धी धी जागन-नीति का चित्र उन्हें इस दुनिया का दे जाना था। यह बाधा इस तीस जनसूरी का उनसे दूर हो गयी। उनका काम भी तब एक संपूर्णता को आ गया। जीवन यज्ञ है और मृत्यु का भी यज्ञ के रूप में ही आना है। मृत्यु जीवन के अनुरूप ही एक यज्ञान है। तमाम जीवन ही यज्ञ है। अथ धी भौति वह पवित्र हो और वृत्ताय मात्र से उमका होम लिया जाय, यहा है सची जीवन-पद्धति। गांधी-जागन आर गांधी-मृत्यु उखा का सचित्र व्याख्या है।

जीने वक्त आसुर था कि हिन्दुमान उह अपना नता कहे देवतास पिता कहे आर कुछ लोग अपने का उनक पास आर दूर यहुनरे अपने को उनसे दूर मान, कुछ अपना उन पर अधिकार मान, दूर अपने का वचित मानें, कुछ सामाज्यशाली वने कि व गांधीना के नजदीक हुए, ता कुछ आर खुद का मन्दभागी मानें कि व गांधीना के पास तक न पहुँच पाय। इस तरह दूर-पास, अपने-पराये के दायरों से उनका मुक्ति न थी। पर वह ता एन के हातर सज्जे बनना चाहते थे। दुनिया के न रह जायें इस कामत पर उन्हें हिन्दू का ना हिन्दू का नहीं रहना था। विभेद से अभेद उन्हें पा लना था। लेकिन उस अभेद में जनता के विभेद घटता ही था। इसका उपाय यही था कि अन्तिम बाधा यह गिर आर गन्ध म मिलकर वह एक ही साथ सज्जे समान भाव न मुक्त बन जाय। अब हिन्दू, काश्मीरी या हिन्दुमानी इत्यादि काद विभेद उह छुट्टे आर पा नहीं सकता। किसी के गव को उनका सहारा नहीं हो सकता, न किसी के लिए उनसे निरागा का बहाना। गांधीनी आज के प्रजाप आर आत्म्य के रूप में सामने है और वह उहाँ के हैं ता उह अन्न अन्न र्थने का तरार है।

इस अर्थवत्ता से अलग गांधीजी के मन्त्र का समझन नही मरी शक्य नहीं है। कम में गांधी विविध हैं और वृद्धि भेद के लिए माका लाइते हैं। सत्य ही इश्वर, प्रात रूप में यही अहिंसा—इस दा गुरु धी

रिभाषावाली अनन्य निष्ठा से आगे चलकर उनका अनंत शीलमय जीवन हमको प्राप्त होता है। वह चमत्कृत कर देता है। उस जीवन का अनुकरण नहीं हो सकता। यह गांधी के साथ इतना विशिष्ट है कि इतिहास में किसी भी भौति दोहराया नहीं जा सकता। लेकिन जो सर्व सामान्य है, सब काल और सब भूमि के लिए है, सबने लिए सहज और सुन्दर है, वह है उनकी सत्यनिष्ठा और अहिंसक तत्परता।

हर आदमी की अपनी परिस्थिति और अपनी भूमिका है। धर्मनिष्ठा का प्रयोग भी वहाँ जा होगा दूसरी किसी परिस्थिति अपना व्यक्ति के लिए उपयुक्त न ठहरेगा। इस तरह एकमेव ईश्वर निष्ठा से इस ब्रह्माण्ड के अनन्तानन्त व्यापार चल सकते हैं और उन सबके विभिन्न स्वरो से एक ऐसे समन्वित संगीत का स्वर शकृत हो सकता है कि सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-तारा मन्त्र सब मुग्ध हो जायें। इसके विपरीत व्यक्ति की निष्ठा से, उनकी अपनी-अपनी स्वायत्त भावना से, जगत् का कम-चक्र चलता हो तब संपन्न और सघात का ताण्डव मच उठे हर दस-बीस साल बाद महासहारा की शीला अनिवाय हा उठे लोग डरते और डरते हुए जीवें और इस डर के तले अपने को दलाने प्रयास करते हैं और वेर पोसें—तो इसमें अचरज क्या !

गांधी को उसी मनोलोक का, सतयुग का या मागधभूमि का वासी कहना होगा जो फोलाहल म संगीत जगाता है, बुगद में से मन्त्र उभर जाता है, जड़ को चेतन करता है और संपन्न में से सहयोग जुटाता है। तो क्या कभी सचमुच राम-राज्य होगा ! क्या ऐसा यभी हागा कि राजा बही हो जा सयरा चाकर हा और प्रजा का हर आदमी अनुभव करे कि यह मालिक और राजा दास है। कि औरत आदमी इतना स्वयं और समथ हो कि दूसरे के स्नह में अपने को समाने की ही सोचे, उसम अपना स्वायत्त साधने की तनिक भी न साचे ! कि, सतेज में, राजा और राज्य हो ही नहीं, सब भ्रमी हों और स्नेही हों और इस तरह से सब एक-दूसरे के प्रेरक और स्वावलम्बी हों !

रहा है। निम्न शस्त्रास्त्र के मुँह में युद्ध है। लेकिन राज नेताओं के और उनके राजकरण के अंतर में, वहाँ मानव-सामान्य का हृदय निवास करता है उस बहुमन्य जनता में, गहरा सत्य घर घर गया है। जान पड़ता है उस सत्यता, यानी राजनीतिक सम्पत्ता की यह आगिरी चमक है और उस अज्ञान को बुझ रहना है। एक नये युग का सूत्रपात होनेवाला है और गांधी का सिद्धान्त उसी का श्रीगारोपण है। उसका भव्य जीवन यदि समाप्त हुआ है तो इसीलिए कि मानवता के आगामी विश्वास में वह अमर हो उठे। गांधी से एक काल का अज्ञान और दूसरे काल का अदयारम्भ होता है। उसका कर्म सर्वोदय कर्म।

मानव-व्यापार में अब तक एक असिद्धि देवद्वय में आती थी। जैसे वह सूत्र हाथ में आता था, जो विभक्त मानव को समुच्च कर दे। व्यक्ति के प्रकृत कर्म-प्रणय में जोर उसी की अत्यन्त आकांक्षा में विग्रह और विरोध रहता था। हर व्यक्ति अपने अन्दर मानसिक द्वन्द्व लिये चलता था। समूह रूप में वही विग्रह धन और जन का, आसक्त आसक्ति का, पूँजी-श्रम का, यानी श्रम, शान् अथवा श्रेणी विग्रह का रूप लेता था। इस विग्रह विरोध को अन्त कर देने के लिए जो उत्कृष्ट और अनिवाच्य प्रयत्न हुए, दया गया कि वे श्रम या उस मत (याही व्यक्ति) की अधिनायकता (Ideological, i.e., Dictatorial Totalitarianism) में निपल्ल हात हैं। फिर एक का नाम कम्युनिज्म है और दूसरे का नाम फासिज्म या नाजिज्म, यह मापा की ही पाठ है। अन्तर्निरोधा का ह्यतः बाहर मिगने के हाँ दृशिम प्रयत्ना से हास्त मुधरा नहीं समस्या और विपम ही हाँ आपी, अभीष्ट और दूर ही जाता दिव्याद दिया। सहसा प्रतीत होता था कि व्यक्ति जो व्यक्ति का प्राण करता है और समूह-समूह का, सा सपका एक-सा भय चाहता आर करने की नीति पर गन्धी की जानेवाली संस्था, यानी स्टेज, उन साधना का क्षेत्र में परक और विशान के सभ आगिरीरों की मदद से सभी व्यक्तियों और वर्गों के ऊपर हाकर, जम्पर स्वयं परनी

पर उतार ला सकर्गी। पर वैसा न हुआ जोर लगे स्वन आदमी के रक्षण से अधिक जालमी का भाव न निकली।

हियत ही साँ आर सींग था। पर फारसाम न उलझन न गनी। पहले लिपिनी आर अक्षरा लंग न जोर - हादिन वन इण ५ गाचा कि उलथा-बुद्धिगाते बधिक वन हुकमन न हुँ पर हाँ नर हाँति स्वार्यो स पैदा हानकाला दिक्कत रह न लकरा लंग तीन का राग्य करण हाग आर एउ तरह समन्वाप कादुर ह जाकरा

वह हियाव नही उतरा नगी है। किन मर्गिनी का घडाघड मानव के लिए भाव्य और उपमाय साम्रा न करना था उँ जँ गम्य बनाने में लगना पडा जान पहले उँ तर ल जोर समान बनाने की सोच। एसे जन मग की प्रचुरता समनं य लमी अपना रता न सवाल फिर आया। उन्नति कर्म जाने म हस उग्य दुगुनी न दुग्मनी पैदा करत बात ह, नवता पडा न रहता था। उँकन एन उँत पर वह नीज सामन था गयी।

परिणाम यह है कि घन जितना उँग गलता ना उतनी हा क्या है। उन्नति उतनी हा हुँ है जितना उँ र हाथमार उँ ह। निचय ही हम दैन्य और उँ बनाने के लिए उँधर नग चँ थ। क्या लिठला यो लडाद्यों इगीलिए नही लडा गया थी कि लण्य का अन्त हया और मुग्य वन का रास्ता खुलगा! बुद्ध म हारा-लग्न का भारना एँस हो तो नही है, नैस कडादरवाने न जानय का जिर करना। नहा उसम निगठता है। लाग तप सिद्ध मारत नही ह गक जँन एग्य पुम्य का काम करत ह। माना विन कतन की राह की गथा का द हागत ह। यानी एँक आदम्य महत् भावना के सगरे हा बुद्ध लडा जाता ह। एस तरह एक वग साहित्य और एक छव्या परम्परा न गना है ब बुद्ध की शिष्य को चित्ताकरक बनाती है। यहा मारने की बीरता आर मारत हुए मरने का अभंगता कहा जाता है। एसे महत् गँ के भाव से लाग सामन वाले का दुग्मन कहकर एक-दूसरे का गला काटने का काम करत रहते हैं।

जरूर उस हिंसा में चूक है। जरूर वहाँ कुछ छद्म और छल है, वहाँ एक-दूसरे की हत्या घम बन जाती है। वह छल वहाँ है, पकड़ में न आता था। धार्मिक जन थे और धर्मशास्त्र थे, पर वे तो सिद्धान्त की दुनिया के लिए थे। काम-काज की और मेरे-तरे की दुनिया में वे नेकार साधित होते थे। सन्त इस तरह स्वतंत्र था कि बन में या बुटिया में सन्त बना रहे और गाँवों का भी अवसर था कि स्वर्गिक सिद्धान्तों की अवाचीन व्याख्या स वे भरे पूरे रह। जैसे असल जगत् उनसे अछूता था और उसके अलग नियम थे।

गांधी ऐसे समय सिद्धान्त में से नहीं, ठेठ व्यवहार में से आविर्भूत हुआ। वह पैरिस्टर था और मामले-मुकदमे निपटता था। उसकी व्यवहार की अनाखी सफलता ही गतानुगतता को चुनौती थी। उसने बताया कि साधन नहीं है भिन्न साध्य स, और एकता लाने के लिए विग्रह की या सुरक्षा लाने के लिए हिंसा दो राह नहीं चलना होगा। कल जो हम चाहते हैं, आज उसी के बीज हम बोने होंगे। एक अनेक से अलग नहीं है, इसलिए समाज के सुधार या परिवर्तन के लिए अपने सुधार पर ध्यान से शुरू करना होगा। दूसरा यही है जो मैं हूँ, इसलिए अपनी इज्जत के लिए दूसरे की इज्जत करनी होगी। अपने मत के लिए दूसरे के मत की रक्षा करनी होगी। परिवर्तन आयेगा ता बाहर से नहीं, सच क अन्दर से यह आयेगा। इसलिए असल परिवर्तन हृदय में और हृदय का होना है। और वह किसी समस्या के, शास्त्र क या मत के बल से नहीं होगा, आत्मा के बल से होगा यानी कष्ट सहन और क्षमा की शक्ति से होगा।

घात ये नहीं न थी। प्राचीनता जितनी पवित्र और मुन्दर थी। सिद्धान्त के समान ये प्रुय थी। लेकिन गांधी ने अपने रक्त से उन्हें धंगारे की तरह लाल बनाया। घड़कते तिल की तरह वे हरएक में जा चैरें। उनकी सच्चाई की माग्य सच के अन्दर में आप ही जग आयी। परिणाम यह कि सीधे-साथे दाढ़-गाँव के लोग गांधी के स्वयं से एसी ऊँचाई तक उठ आये कि पीठे स्वयं उनको ही विश्वास न होता था।

एक समूचे दान ने गांधी के जादू के नीचे शत रहकर एक जबरदस्त साम्राज्य को बीता और आजागी पायी। साबित हुआ कि आदमी में कितनी भी दुजलता हो, बरस्ता भी हो, लेकिन गहराद में उसके देवल भी पडा हुआ है।

परम मूर्त्या और ध्रुव सिद्धान्तों का गांधी के हाथा यह जीवित पुर स्कार और सवय की राननीति म घम की नीति का यह सफल प्रयोग बीसवीं सती की दुनिया क लिए अनोग्या है। उसने एक तार उस खाइ को पाट दिया जो घम और कम को अलग रखे हुए थी। व्यवहार ही अष्यात्म का क्षेत्र बना और राननीति शास्त्र में राम-राज के आदेश की प्रतिश्र हुर। भारत-जैसे महादेश की सतिय राष्ट्रनीति का चलाते हुए भी उन्होंने राम-राज की टेक रखी। राम-राज्य, राजशाही या लोक शाही आदि कुछ भी नहा है। यह तत्रयद नहीं है। उस राय क अय को यहाँ तत्र खाचा जा सकता है कि वह राय सैसा रहे ही नहीं।

इस तरह गांधी राजकरण को चलाते हुए भी सगन्धित और केन्द्रित मत्ता, यानी स्टेट का विनेन्द्रित भी करते गये। सत्ता की अपेशा व्यक्ति को उन्होंने अधिक ही महत्व दिया और कहा कि हुकुमत की सफलता इसमें है कि वह रहे ही नहीं। उस जीवन-क्रम को उन्होंने घणित करत बताया, जहाँ आत्यन्तिक व्यवस्था रहती है, फिर भी अलग स काद यव स्यापक आवश्यक नहीं होता। आदर्ग समाज स्वय अपने भीतर से नियमित होगा, बाहरा नियामक उसके लिए अनाथयक हा रहगा।

गांधीनी सक्षेप में उस जीवन-नीति क मृत उताहरण हैं, जिस पर व्यक्ति और समाज का आगामी निमाण होगा। उस नीति क कुछ ये सूत्र उन सरते हैं

(१) आवश्यक है कि व्यक्ति का राष्ट्रम उसके अन्त करण से टूटा हुआ न हा। प्रेरणा उत्तरोत्तर व्यक्ति को अपने अन्तरतम मे प्राप्त करनी चाहिए। व्यक्ति के अन्तरतम में इश्वर का निवास है। इमलिए जा यहाँ स अपना आदेश और नियम प्राप्त करता है वह सतत यमाँ होकर सर्वथा

निलिप्त बनता है और इस तरह उसका स्वयं वम अतुल्य फल देता है।

(२) इन्द्रियों का बुद्धि में, बुद्धि को मन में, मन को आत्मा में युक्त करके आ विराजता है, यह जगत् को प्राप्त करता है।

(३) सत्य ही एक है, इसलिए अपने से श्रेय व प्रति व्यक्ति का सम्बन्ध अहिंसा का ही हा बनता है। ऐसे ही सत्य का साक्षात्कार सम्मन है।

(४) तत्पर अहिंसा यानी सत्रिय सेवा विना सिद्धि नहीं। भक्ति उसी सकमल रूप में उपलब्धि बनती है।

(५) मनुष्य जैसे भोजन विना नष्टा जी सकता वैसे ही धर्म विना उसे जीने का हक नष्टा आता। धर्म से वह भोजन-वसन ले। यह धर्म सेवामय और यथाथ ही हा सकता है। ऐसा न करके जो लता है, वह चोरी करता है।

(६) मानव-सम्बन्ध अहिंसा पर बनने वा उनक वाच धर्म का आर धर्म के फल का आदान प्रदान जहाँ तक हा सीधा और सुन्दर हागा। उपज और रसत के बीच विनिमय क माध्यम क तार पर भणी का और सिद्धे को आने की कम-से-कम आवश्यकता हानी चाहिए।

(७) समाज की रीति है उत्पादन धर्मिक। पदाथ वा गुच्चा मानिक भी वही है। शप उससे वाद आने है। इस तरह व्यवस्थापक और हाकिम बांझ हैं, जिनका शनै गुने हटना और स्वर भूमिक बनना है।

(८) प्रकृत हिंसा अन्तर क द्रव्य और वर आति वा परिणाम है। उचितियों, श्रेयिया और समूहों में विग्रह आर प्रतियुद्ध वा सम्बन्ध भ्रान्त है। उस आधार पर प्राप्त किया गया काद परिवर्तन पुन आर ग्यापी नहीं हा सकता।

(९) अनीति आर अधम से युद्ध टानना ही जानने की प्रगति है। अनीति से नतिक होकर आर अधम से धार्मिक हाकर ही सामना किया

जा सकता। उसका उपाय है, आपसी विचार विनिमय, कष्ट-सहन और फिर आवश्यक होने पर असहयोग और सत्याग्रह।

(१०) दूसरे को कष्ट देकर उसे बदला नहीं जा सकता। कष्ट रूढ़कर ही उसमें हृदय-परिवर्तन लाया जा सकता है। क्योंकि अन्त में वह मुझसे मित्र नहीं है। इससे मेरी सच्ची यथा उसे हुए बिना न रहेगी। फिर भी वह राम राम का है और अपनी यथा में से मैं अपनी शांति पाता हूँ, यहाँ मैं निष्कट उपलब्धि है। उपवास इसी जात्म-पीड़न की धर्म-नीति का एक रूप है।

(११) माया, भूगाल, रीति-नीति, आचार-व्यवहार आदि से हमारे बीच अन्तर पड़ हुए हैं, उनका मान देकर भी हम अविचलित भ्रजा रखना चाहिए कि हम सब एक ही कुटुम्ब के हैं और सब अपनी अपनी माया और धर्मों के द्वारा एक ही भगवान् को पूजते हैं। जीना मरना भगवान् की इच्छा से होता है। इससे मृत्यु को हिसार में लाकर सीधे से टडे हम नहीं जा सकते। मृत्यु तो मित्र बनकर आती है और उसे हँसते हुए मँटना है।

(१२) क्षमता ग्राह्यता नासमझा से होती है। इससे धीरज और दूसरे में विश्वास नहीं रखना है। विश्वास रखने से व्याक्त विश्व-सनीय बनता है। और ऐसे कोई ठगाया मा चाय तो हानि नही है।

मनुष्य व्यक्तित्व का साधन-रूप सदियों से खोजा जा रहा है। भारत में लिये सांग-साधना करें, वह यही व्यक्तित्व का एकाकरण है। मानस शास्त्री आभास पाते रहे हैं कि व्यक्तित्व अगर अपने में पूरी तरह गठ जाय तो उसमें से कितनी न विराट् शक्ति प्रसुद्धित होनी चाहिए। अणु के अन्तर्भेदन से जा शक्ति प्राप्त कर ली गयी है, वैज्ञानिकों को कट पीरिया से उसका अनुमान था। विभक्त अणु (Split Atom) की सयुक्त मानव की तुराना में विस्तार ही क्या है! मेरा मानना है कि इस सम्पूर्ण एकीकरण (Integration) का न्यायवार विज्ञान शोधक का गांधीजी के जीवन प्रयोग से प्राप्त हो जायगा। उनकी बाणी

और लेखनी में उसकी टीका भी पूरी मिल जाती है। सत्य का यह समग्र और वैज्ञानिक प्रयोग एक ऐसा चमत्कारपूर्ण आविष्कार है कि उसके प्रकाश और परिणाम में सहस्राब्दियों तक अनन्यतन्त्र शास्त्र, छान्दस्य और संयोजनाओं को स्वरूप मिला करेगा और मानव मानवात्तम बनन की राह पाता रहेगा।



गार्गीजी का अस्वराज योग

गार्गीजी के बारे में बहुत लिखा गया है। उनका काम हर तरफ फैला है, और उसके अनगिनत पहलू हैं। उनके दानों का शब्द में बौध्दना ऐतिहासिक के लिए आगान नहीं होगा। काद धत्र नहीं जिमम उनका असर समाया न हा। उनका प्रकाश दूर तक और हर काने म पहुँचा है। उनकी छाप समय पर गहरा है और हिन्दुमान के तो इस च'याइ सगै का इतिहास उन्ही की साँस स बना है।

लेकिन उनके याहरी काम और असर क खरिय गार्गीजी की अस लियत तक पहुँचन में कठिनाइ भी हा सकता है। धूप म सूरज का दलन स आँखों में चक्याचौष समा जाती है। तब सूरज टाक टाक नजर नहा आता। उसी की राशनी की झलझलहट हमें उससे पर रखती है। इस लिए अस्वर रोग, धूप पाकर जिनका सूरज स बनारस समात नहीं हाता और जो उससे धामे भी सूरज की सचाइ पाना चाहते हैं, उपाय करते हैं जिसे सूरज और उनके बीच की धूप उन्हें आँखों न लग। एस हा मुझ प्रतीत हाता है कि गार्गीजी की असलियत को पान के लिए उजा गर राजनीति में स न देखना, या उससे असलग्न हाकर देखना वादा टीक होगा। उनके जान्दालनों अथवा उनकी सरथाओं में से उह देखना धुएँ में स आग या कस्थर में से आमा का देखने के समान हा सकता है।

हमारी माया स्वाथ की है। माया का प्रयाग है कि अनुक ने हमें प्रकाश का दान दिया। कृतज्ञता स यह कहना टाक ही है। पर सच्य में हम जानते हैं कि प्रकाश, जा दाता कहा जाता है, खुद म वा यह जस्था

ही है। प्रकाश को वह नहीं जानता, जलने को ही जानता है। प्रकाश इस स्वयं जलन का ऐसा प्रतिफल है कि जिसमें अपने-आप में कोई अमीछता नहीं है, केवल एक अनिवायता है।

गांधीजी के जमाने में रहकर हमारे लिए सम्मन नहीं है कि हम उनके प्रति कृतज्ञता की भाषा से बच सकें। उन्होंने हमको हमारी मनुष्यता की सुधि दी है। हमारी आँखें खाली हैं। उस हिन्दुस्तान में हम रहते हैं जिसकी रगों में उन्हीं के जगाये प्राण दौड़ रहे हैं। इससे अभि-नन्दन और अनुगमन द्वारा हम गांधी को प्राप्तकर प्रसन्न होते हैं।

लेकिन अगर हम कृतज्ञता के भाव से ऊपर जा सकें और गांधीजी की मर्दिमा में न रहकर उनकी सत्यता में उतर सकें तो हमें साध रह जाना होगा। तब शायद मय से हमारा मन रुक जायगा। 'नेता' मान कर उनके प्रति जय-जयकार का गुञ्जार तब हमसे कदाचित् न पूरेगा। बल्कि हमारा हृदय एक गम्भीर अनुकम्पा और अज्ञात भीषिका से भर आयेगा। हमारी आँखें तब भीग आयगी और लगेगा कि हमारी नीचे की धरती धूँप हो गयी है और एक अतल में हम खाय जा रहे हैं।

गांधीजी का बाहरी रूप मोहक है। लेकिन उनकी भीतर की यथा-यथा धरा दनवाली हो सकती है। वहाँ एक ऐसा महा-दृश्य है कि जिसकी याद नहीं और विरले को उसमें सौजन्य की हिम्मत हो सकती है।

स्पर्श जा करता है वह उसी का रूप है जो वह है। होना ही करना है। कम का मूत्र मात्र में है। इससे उसकी पाहचान भी वहाँ है। यानी आदमी के महत्त्व की परत इतनी नहीं है कि वह क्या करता है, बल्कि वह ता इसमें है कि वह क्या है।

दुर्गो भोंति गांधीजी की यथायथा राजनीति में नहीं घम में दर्शाती होगी। राजनीति कम-गत है, घम मात्र रूप। इससे घम प्राण हाकर ही राजनीति साथ है। तथा वह मित्या है। घम से रिहीन कम घमन की सुधि करता है। घम घम के मूल में 'अधम' नहीं रहता, अहंकार रहता

है। गांधीजी का काम स्वभाव-सहज है। यहाँ तक कि उसका कर्तृत्व भी गांधीजी पर नहीं है। वह-से बग़ काम इसीसे उनकी नाद का अटका नहीं पाता है।

इस प्रकार गांधीजी का काम गांधीजी का माप नहीं है। इस जगह वह सब देशों और इतिहासों के राजपुरुषों से अलग हैं। रात्रिकीय महापुरुषों का काम विराट् किन्तु व्यक्तित्व स्वयं होता है। मानो उस काम की विराट्ता व पीछे मन प्राण की धुद्रता छिपी रहती है। किया जानेवाला काम देश-देशान्तर-व्यापी, किन्तु करनेवाला मन अहम्-सीमित होता है। धार्मिक पुरुषों की बात इससे न्यायी है। कम ऐसे व्यक्ति के पास गून्थवत् है आर भाव पर उसके काद निजता की सीमा नहीं रह जाती। इससे ऐसे व्यक्ति का स्वयं कम कालान्तर म वृहत् फल उत्पन्न करनेवाला हो गया करता है।

गांधीजी की दूसरे अधिकांश प्रसिद्ध कामप्य पुरुषों से इस जगह धृमन्ता है। छोटे काम या बड़े काम जैसी भ्रमा उनके पास नहीं है। काम को भी छोटा नहीं है, इसी से न को बड़ा है। अन्त में आन्त रिक्ता म वृष्य वाहरी काम सी वस्तु ही उनके पास नहा है। यह उनकी विशयता संसार के कामिन् पुरुषों से उद अलग करके इतिहास के आत और मुक्त पुरुषों की पक्ति में रख देती है।

गांधीजी की सम्पूर्ण सत्यता की शक्त के लिए उनके रचनात्मक कार्यक्रम के अध्ययन से अधिन उनकी निश्र के मनन की ओर मुड़ना होगा। क्या वह यज्ञ ज्वाला है जिसमें कि उनका क्षण-क्षण जलता और उजलता हुआ बीतता है ! क्या व्यथा है जो उन्हें धारण रखती है ! अचूक आर हर दिन प्रातः-संज्या प्राथना के रूप में उस व्यक्ति म से अन्तर्गमित होनेवाला वेदना क्या है ? यह राम-नाम की स्मृति प्रकृत म क्या है जो शहर पँतीस वर्षों म दिन-रात के किन्ही पर उनम नहा धम पायी ! मया आग्रह है कि इसी अज्ञात आर अजेय महारहन्य म गांधीजी के व्यक्तित्व की सच्चाद निम्ति है।

योग का लाभ होगा जो सब में व्याप्त है। इसी में सं व्यक्ति, दश और जगत् की मुक्ति सिद्ध होगी। इसमें कर्म हस्त नहीं होगा, उस पर से व्यक्ति की निजता की सीमा उठ जायगी। तब स्थूल-कर्म पूजा के समान पवित्र और व्यक्ति-कर्म प्रकृत (परमात्म) कर्म के समान मुक्त, गम्भीर और विराट् होता जायगा।



गांधी-नीति

कहा गया कि गांधीवाद पर कुछ लिखकर दें। मने यह गांधीवाद शब्द मिया है। वहाँ वाद है नहीं विवाद अर्थ है। वाद का अर्थ है कि वह प्रतिवाद को विवाद द्वारा खंडित करे और इस तरह अपने को प्रचलित करे। गांधी के जीवन में विवाद एकलम नहीं है। इसलिए गांधी का वाद द्वारा प्रहण करना सफल नहीं होगा।

गांधी ने काद सूत्रवत् मन्तव्य प्रचारित नहीं किया है। वसा रोमन मन्तव्य वाद होता है। गांधी अपने जीवन का मन्व्य के प्रयोग के रूप में दर्शाते हैं। मन्व्य के माध्यात्मिक की उसमें चला है। मन्व्य के नाम दिया गया है, उसके ज्ञान का निरन्तर प्रयोग है। उनका जीवन परमाणु है। परीक्षा फल आँकने का काम इतिहास का होगा, जब कि उनका जीवन विद्या का सुखा होगा। उसमें पहले उस जीवन फल का तात्पर्य के लिए बात कहो है, रंगों के लिए अन्तर (Perspective) कहो है ?

वा विद्वान्त गांधी के जीवन द्वारा चरितार्थ और परिपुष्ट हो रहा है वह केवल धार्मिक नहीं है। इसलिए वह केवल बुद्धिवादी भी नहीं है। वह मनुष्य के जीवन में सम्बन्ध रखता है। इस लिहाज से उस आध्यात्मिक कह सकते हैं। आध्यात्मिक, यानी धार्मिक। रक्तित्व का और जीवन का काद पहले उसमें बचा नही रह सकता। क्या व्यक्तिगत, क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक, अथवा अन्य धर्मों में यह एक-सा मानक है। वह चिन्मय है, यादगत वह नहीं है।

गांधी के जीवन की सन्ध्या विविधता मीतरी कथय और विश्वास की निरन्तर प्रकृता पर कायम है। वो चिन्मय तत्त्व उनके जीवन से व्यक्त होता

है उसमें रूढ़ि नहीं है, वह सहज और स्वभाव-रूप है। उसमें प्रतिभा की आभा नहीं है, क्योंकि प्रतिभा द्रव्य होती है। उसे निगुण अद्वैत तत्त्व के प्रकाश में देख सकें तो उस जीवन का विम्वयकारी वैत्रिच्य दिन की धूप जैसा घोंग और साफ हो आवगा। अन्यथा गांधी एक पहली है जो कमी खूब नहा सकती। बुजी उसरी एक और एक ही है। वहाँ दो-पन नहीं ह। वहाँ सय दो-एक हैं।

‘सर्वधमाम् परिवर्ग्य मामेकं शरणं ब्रज।’ समूचे और बहुते मतवादों के बीच में रहकर, सबको मानकर किन्तु किमी में न पँसकर, गांधी ने सत्य की शरण का गह लिया। सत्य ही इश्वर और इश्वर ही सत्य। इससे अतिरिक्त उनके निकट इश्वर की भी कोई और भाषा नहीं है, न सत्य की ही कोई और परिभाषा है। इस दृष्टि से गांधी की आस्था का आधार अविनाशनी का एकदम अग्रम है। पर वह आस्था अज्ञ, अजय और अचूक सी कारण है। देखा जाय तो वह अति सुगम भी इसी कारण है।

वहाँ से गांधी का काम की प्रेरणा प्राप्त होती है, इसका बिना अनुमान किये उस काम का अंगीकार कठिन होगा। श्रोत को जान लेने पर मानो वह काम सहज उपलब्ध हो जायगा। गांधी की प्रेरणा शत प्रति शत आनि कता में से आती है। वह सनया अपने को इश्वर के हाथ में छोड़ हुए हैं। ऐसा करके अनायास वह मान्य पुन्य (Man of Destiny) हो गये ह। जो यह चाहत है होता है—क्योंकि जो होनेवाला है उसके अतिरिक्त चाह उनमें नहीं है।

यादिक रूप से ग्रहण की जानेवाली उनकी जीवन-नीति, उनकी समाज-नीति, उनकी राजनीति इस आस्तिवता के आधार का ताइवर समझने की कोशिश करने से समझ में नहीं आ सकती। इस भाँति वह एकदम विरोधाभास से भरी, धनवाओं से कम और प्रयत्नों से झिड़ मादस होगी। जैसे मानो उसमें कोई रीढ़ ही नहीं है। यह नीति मानो अवसरवादी (Opportunist) की नीति है। मानो यह चापपन है। पर मुझ तो

ऐसा मालूम होता है कि यह घाघरन, यह फाउंडेशन, अनायास ही यदि उन्हें सिद्ध हो पाया है तो इसी कारण कि उन्होंने अपने जीवन के समूचे चोर स एक और अकेले लक्ष्य को पकड़ लिया है। और वह लक्ष्य क्या कि एकदम निगुण, निराकार, अशेष और अनन्त है इससे वह किसी का बंध नहीं समझता, गोलवा ही है। उस आदर्श के प्रति उनका समर्पण स्वाधीन है। इसलिए सहजभाव से उनका व्यवहार भी आदर्श से उज्वल और ग्रंथहीन हो गया है। उसमें द्विविधा ही नहीं है। दुनिया में चलना भी मानो उनके लिए अध्यात्म का ध्यान है। नर की सेवा नारायण की पूजा है। कमसुकौशल ही योग है। इश्वर और सत्कार में विरोध यहाँ तक कि द्वेष ही नहीं रह गया है। सृष्टि सद्यमय है और विद्या को भी सोना बनाया जा सकता है। यों कहिए कि सृष्टि में सृष्टा, नर में नारायण पदाधमात्र में सत्य देखने की उनकी साधना में से ही उनकी राजनीति, उनकी समाजनीति ने वह रख लिया जो कि लिया। राजनीति जाध्या भिक्तता से अनुप्राणित हुई, स्कूल कम में सत्यज्ञान की मतिंग हुई और घोर घमासान में प्रेम और शान्ति के आनन्द को अभुष्ण रखना बताया गया।

सत्य ही है। भेदमात्र उसमें छप है। इस अनुभूति की सीनता ही सर का परम रूप है। परन्तु हमारा अज्ञान हमारी धाधा है। अज्ञान, यानी अहकार। जिसमें हम हैं उसमें ही, अथात् स्वयं में शून्य, अपने को अनुभव करते जाना ही ज्ञान पाना और जीवन की चरितायता पाना है। यही कृतव्य, यही धर्म।

विश्वास की यह भित्ति पाने पर जो व्यक्ति चलने का प्रयास होता है, तब उसके कम में आदर्श सामाजिकता अपने आप समा जाती है। समूचा राजनैतिक कम भी इसमें भीतर आ जाता है। देश-सेवा आती है। विदेशी सरकार से लड़ना भी आ जाता है। स्वराज कायम करना और शासन विधान को यथावश्यक रूप में तोड़ना, बदलना भी आ जाता है। पर यह कैसे ?

सत्य की आस्था प्राप्तकर उस ओर चरने का प्रयत्न करते ही अभ्यासी को दूसरा तरंग प्राप्त होता है—अहिंसा। उसे सत्य वा ही साक्षात् पदार्थ फटिए। जैसे रात को चाँद का वस उजला भाग दीगता है, शेर रिठला भाग उसका नहीं दिखाने देता, उसी तरह कहना चाहिए कि जो भाग सत्य का हमारे सम्मुख है वह अहिंसा है। यह भाग अगर उजला है तो किसी अपर ज्योति से ही है। न्विन फिर भी वह प्रकाशो द्गम (सत्य) न्वय हमारे लिए कुछ अशात और प्रार्थनीय ही है। और जो उसका पहलू आचरणीय रूप में सम्मुख है वही अहिंसा है।

सत्य में तो मय हैं एक। लेकिन यहाँ इस संसार में ता मुझ जैसे कोटि-काटि आदमी दीखते हैं। उनके अनेक नाम है अनेक वग है। ईश्वर में आस्था रखें तो इस अनेकता के प्रति वैसा आचरण करें ? उन अनेकों में भी कोइ मुय अपना मानता है, कोइ परया गिनता है। कोइ सगा है, दूसरा श्वेपी है। और इस दुनिया के पदार्थों में भी कुछ मेरे लिए जहर है, कुछ अन्य औषध है। इस विपमता से भरे ससार के प्रति ऐक्य विश्वास को लेकर मैं कैसे बतन करूँ, यह प्रश्न हाता है।

आस्तिक अगर ऐसे विकट अवसर पर मशय से धिक्कर आस्तिकता को छोड नहीं बन्ता, ता उसके लिए एक ही उत्तर है। वह उत्तर है, अहिंसा।

जो है इश्वर का है, इश्वर-कृत है। मैं उसका, किसी का, नाश नहीं चाह सकता, किसी की बुराई नहीं चाह सकता, किसी को क्षुण नहीं कह सकता घमड नहीं कर सकता, आदि कर्तव्य एकाएक ही आस्तिक के ऊपर आ जाते हैं।

लेकिन कतव्य कुछ आ जाय—तक मुशायगा कि—सचाई भी तो हम देख। आँस सय आर से तो मूँदी नहीं जा सकती। यह आँस सिन्वाती है कि जीन जीन को ग्याता है। मैं चरता हूँ, कौन जानता है कि इसमें भी शत्रुता को असुविधा नहीं हाती, बहुतों का नाश नहीं होता ! आहार रिना क्या मैं जी सकता हूँ ? लेकिन आहार क्या दिना नहीं है ? जीवन

का एक भी व्यापार हिंस्र के बिना सम्भव नहा बनता दीरता । जीवन युद्ध निम्नजा देता है । उहाँ शान्ति नहा है । पग पग पर दुविधा है और विग्रह है ।

सब कहें, कीन क्या कहता है । एवं मूल पर आक्रम इश निग्न दूकर ही रहगा । एम समर पागल ही इश्वर की बात कर सनता है । निम्नकी आँखें खुली हैं अर जुठ दान रुकती है वह सामने क प्रत्यय जीवन में से और इतिहास द्वारा पराश्र जीवन म से सास-सास सार तत्व का पहचान लगा कि युद्ध ही भाग है । उसम दल की ही बिन्य है जार रल जिस पद्धति से विजयी हावा है उसना नाम है हिम्न । जा मन्वृत है वह निम्न का दयाता आया है और इसी तरह विद्वांस घातत होता आया है ।

मर ख्याल म भडा के अभाव में तक की जार मुक्ति की सचाद आर चुनौती यही है ।

किन्तु समल्य भी यही है । रोग भी यही है । आज निम्न उलक्षण का मुल्गाना है और जिस उलक्षण का मुल्गान का सवाल हर देश में हर काल में कमउत्र म प्रवेश करनेवाले याडा क गमन आगगा, वह यही है कि इस कुल्लेत्र में मैं क्या करूँ ? निम्नका छोड़ूँ, निम्नका लूँ ? बुराद को कैस पडाई ? बुराद क्या है ? क्या बुराद अनुक अथवा अनुक नामगारी है ? या बुराद वह है जो कि दु स ठती है ?

इतिहास के आदि से दो नीति और दो पद्धतियाँ चल्ती चली आयी हैं । एक यह जो अपने में नहा, बुराद को कहा बाहर देखकर टाफार क साथ उनमें नाश के टिण चल उगती है । दूसरी वा लय अपने को भी देखती है और घुरे को नहा, उसमें विकार क कारण आयी हुद बुराद को दूर करना चाहती और विकार का निदान अपने म वह ग्राजता है । आन्तिक की पद्धति यह दूसरी ही हो सनती है । आन्तिकता क बिना बरुव मुश्किल है कि पहली नीति को मानने आर उसमें वश में हो जाने से व्यति वच सने ।

गांधी की राजनीति इस प्रकार धमनीति का हा एक प्रयोग है । वह

नीति सधय की परिमाणा में दात नहा सोचती । संघर्ष की भाया उसके लिए नितान्त असगत है । युद्ध तो अनियाय ही है, किन्तु वह धर्म युद्ध हो । जो धम भाय से नहीं किया जाता वह युद्ध संकट काटता नहीं, संकट बढ़ाता है । धम भाय हो, फिर युद्ध से मुँह मोडना नहीं है । इस प्रकार के युद्ध से शत्रु मित्र बनता है । नहीं तो शत्रु चाहे मित्र भी जाये, पर वह अपने पीछे शत्रुता के बीज छोड जाता है और इस तरह शत्रुओं की सख्या गुणानुगुणित ही हो जाती है । अत युद्ध शत्रु से नहीं, शत्रुता से होगा । सुराह स लड़ना क्या कर सकता है ? जो सुराह को मान बैठता है, वह भलाह का कसा सेवक है ! इससे निरन्तर युद्ध, अविराम युद्ध । एक क्षण भी उस युद्ध में आँख झपकने का अवकाश नहीं । किन्तु पलभर के लिए भी वह युद्ध वासनामूलक नहीं हो सकता । वह जीवन और मौत का, प्रकाश अंधकार और धम-अधम का युद्ध है । यह खोंडे की धार पर चलना है ।

इस प्रकार गाधी-नीति की दो आधारगिला प्राप्त हुए—

(१) ध्येय—सत्य ।

क्योंकि ध्येय कुछ और नहीं हो सकता । जिसमें द्विधा है, वुह है जिससे कोई अलग भी है वह ध्येय कैसा ? जो एक है, वह सम्पूर्ण भी है । वह स्वयम्भू है, आदि-अन्त है, अनादि-अनन्त है । प्रगाढ तारया सं महण करो तो वही इश्वर ।

(२) धम—अहिंसा ।

क्योंकि उस ध्येय को मानने से जो व्यवहार धम प्राप्त हो आता है उसी का अंगीकरण है अहिंसा ।

अहिंसा इसलिए कहा गया कि उस प्रकार (Positive) उत्त्व को स्वीकार की परिमाणा में कहना नहीं हो पाता, नकार की ही परिमाणा दाप रह जाती है । उसको फोर निश्चित शशा ठीक गोल नहीं पाती । इसका अमात्र अहिंसा नहीं है, वह तो उसका रूप भर है । उस अहिंसा का प्राण प्रेम है । प्रेम से और जीवन्त (पार्निन्) शक्ति क्या है ?

गांधी-नीति

निर मी आभगत और व्यक्तिगत प्रेम में अन्तर बाँधना कठिन है। और 'प्रेम' शब्द में निषेध का गुण भी कम रहती इससे प्रेम न कर कहा गया 'अहिंसा'। यह अहिंसा निष्क्रिय (Passive) प्रणय नहीं है, वह तेजस्वी और सक्रिय तत्त्व है।

अहिंसा प्रेम प्रकार मन की सन्तुष्टी वृत्ति द्वारा प्रणय की तानशाही शान्त हुए। कहिए कि चित्त अहिंसा में मीग रहना चाहिए। आर मत्त्व है हा ध्येय। कहा जा सकता है कि माय इन दानों—स्व अहिंसा—के सहारे साधारण माया में लान्द्र-कर्म के सम्बन्ध में सीधा कुछ प्रकाश नहीं प्राप्त होता। मत्त्व का मन में धार लिया अहिंसा से भी चित्त का मिगा लिया मन्दिन बन करना क्या होगा ? तो उससे लिए है

(३) कर्म—मन्याग्रह ।

'मन्याग्रह' माना कर्म की जाला है। स्व प्राप्त नहीं है। उस उल्लिख की ओर दृष्टि रहना है। इसमें गति (उन्नति प्रगति, विद्याम आदि) का आवकता समा जाता है। इसी में कर्तव्य (Doing) था जाता है।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि तब पहला ज्ञान में स्व का अन्त और अविमान्य कहा गया तब यहाँ अवकाश कहाँ रहा कि आग्रह हा ? जहाँ आग्रह है, यहाँ इसलिए, असत्य है।

यह शब्द अत्यन्त रुग्ण है। और इसका निराकरण करने के लिए गत लगायी गयी—सविनय। जहाँ निरम भाव नहीं है, यहाँ मन्याग्रह ही नहीं सन्तुष्ट। यहाँ उस 'दाय' का व्यवहार है ता ज्ञान जयवा अज्ञान में छुट है। व्यक्ति सदा ही अपुण है। जब तक वह है, तब तक सम्पत्ति के माय उल्लेख कुछ भेद भी है। निर मी जो समर्पित स्व का शक्ति के अन्त करण में प्राप्त शब्दर जाग उठा है ध्यनि की सन्तुष्टी का उजा के प्रति समर्पित हा जाना चाहिए। उस ढंगी रहनचाली निर मी कहा गया आग्रह, किन्तु उस आग्रह में मन्याग्रही अविनया नहीं हो जाता और उस आग्रह का कष्ट और दग्ग आन उपर हा लेता है।

उसकी (नैतिक से अतिरिक्त) चोट दूसरे तक नहीं पहुँचान देता । यानी सत्याग्रह है तो सधिनय होगा । कहीं गहरे तल में भी वहाँ अविनय भाव नहीं हो सकता । णानून (सरकारी और सौकिक) तक की अवशा हो सकेगी, उसका भग किया जा सगगा, लेकिन तभी जबकि सत्य की निष्ठा के कारण हा और वह अवका सगया विनम्र और मद्र हो ।

गांधी-नीति के इम प्रकार मे तीन मूल सिद्धान्त हुए । या तीना एक ही हैं । फिर भी कह सकते हैं कि सत्य व्यक्तिगत है, अहिंसा सामाजिक और सत्याग्रह राजनैतिक हा जाता है ।

इसके आग संगठित और सामुदायिक रूप से काम की व्यवस्था और आन्दोलन का प्रोग्राम पाने के बारे म कठिनाइ नहीं होगी । व्यक्ति किन्हा विगेष परिस्थितियाँ को लेकर पैदा होता है । इन परिस्थितियाँ म गमित आदि दिन से ही कुछ फलय उसे मिलता है । वह फलय रितना ही स्वल्प और सीमित प्रतीत होता हो, लेकिन वही व्यक्ति की सिद्धि और वही उसका स्वधम है । उसकी प्रति म से मानो वह सब कुछ करने का द्वार पा लेता है । स्वधमों निघर्न श्रेय परधमों भयावह ।

इम मौति बतन करने से विकृत्य जाल कटता है । फल्पना को लगाम मिल जाती है । बुद्धि बहरती नहीं और तरह-तरह के स्वग चित्र (Utopias) तात्काटिक फम से यहवापर व्यक्ति को दूर नहीं रींच ल जाते । क्षणोत्थाइ की (Romantic) गृति इस तरह मन् होती है और परिणाम म स्वाध-जन्य स्पदा और आपाधापी भी फम हाती है । धन का दरा दने आर सब से आग बढ़ हुए दीगन की आर मन उतना नहीं स्पकता और परिणामत व्यक्ति विभाम और विपमता देदा करने में नहीं लग जाता । महत्वाकांक्षा (Ambition) की धार सब फाटती नहीं । व्यक्ति फर्मगाली तो बनता है, फिर भी भागाभागी से सब जाता है । वह माना अपना स्वामी होता है । पैसा नहीं जान पड़ता जैसे पीउे किसी चायुक की मार पर बेयस भाव से अभी गति म माग रहा हो ।

मुस हा मादूम हाता है कि हमारी सामाजिक और राजनैतिक उल

सनोंकी लढ में मुख्यता से यही आपा घापी और मन्ना-बन्दी की प्रवृत्ति है।
 उपर यह आन्तरिक (Subjective) दृष्टि का बात बही
 गयी। यानी माना-गुदि की बात। मुख्य मी बही है। पर प्रश्न होगा
 कि घटना की दुनिया (Objective Conditions) के साथ
 गांधी-नीति क्या करना चाहती है ? उग्रम क्या सुधार हा, और कम हा ?
 समाज का संगठन क्या हा ? आवश्यकता और आविष्कार का, उग्रम
 आराम का, निजान-कला का, शासन का और न्याय का परलर सम्पन्न
 और विमानन क्या हा ? धर्म और पूँजी म्से निरन् ? आदि आदि।
 तो प्रश्नरता का पहलू ता बह कहना आवश्यक है कि सार प्रश्न आज
 अभी हल हो जायगे ता काल मी आज हा समाप्त हा जायगा। इससे
 प्रश्नों को लेकर एक घटनाप स अपने का पर रहन अर हलुद हाने
 की आवश्यकता नहीं है ? फिर उनका हल कागज पर अर बुदि म ही
 हो जानवाला नहीं है। सब सत्रालों का हल मतानेवाली मानी कितान
 मुक्त उन मवालें स छुटकारा नहीं देगा। इसलिए निचार घाराभा
 (Ideologies) से काम नहीं चलगा। जा प्रश्न है उनमें ता अपनी
 सनूची कम की लगन से लग जाना है। एसे हा व शनै-गुनै निषट्टे
 जायेंगे। नहा ता किनार पर बैठकर उनका समाधान मादम कर लेन स
 कम की प्ररणा चुट जायगी और अन्त म शत हागा कि वह मन द्वारा
 मान लिया गया समाधान समाधान न था, परेय (Illusion) था, और
 तय यास पन्ते ही बह ता उट गया और हमें फारा-का-फारा बहा-का-बही
 ट गवा। अयात् उन प्रश्नों पर बहसा-बहसी अर लिना-पनी की
 ने-आप में जरूरत नहीं है। उनमें चुट जाना पहली बात है।
 गांधी-नीति है कि समस्या का बौद्धिक कहकर कम बुद्धिमीय से
 रालने की आशा न करा। एसे बह उलझगी ही। समस्या जीवन की
 ससे पूरे जीवन-बल के साथ उससे पूसा। इस काय-पद्धति पर पन्त
 ला सिद्धान्त-युक्त जा हाप लगता है, वह है न्यायी।
 बन्दी द्वारा यतिगत कम में सामाजिक उपनागिता पहली शत

के तार पर माँगी जाती है। उस गत का अर्थ है कि हमारे काम से लोगों को लाभ पहुँचे। आगमन प्रगमन बड़े, सदानुभूति विकसे और पड़ोसीपन पनपे। (Neighbourliness) पास पड़ोसपन स्वदेशी की जान है। मेरा देश वह जहाँ मैं रहता हूँ। इस भाँति सबसे पहले मेरा घर और मेरा गाँव मेरा देश है। उत्तरोत्तर वह बत्पर जिला, प्रान्त, राष्ट्र और विश्व तक पहुँच सकता है। भूगोल के नक्के का देश अन्तिम देश नहीं है। मेरे घर को इन्कार कर नगर कुछ नहीं रहता, उसी तरह नगर प्रान्त को इन्कार कर राष्ट्र कुछ नहीं रहता। उधर दूसरी ओर नागरिक हित से विरोधी बनकर पारिवारिक स्वाथ तो निषिद्ध बनता ही है।

स्वदेशी में यही भाव है। उसमें भाव है कि मैं पड़ासी से दूँ नहीं और अधिकाधिक हम में हितैक्य बड़े। दूसरा उसमें भाव है, सर्वोत्पय। पय जगह जाकर शरीर भी आत्मा के लिए विदेशी हो सकता है।

समाजवादी अथवा अन्य वस्तुवादी समाजनीतियाँ इसी जगह भूल कर जाती हैं। वे समाज को समझाने में उसी की इकाई को भूल जाती हैं। उनमें योजनाओं की विशदता रहती है, पर मूल में Neighbourliness के तत्त्व पर जोर नहीं रहता। सामाजिकता वही सच्ची है जो पड़ोसी प्रेम से आरम्भ होती है। इस तत्त्व को ध्यान में रकर तो बड़े पैमाने पर चलनेवाला धात्रिक उग्रोघाद गिर जायगा। वहाँ बड़े कल कारखाने हुए वहाँ जन-पदा भागों में बैठने लगता है। वे दानों एक दूसरे को गरज की भावना से पकड़ते और अविश्वास से दरते हैं। वे परस्पर सहाय बने रहने के लिए एक-दूसरे की आँख बचाते और मिथ्याचार करने हैं। पूँजीपति मजूरों की हॉपडियों को यथाशक्ति अपने स दूर रखता है और अपनी कोठी पर चौकीदारों का दल बैठाता है कि दूद दुष्प्राप्य और मुरभित बना रहे। उधर मजदूरों की आँगों में मालिक आर मालिक का बैंगला फाँटा बने रहते हैं।

इस प्रकार के विवृत और मलिन मानवीय सम्बन्ध तभी असम्भव बन सकेंगे जब समाज की पुनरचना पड़ोसपन (Neighbourliness)

गांधी-नीति का स्वदेशी सिद्धान्त अतः हिन्दुस्तानी मिलों का नहीं, घरेलू चरमों का चाहता है।

सक्षेप में गांधी-नीति इस स्थापना से आरम्भ होती है कि जीवाम् स्वाम का ही खंड है। इससे व्यक्ति का ध्येय सत्य से एकाकार होना है। उसी इस यात्रा में ही समाज, राष्ट्र और विश्व के साथ सामंजस्य की बात आती है। यह जितना उत्तरोत्तर इन यात्रा सत्ताओं से एकात्म होता चला जाये उतना अपनी और सत्ता की बंधन-मुक्ति में योगदान करता है। इस यात्रा के यात्री के जीवन-कर्म का राजनीति एक पहलू है। आशय यह है, पर यह पहलू भर है। वह राजनीति कम में युद्धरूप हो, पर अपनी प्रकृति में उसे धममयी और शांतिप्रथी होना चाहिए।

उस यात्रा का माग तो अपरिचित ही है। फिर भी भ्रष्टा यात्री का सहारा है। भीतरी भ्रष्टा का धीमा धीमा आलाक उसे मार्ग से डिगने न देगा। उस राही को तो एक कदम उस काफी है। वह चले, फिर अगला सूझा ही रखा है। मुख्य बात चलना है। यह चलन से ही खुलेगा। इस प्रकार इस यात्रा में प्रत्येक कर्म ही एक साध्य है। यहाँ साधन स्वयं साध्य का अंग है। साधन साध्य से भिन्न कहीं हो सकता है। इससे जिसे रुझान चलना है, रुझान राहों का उसके लिए अवसर नहीं है। वह तो चला चले, यह चला चले।

व्यवहार का काइ भी कम धम से बाहर नहीं है। सब में धम की वास चाहिए। उही दृष्टिकोण से जीवन की समस्याओं को प्रहण करने से समुचित समाधान का लाभ होगा, अन्यथा नहीं। सब के मन में एक ज्योति है। उसे जगाये रखना है। फिर उस जग में जीवन का लगाये चले चलना है। चले चलना, चल चलना। जो हागा, ठीक होगा। यह का अन्त न नाप। राही ! तुसे ता चलना है।



गांधी और विश्व-व्यवस्था

गांधी ने म ह, और एक वष के ऊपर से उनकी कोई सीधी आ-
 हम नहा मिली। कल एक बसु त्तमान महापुरुषा को गिना रहे
 गांधी को उनमें प्रथम रखने में उह कठिनाई थी। जगद्-व्यवस्था
 उनका काद प्रकृत दान नहा दीखता। गेय नाम जो उनकी गणना
 थाये, आज क युद्ध से सीधा सम्बन्ध रखनेवाले पुरुषों के थे।

उन माइ की कठिनाई आज क आल्बेचक की कठिनाई है। शासन
 के और युद्ध के मैदान से गांधी अलग हैं आर बन्द ह। विश्व का माग्य
 तय हो रहा है, देशों की सीमाएँ बन मिट रही हैं आर मावी व्यवस्था
 की टागनेल टाली जा रही है। यह सब गांधी का बिना लेते म लिये हा
 रहा है। इसमें क्या न कहा जान कि कम के घरातल पर गांधी अनिवाय
 रही है ?

प्रकृत यह सच है। युद्ध मं दो ही पज हैं। तीसरा कोइ पय नहीं है
 आर यह युद्ध समूची मानवता का है। विश्व का माग्य पलड़ में है आर
 सम्यता क अगल कदम का निणय होना है। ऐसे समय जो किनारे पर है
 और इतिहास क मय्य म नहीं है, उसे विश्व विचार की दृष्टि से शून्यवत्
 ही समझना चाहिए। शत्रु भी विचारणीय है, मित्र भी विचारणीय ह पर
 जो यह ह न बर, ऐसा व्यक्ति हिसाब में आने-याम्य नहीं ठहरता।

किन्तु युद्ध में अस्त्र में दा पथ नहीं ह। युद्ध त्रिशुजा मज है। तीसरी
 मुजा मुयर नहीं ह किन्तु वही गेय दो की आधारमूट ह। शायद वह
 मुजा नहीं है, भूमि है। उस भूमि पर रहकर ही दा छटते ह।
 कहा जाता है कि क्टाई म जमनी, जापान और इटली एक ओर

हैं ब्रिटेन, अमरीका, रूस, चीन आदि दूसरी आर। भाव होता है कि वे देश लड़ रहे हैं। पर मुद्र-शोषणा उन देशों की सरकारों ने की है। देश के नाम पर वहाँ की सरकार को ही बोलने का हक है, यह ठीक है। लेकिन यह भी विदित हो कि एक देश की सरकार और उस देश की जनता, यानी शासक और शासित, राजा और प्रजा, पूरी तरह एक नहीं होते हैं। अनुशासन और कानून में वे एक हो जाते हैं और यथाथ म दोनो अभिन्न नही होते। इसी से सरकार बगल करती है, विद्रोही शासक हो जाते हैं और शासन दण्डित हुआ करते हैं।

यह पक्ष अधिकार अम्यक्त रहता है। यह असंगठित और गर्भित रहता है। उसने ऊपर से दलगत ही सुलभ हुआ करते हैं। जब यह मूल पर किसी गहरी व्यथा से उभार पाता है तब विस्फोट पूरता है और साम्राज्य पवन हो जाते हैं।

ऊपर शासकों की लडाइ है। उनको बल निस्त्यन्देह नीच जन-सामान्य में से पहुँचता है। प्रजा ही लड़ती और लड़ बहाती है। परिणाम में एक शासक गिरता, दूसरा उठता है। रक्त बहाकर शासकों में परिवर्तन लाया जाता है। परिवर्तन से शान्ति आती है फिर उस शान्ति के ऊपर हाकर शासन चलता है, शासक में फिर लडा हाती आर फिर मुद्र हाता है ! आर फिर प्रजा कष्ट सहने को आगे आती है !!

सरकारें सब जनता के बल से पुष्ट हैं। क्या आज का लोकतन्त्र या अधिनायकतन्त्र, या क्या फिर पुराना छद्मतन्त्र—सरका अधिगान जनता है। जन वहाँ से आत हैं, धन वहाँ से आता है और जन बहा से आता है। वह मुद्र उन्हीं के बल पर और उहा की छाती पर लगे जाते हैं।

इस भाति प्रत्यक्ष मुद्र म दीरने में दो मुजाएँ आती हैं। पर उन दानों का सागरी का सहारा है। वह तीसरी मुजा ना स्थायी है धरती म बिछकर रहती है। श्रम उसका धन है, पर वह मूर है आर सहना उसका काम है।

गांधी ! इस मुद्र में वह तीसरी मुजा है। उगका जेल म दाना प्रमाण है कि वह मुजा सजग है।

इस समय विश्व की राजनीति राष्ट्रीय नहीं रह गयी है। गांधी के भी राष्ट्रीय समझना भूल हागी। फ्रांस राय हो, गांधी माननीय है। अन्तराष्ट्रीय गलत फिर दूर राष्ट्रवादी नीतियाँ के चक्र का गोलक है। गांधी के साथ वह भी नहीं है। अन्तराष्ट्रीय चाल के पार उमका गुद माननीय है।

देश के लोग वह मानते हैं जो उन देशों का भरकारा ने उन मानना यथाया है। वे अपने हित का दूसरे के विरोध में देखते हैं क्योंकि उन्हें ऐसा देखने की शिक्षा दी गयी है। उन अपनी रक्षा की चिन्ता है, दूसरे के आक्रमण का मय है। अपने स्वार्थ का लोभ है, मित्र का आकांक्षा है—क्याकि यह सब उनमें भरा गया है।

पर क्या उन्हें देश में लग नहीं है जो जानते हैं कि प्रम स धन उत्सन्न होता है और लड़ाई में समय और सब कुछ नष्ट होता है। क्या अन्दर ही अन्दर लड़नेवाले तक नहीं जानते कि दुनिया हम सब की है और परमात्मा एक है और मिल-बाँटकर हम रहना चाहिए।

लेकिन ये चर्चा किया गया है और लगा का अपनी ही भीतर की बात सुनने का अवसर नहीं है। प्रकृत मानव के प्रतिनिधि हाकर उसकी अन्तस्थ आशा आकांक्षाओं को वाणी देनेवाले लग है भी तो प्रचार के फोलाएल में वे अनमुन रहते हैं या फिर उन्हें उल्टा चुपकर दिया जाता है।

गांधी मानवता की वही अन्तस्थ ध्वनि है। उसे पहचान लिया गया है। वह जागरूक है और मन्द नहीं होगा। बीच के राजकरण के चक्रों में भी वह नहीं घिरेगा। वह स्वयं ही और ऊँच, जगा ही होगा। और उसे जेल में रोका जायगा तो यह कर ही स्वयं उसकी गद बोलेंगा।

आगामी विश्व-व्यवस्था की इस समय चर्चा है। लेकिन ब्रिटेन परीक्षा या किसी और देश का शासक, जो अपने राष्ट्रीय स्वार्थ की भाँति में साँचता और चलता रहा है, क्या विश्व शांति और विश्व-व्यवस्था में सच में किसी दूसरी बुद्धि या शक्ति से निणय ल सकेगा? आज

अंग्रेज है, अमरीकन है, जर्मन है, जापानी है—वह कहाँ है जो आदमी है ? सब अम्प्यासी हैं कि अपने को इस-उस दश का मानें और बाद कही अपने को आदमी मान । वह व्यवस्था क्या विश्व-चधुत्व लानेवाली होगी, जहाँ हर व्यवस्थापर अपने देश के साथ का प्रतिनिधि होगा ? क्या इस प्रकार की मात्रणा बड़ी शक्तियों को और मजबूत तथा छोटी शक्तियों को पराधीन रखने का ही साधन न हो जायगी ? क्या ऐसी परिपद् म स शान्ति या व्यवस्था आ सकेगी ?

ऐसे समय गांधी ही है जो प्रकृत मानव का पक्ष लेकर खड़ा है । क्या गांधी ने नहीं कह दिया कि हिंसा से मिलनेवाला स्वराज उसे नहीं चाहिए ? ऐसा राज्य सबका स्व-राज नहीं होगा । आत्मशासन नहीं, विस्तीर्ण किसी रूप में वह पर शासन ही होगा । क्या गांधी ने हमेशा स्पष्ट नहीं किया कि उसका काम दश के लिए नहीं, मनुष्य के लिए है और वह राजनैतिक नहीं, धार्मिक है ?

युद्ध जरूरी वह शान्त होगा, देश आपस में निरन्तर चुके होंगे, तब विजयी पक्ष को अपना हिस्सा जनता के हाथों सौंपना होगा । या तो युद्ध के परिणामस्वरूप साम्राज्य महा-साम्राज्य होंगे और औसत मनुष्य दुगुना जकड़बन्द होगा या फिर राष्ट्रीय स्वायत्त की भाषा में सोचनेवालों को विश्व परिभाषा में रहनेवाला के लिए जगह खाली कर देनी होगी । हर हालत में, इस त्रिभुजात्मक युद्ध की विजयी भुजा को, अब नहीं तो फिर, गेप तीसरी भुजा से निबटना होगा ।

यही तीसरी भुजा निहत्थी है, क्योंकि उसके पास काम करनेवाले दो हाथ हैं । दुसरा उसका बल है । वह धरती से लगी है, क्योंकि इसी में सब सब उठत आर अत में इसी में आ मिलते हैं । फिर ऊँचा फरके जो आज शासक बना है आर भूमक के साथ धरती पर पैर रखता है, आगिर वह भी धरती का है और उसी में आ मिलता । इसलिए इन धरतीवालों का बल अहिंसा है । क्योंकि काम उनसे परे नहीं, सब अपने हैं । इसलिए उनमें वैर नही है, पत्र नहीं है । क्या इन्हें आर क्या जमनी—य अलग

अलग नाम तो काम चलाने मर के लिए है। धरती मों के लिए सत्र एक हैं। उस इटलैंड-जमनी में अन्तर नहीं। दोनों लडते हैं, इसलिए दोना भूल म ह, क्योंकि दोनों धरती को उजाड़ते हैं। इस तीसरी मुजा का एक ही धन, एक ही बल और एक ही नियम है—वह है भ्रम। ऊपरवालों के विलास के और वैर के सब खेल धरती से लग होगा के सतत भ्रम पर चलते हैं। इस मुजा का घम सहते रहना और मेहनत धरते जाना है। गांधी और कुछ नशा है, मानवता के इसी अन्त स्वरूप का प्रतिनिधि है। वह मनुष्य-जाति का अन्तमन है। उसे युचलकर टटा जा सकता है, उसको टाला जा सकता है, अनसुना लिया जा सकता है। पर अन्त म उससे मुल्सना ही होगा। उससे अपना हिसाब साफ क्रिये बिना गति नहीं। इसमें कितने भी दिन लग पर होनहार यही है।

सात कुछ यही मालूम होती है। पर यह भूल है कि गांधी मरकर मर जायेगा। "जाय" अचारीरी होकर वह आर प्रचलता से जीयेगा। स्वय एम होकर जनता के अन्तभावों में व्याप्त हाकर वह एक एसी शक्ति बन उठेगा कि यदि उससे पहले "जासना ने उससे नियगारा न कर लिया होगा तो फिर वह शक्ति, अप्रतिरोध्य आर एनिनाय, अटक न सभगी और किसी की मुनेगी मी नहीं। गांधी पुष्प के हाथा जा सवत है, जनता की प्रकृति से मिलकर वह उद्वत और दुर्दप हो उठगा। तब जो न हो जाय गाढा है। जन-मन तब एक अधे वेग स उभरेगा। उस बात म क्या-क्या तहस-नहस हो जायगा, कहा नहीं जा सकता।

पर वह सम्भावना "जुम नहीं है। बियेक म से ही मुक्ति आवेगी। मंग तो नवीन बाघन की सृष्टि कर उठेगा। इसी से गांधी के जीवन के व के दो पन्प हैं। एक ओर उन्होंने लोक-चैतन्य को जगाया है, तो आर उसी क उपान पर छंति भी ढाले हैं। कहा मी गर्मी को भद ही दिया है। जब तक राय की आग्नि बियेक की शक्ति नहीं बन गांधी ने उसे दवाया ही है।

जनीतिक वर्ग के लिए यह अनहोनी बात है। जिस शक्ति का

चेताकर राजनीति अपना काम चलाती है, उसी को अम्बीकार करके गांधी ने अपने नेतृत्व का निमाण किया है। क्रोध, स्पृहा, द्वेष आदि मत्तकावर सत्र वहीं राजनीतिक दल अपने को संगठित और सक्त बनाते हैं। यहाँ जकेल गांधी ने ऐसे सत्र दलों को रिजित करके भी जीवित किया है। शासकों के लिए गांधी के प्रभाव का यह पहलू बहुत कीमती है, यद्यपि राजनीतिक उस पर दंग हैं।

इस प्रकार जनता के साथ अभिन्न और उसका परम प्रिय होकर भी गांधी उसका शासक है। वह शासकों की भाषा में दूसरे शासकों के साथ निष्ठा करता है। यह सुविधा गांधी के साथ ही सम्भव है। जयन्ता लोकनेता (Democratic Leaders) लोक शासित भी हात ह, और शासित चचा म व रिजित सहायक नहीं हो सकते। गांधी पृणतया आत्म शासित है, इसलिए वह सर्वोच्च शासक-काटि का यक्ति है। शासकों और नायकों की मंजरा में गांधी मिदान्तगदी नहीं जैचंगा। आधुनिक राजनेताआ (Diplomats) से गांधी इसी जगह अलग है। वह अत्यन्त व्यावहारिक है और उँगलियों से धाम करना जानता है। वह भूमिक है और काम-चाजो है। वह मुझे की बात पकड़ता है और बौद्धिक घुमावा में नहा पन्ता। वह आदम को चचा से काम की बात को अलग कर सकता है। अमरीकी विज्जन की तरह आदमशादी योजना में उसका बहकना या उसको बहकाना सम्भव नहा है। वह स्वप्नदर्शी होकर भविष्य के लिए यतमान को नहीं टाल सकता, न अत्यदर्शी राजनीतिक की तरह यतमान के लिए भविष्य को भीमत में दे सकता है।

उसकी नीति सीधी है। अहिंसा के लिए उसे चचा नहीं, चचा चाहिए। मानव के विषम सम्बंध भावना मात्र से सम और गुद न होंग, उसके लिए कम चाहिए। कम यानी श्रम। उत्पादक श्रम का पैट्र माग कर हमें अपने लिए नवीन अथ-व्यवस्था का निमाण करना होगा। इतने धन केन्द्रित न हागा। एरु जार दरिद्रता का प्रमाद थार दूसरी थार विनास का आस उसस समाप्त होगा। संशुहीन धन से औरों में देव आर

गांधी और विश्व-व्यवस्था

संभ्रमाधिपति में दम बढता है। इस तरह लाभ धारण का चक्र च
पढता है। तब अन्न शब्द तैयार हात है, जिसमें सन्नति का रंग और
यन्त्रा का जा सकें। इस सन्नति का मन्त्र म त्तर गामन-सन्ध का
लभ हाता है। अपने अर प्रजा न नीच टाट-भाट सन्नतिशास्त्रि आर
धाधिकारिया की श्रेणी पैदा करके गामन अपन का जाना-पाना है।
विमानन हुक्मत का मन्त्र है। ऐसी अयन्य जान पर त्रम का कामत
एगभग समात हा जाती है आर चाणकारिता अर चतुराण ना कामत
न जाती है। श्रमिक शक्ति हाता है आर हुक्मत क न्वाध म साधन-मत्त
हाकर भ्रमहन अपन लिए प्रभुता प्राप्त करता है। ऊपर क लाग तब समय
घाटने आर गाना पचान क लिए तरह-तरह के न्याय रचत है अर
धमिक का पर्सना बहाकर भी समय आर खाना नश जुगता। ये धर्म्य
जीवन के प्रकृत मूल्या का भुलान स पैदा हाता है आर गांधी का प्रयत्न
उन्हीं मूल्या की पुन प्रतिष्ठा है।

गांधी के जीवन म काद जाटिलता नहा है। वह सन्न और सच्छ
है। हमारे की बुद्धि उस पर आने लिए गारगधधा रच गजता है, गकिन
उमम उल्लसन नहीं है। उसका म्स्भाव है भ्रम आर प्रम। भ्रम क दिना
प्रम विलास हा जाता है, यज्ञ नहीं रहता। वह एस जरताय भा हाता
है। जा प्रम भाग है वह भ्रमहीन है आर न्वाधमय है। उहा याग हाकर
कर्मरूप आर पारमार्थिक हाता है। भ्रम से चतना स्वार्थिन हाती है अर
यक्ति निर्भीक बनता है। तब वह अपन का इन्कार करने की लाचारा म
हा पढता आर अपन भीतर क सय क स्वीकार म याहरी क्रिया यल क भी
तिकार का उन्त रहता है। एसा प्रमी, यानी अहिंसक सत्याग्रही हकर
शी हाता है।

यह प्रकृत मानव-मान का पण गालकों क विचार में क्ताचिर् हा
उपस्थित हाता हो। ये दण्डरा द्राय नशों धीर अक-गणनाभा से
जाति की अवस्था का अनुमान पर अपनी व्यवस्था क्रिया करते है।
उनकी पार्ल्ये में रहती है। उसके मुग-दु ख क साय उनक मन

के आन्तरिक सूत्रों का विशय सम्बन्ध नष्ट होता । प्रकृत नहीं बल्कि मुत्तर पत्र की आर ही उनका ध्यान जाता है और तब या तो लोभ देकर या दमन द्वारा उसे चुप किया जाता है । इन ग्रासकों की व्यवस्था में, अपना युद्ध में, व्यक्ति एक अक होता है और गणित के सूत्र से उन्नति नापी जाती है ।

दूसरी ओर भादुक लोग ह जो समस्त के व्यक्ति में विश्व दंगते ह और वह अपने राग का केन्द्र बना बैठते हैं । ऐसा राग द्वेष पर पलता है । अधिकांश जन इसी गणना में आते ह । ये ही फिर शासित होते ह ।

इन दोनों वर्गों में ऐश्वर्य, शासक में शासक और साधारण में साधारण है, गांधी । उनकी जनमन के साथ एषता स्थापित हुए है । फिर भी उनकी दृष्टि जनता की अनेकता के पार चर्चा एसी आंतरिकता पर है कि दाय-याप असुर्य मरत हुआ, बिलम्बते हुआ के बीच भी उनकी गति, या उनकी सुस्वगहन, मन्द नहीं होती । वह निर्ममों में निमम ह । शासक के समान बुद्धि की सत्यता और मत्त के समान हृदय की आत्मीयता—गांधी एक साथ स्वयं में दोनों का सम्बन्ध हैं ।

गांधी जाने अकेले व्यक्तित्व में दोनों राग के संयोजन ह । आदर्श और यथार्थ, स्वप्न और भ्रम, धर्म और राजकरण, सम्बन्ध और विलेपण । इससे इस युद्ध के अनन्तर, जब कि विश्वशांति परिपक्व हो, या जगत्-व्यवस्था के सम्बन्ध में विचार हो, गांधी की उपस्थिति वहाँ अनिवार्य है । गांधी न हुए तो उनकी नीति तो होगी ही । उस दृष्टि और उस नीति से अलग किसी दूसरी तरह मानव हित-साधन और स्थिर शांति का विधान हो सकेगा, यह सम्भव नहीं दायता ।



हर कुछ गांधीजी के उदाहरण में खुलता हुआ देखा जा सकता है। समस्या—व्यक्ति की, समाज की या राज की—कॉन ऐसी बचती है जिसके हल की तरफ सरेत्र वहाँ न हो। या समस्याएँ स्वयं म समाप्त कभी होने वाली नहीं ह। ऐसा हो तब तो जीवन का अन्त भी हुआ मानिये। इसीसे देखते हैं कि गांधीजी के उठने के बाद और आरुपास समझाएँ जैसे पिकट से और विकटतर ही हुए ह। यानी समस्याओं का निपटाना उतका काम न था। अपनी समस्याएँ हम स्वयं शैलनी और चुनानी हागी। यह आशा मूठ है कि हमारा उत्पन्नना को लोकोत्तर कोद अवतार आकर सुलझायगा। नहीं, उनके लिए स्वयं हमको जूझना होगा। अतार यह नहीं है जो डूबते को तारता है। वह तो वह है जो स्वयं तिरकर डूबते को तिरने की राह मुझा जाता है।

इस तरह गांधीजी के जास ही लगता है जैसे अभी और अंधेरी ताकता ने हमें धेर लिया है। अभाव तो कहा रता नहीं, चारों दिशाएँ उसे भरने को दूट पडता ह। गांधीजी के तिरामाव पर भी सहसा लगता है जैसे प्रकाश गया ता जाने कहाँ-वहाँ से अघकार तगह भरने को आ गया है।

यह स्वाभाविक ही है। गांधीजी का वग यदि पाँव उगाडकर हमें अपने साथ राह ले चला था तो अनिवाय है कि गांधीजी के जाने पर हम अपने पैर अपने नीच पाय और देखें कि गांधीजी के नहा अर ता हम अपने ही अनुयाय चलना चाहत ह। इसमें असंगत कुछ नहीं है। गांधीजी के रहते जा उनके त्याग पर चले, वे गांधीजी के बाद अपने भोग पर क्यों न आ जाते ! इस तरह, जान पता है, गांधीजी अपने साथ अपनी राह भी लेते गये ह। अथ हिन्दुस्तान की काद्रस और उरुड़ी स्वराजी सरकार उस तरफ से आजात और बेलाग है। और यह अच्छा ही है।

लेकिन गांधीजी वग के ही न थ। केवल वेग के लोग ता आते ह और चले जात ह। मानो ये किसी अभी वासना के प्रतीक हात ह। इसमें उनका मूय सामयिक रहता है। इतिहास उनके ऊपर स निकल जाता है। उसे उनमें एक ही सतह होती है, विम्वार, गहराश य उँचार नहीं,

विभेद और सम्प्रदाय-आम्नाय बन चलेंगे। यानी वह हागा जा धर्मों के इतिहास में होता जाया है।

गांधीवाद के भविष्य को लेकर जा चित्र मेरी कल्पना म उठ है, मन ऊपर दे दिये ह। मुझे उनमें असंगति तनिक भी नहीं लीखती, वन्कि एक प्रकार की अव्ययम्भाविता ही लीखती है।



नीति या राजनीति ?

गांधीजी २१ तम तम राष्ट्र की राजनीति उन्हा क चलाय चला ।
 लेकिन जय भी सम्भव हुआ, उन्होंने साफ कर दिया कि मैं राजनीति
 नहीं घामिऊ व्यक्ति हूँ । ' अगस्त को जय भारत का न्वरण मिला
 और खुशियाँ मनायीं गयीं, गांधीजी दूर नाजागवाली में देख घूम रहे थे ।
 उसी से यह काँग्रेस के सत्त्व भी न थे । जार चीनमग कभी किमा
 रसों से यह काँग्रेस के सत्त्व भी नग हुए ।

इस चाज का क्या मतलब है ? क्या राजनीति आवश्यक चात नहा
 है ? क्या सिधी तरह भी उस गाण माना जा सकता है ? क्या वह जयन
 का मौलिक पहलू नहीं है ? गांधीजी का जयन गचमुच कहा जा सकता
 है कि बात ऐसी ही है । राजनीति का अपना अस्तित्व नहीं ? नग है
 का आशय कि नहीं होना चाहिए ।

तय ध्यान उन टोगों की आर जाता है जिन्हान राजनीति का इतना
 माया का प्रपच माना कि उनको धार से काँ राता हो जमा भी सिधान
 ग, इस्से उनका काइ सयकार नहा रह गया । कोड नृप हाऊ हमें का
 हानी ! एसे उतासान आग संत लग अघ्याम गायना मरुए और राजाआ
 को उोंने गन करन माग करने और लउने क्षगाने टिया । कानून न
 पुन किया ता उनका मन्वान् न कानून पर छाँ टिया गया ज्योंकि ता
 होनहार है, उसक किया ता कुठ हा नहा सकता । इस तरह मय क, धन
 क आर अघ्याम के कुठ लग सजार के साच विचार का जार काम धाम
 को माया का प्रपंच मानकर शुद्ध आत्म-ग्राधना में एसे लगे कि उह
 गोनी तक छाड़नी पनी आर मानन मयन उनक किया अगम हा गया ।

गान्धीजी यदि धामिन् थे, तो ऐसे धामिन् तो न थे। उनका दूरतम लक्ष्य रहना पड़ा। यों तो जेल गठे जेल न थी। पर सब तो यह है कि खुद म भी वह कैदी ही बनकर रहे। मानी ग्याया, पिटा, पहना, ओढ़ा वा उसी भाँति कि जैसे वह किसी बड़ सख्त अनुशासन के नीचे रहना पड़ रहा हो। अनुशासन वह आमानुशासन ही था। इसलिए कम नहीं, अधिक कठोर था। धार धमाकान में उनकी विन्मगी बीती। ऐन्कय और वैभव, मीढ़ और कालाहल सदा उह घरे रहे। महा-गृहस्य ही उह कहना चाहिए क्योंकि कुठ के नहीं, सभने, समृच राष्ट्र के यह पिता बने और अपने पितृत्व की छाँह में अधिकाधिक का स्व चले गये। मानी उनका बम राजनीति में क्या हुआ, उसमें विरुद्ध और वरुस्य न था। धात्रि कुठ इतना समझशील था कि राजनीति उसमें आकर पृति पाती थी। मानो जैसे राजकरण उस धमिन् में पहुँचकर अपने लिए बने पुग ग्या था। उसनी धार वहाँ कू जाता थी और उसकी कद्रुता मिट जाती थी। माना प्रान वहाँ समाधान पाता आर मध्य समन्वय की राह पर आ जाता था।

धान सन् ६० जगन्ध के भारत की आत्मा के सामने, उसनी जनता में सामने और नागरिकों के सामने, खालवा हुआ एक हा मराल है क्या राजनीति का अनैतिक दान का अधिनार ?

राजनीति क्या सी पी मुदी राज बनाने, करन, या ग्यन की नीति धारण में सक्ती है? इस तरह क्या उसना समथन राज में देगा ना पकता है? क्या वह आत्म मुष्ट हाकर उठ सक्ती है? या कि उस राज नीति का राज-समन के जल्पा किसी आर के प्रति भी गायित्व है? क्या उस किसी अपने से उँची और स्यायी खुद में आदश स्वत रहना नहीं है?

आज कुठ एमी दान्त बन गयी है कि उस राज्य ही ग्य और ग्य म म्नात हा। बाद इन्तर १ हा, राज्य ही इन्तर हा।

कुठ सदिया से पैग एर नाम नल पग है आर यह पल छा गया कि जैन मनुष्य के धारण का आदि अर अन्त उग ममान में ही दरगा

जाति जिसका कि मूलरूप स्टेट या सरकार है। यह पान पाश्चिम म आया
गिक युग, वैज्ञानिक युग के साथ व्यव म आता आर क्रमशः परत
गया। उस ज्ञान क यान उत्पादन क कारणने अप भी बहा चल ग ह।

भारत आयात प्रधान देश है। नियात क लिष्ट मर पान उधा माल
दा है। जिस माल का सबसे ज्यादा सीमत फिर धन्यभा से यह का
गाहर से गृय भोगकर, अपनी आत्मा का भी फिर अपन का साना
रहा है, वर यही ज्ञान है। यह आर्थिक है गामातिक है गजनातिर
। यूँ कहिए कि यह गुणेष म वर मर कुठ ह ता हम समझत ह कि
होना चाहिए। आर उस पान ने हिन्दुस्तान क जात्मी का गानकर
स सहरों आत्मी को, जिस पास उम पान की कमत उन क लिए
थादा सुहुत पैसा आर लात्त रहा ह अगर रग म नहीं ता पारी मर
लिहाज म गलिस्तानी बना लिया ह। यह मानता है कि हम मर
ना है और वरस्ता का छाडकर उन्नत नागरिक बन रहा है।

लोग आर्थिक समस्याओं का धार मचात ह। यहन ह महगात *
आर द्य त्वालिया होता जा रहा ह। आयात कतना अधिक ह कि
नियात क लिए अपना पैर काट करत राफा माल तुगाना मुमकिन नहा
हाता। उधार का लम्बत है कि यहा-वनी मणीन विदेश म जाकर
मों और उत्पादन का सफ।

गत टाक है, एकिन इस दय म इतन करत ता जादमा ह जग
प्रदागति और महापूँजी का भी हम कुठ लता-जागता उन को तसार *
या उनम हरणक मय म रनिया म रनिया मणीन नहा है * उस महा
ति का हिमाय गायन है तर दूमग तिसाय किसी तरह तक नहीं रा
गा।
जो मनुष्य का नमालता है उस रिश क बिना यात्री माग रिश
र है। मनुष्य का समालनगली रिश है, धमनीति।
ज्ञान जो पश्चिम म आ रहा है, जा हमना आर हमार कानकाय का
चला रहा है जयनीतिक है। हमारे गायों में उमे हा क गजनीतिक।

उद् आदमी आर आदमी क बीच म समस्या आर सघप उपजाने आर
 पाने के सिवा कर भी क्या सकता ह ? अधनीति अधिन स अधिक दा
 वानिया के बीच अधिकाध का संतुलन और आपसी समता चाह सकती
 है । यह समता आर संतुलन स्पष्ट ही दो को मिला नहीं सकते, उर
 अलग अलग ही रर सकते ह । इस तरह जितना भी उस पान के आधार
 पर उदार-मुधार का प्रयत्न किया जाता है, ररार जाता है । तनखाइ
 घटती जाती ह और उगी अनुपात म असतोष बढ़ता जाता है । यह वह
 विषमचक्र है जा कभी कठ नहीं सकता । अरवार आर तुणा कमी अपन
 का मर नहीं पाये । इससे उनर आधार पर चलनचालं यन समस्या का
 जटिल म और जटिल ही बना सकते हैं । सब पृष्ठिए ता आन की आव
 यकता गहय और मौलिक इलाज चाहती है । दुनिया का भारत स आशा
 ह । आशा का कारण गायद नहीं है, फिर भी आशा है । कारण कि
 भारत नन दिना अपन म स गांधी जैसे महाभावा का प्रकटा चुका है ।
 उर आशा कठ गयी, ता उसके लिए फिर कहीं रीर नहीं रह जायेगी ।
 दुनिया का फिर मारी अंधर और युद्ध में गिरना हागा ।

आशा अगर धानी भी भारत म पूरी हानी है, ता वह तभी हा सकती
 ह कि जय वह अपने भगवान का न भूले और पदिचम की नकल म राय
 का अपना दयता न बनाय । अर भी मय र्वाया नहीं है । असल रात
 अर भी र्कात म बना है आर उहाँ स्थास्थ ह । यहा राजधम का पता
 नहा है और राजवादी विचान भी कम ही पहुँचा है । इगलिए ग्रामीण
 यना म पनीना डालत ह और अर निकालत ह । आर हिन्दू राम-कृष्ण
 का आर मुसलमान हजरत माहम्मद का याद करत ह कि जा अवश्य राजा
 ह, पर छाटे-चे-छाटे के गयर बन कर रहे थे । राज उनर लिए आपत
 था और सेवा तथा प्रम उाका म्बभाव था ।

वह दृष्टि जा पदार्थ का और उगके हिसाब का पीठ रखती ह
 आदमी का और उसके हित का सामन रखती है, इगलिए जा नैतिक दृष्टि
 ह—यही हमारा और हमार कामराज को चलायगी, मरगंठ के र्कन

गांधी-धर्म और कर्मवाद

गांधीजी के जन्म दिन पर हम विस्मय कर सकते हैं कि इस याद में हालांकि हम, कि जब गांधीजी शरीर तो हमारे बीच नहीं रहे हम कहीं से कहीं आ गये हैं। ऐसा तो हमको नहीं मालूम होता होगा कि हमने गांधीजी का छोड़ दिया है। उनका हम मानते हैं, उनकी नीति का भागो हैं। भरसक उस पर चलने की कोशिश भी करत हैं। लेकिन दाखते हैं कि नतीजा पहले वैसा नहीं आता है। तब उम्माह या, अर नियरता है। स्वयं जो अपने का होमन चलते थे, वे ही अब भाग्य बदल गये हैं। व एसा जान कर कर रहे हैं, सो नहीं शायद अपने वायुत कर रहे हैं। पर ही अबतक कि ऐसा हो रहा है। जिनगी जो ज्वाए पर भी अब उतार पर नीमगा है, और आदमी दखन की तरफ उठने के कताय नीम पाना में गिरन को अपने को मन्तूर पा रहा है।

गांधीजी का अन्तर शरीर तो हमारे पास है। उनका जिनगी हुआ मन्तूर-कुछ मीजुत है। उनकी याद भी ताजा है। उनकी सिखावन में लाभ करने की तय्यारत भी कम नहीं है। फिर भी कहीं कुछ कमी है कि ए-गल्टा हो रहा है। आगा भी कि भारत उम्मा जा रह है जिगायेगा। उसमें से तुनिया को एक नयी विरण पूरती नीमगा। गमाधान प्राप्त हागा और एक नूतन पणतर लखन। पर गांधीजी हागा है कि भारत सिर्फ कंगाना हुआ पडा है। उस बाहर से धन की और अन्न की मांग है और देने के लिए उसका पास को बल नहीं है। नया जापगी हाए और चीन-हाए है, गमस्याएँ जिनती जा रहा है और एध-ध्वन्या नीम पा रही है। गमस्याएँ या भुमीयत गांधीजी के करने न या गा मत नहीं। एर हम

अपने का निःशरर रर दन का यल भी नहीं छादा । परिणाम यह हुआ
 कि जो उनके अपने रने वे ता देहात क ररनात्मक षाय में वैध दिय गये
 और जा अलग रहे व खुशी से, त्रिक सहायतापूरक नेता बनने दिये
 गये । अपना को गाँधीजी ने ऊँची तुर्सी के बनाय सवा की धरती दी ।
 जिनका मन राजनीति म था उनको राजनीति से रने देने दिया, पर वहाँ स
 भी उनसे जा बन सका नरा न नाम निःशरर लेन का ध्यान रगा ।
 गामन यथ हा जाय और हर गाम्भी अपनी-अपनी जगद सेरा-सिद
 उत्साहन र काम म लग जाय—यह उदान दृष्टि रगी । वाप्रेस से वाहा
 कि वह पद की तरफ न देखे, जनता की तरफ दय । कुर्सी जाता क कधा
 पर बैठती है, मेरक की जगद जनता क करणों म है । इससे तुर्सी की
 तरफ उस नहीं देखना है । तुर्सी या है ता किगी-न किसी को उस पर
 ररना ही है—वहल इसीलिए वहाँ जाकर बैठने की अपन लिए जन्मत
 पदा करना सभी रात नहीं है । दिन-असली यह हागा जब कुर्सी कोद हागी
 ही नहीं जाय पर सिर्फ दायित्व हागा निर्भर माय बतन-भत्ते का का
 प्रोभन न लगा हागा । तब समग्रा जायगा कि जनता समथ बनी है
 तब भी वह प्रलामन या पुम्भार न हागा । तब तुयानी का हौसला
 गमनगला गाम्भी ही उगके लिए तैयार हागा ।
 गाधीजी गी से अपन बार म फइत थ कि यह राजनीतिक नहीं,
 धार्मिक है । राजनीतिक र हागा गाधीजी का असली हागा था । बस यही
 जगत्पित जनकी हमस छूट गयी है । हम राजनीतिक हाकर वा गाधीजी
 र हागा चाहत र ना माना भीतर म उनका निषध बनकर ऊपर उनकी
 कहा उरना चाहत है । वह मला जैसे फल ला गरता है ? इसी स दरन
 म आता है कि गाधीजी की नीति के नीचे जीति आर उनकी अहिमा
 क नीति कायरता फल रही है । गाधीजी की नीति-जीति के लिए सगा
 चुनाती था आर उनका हिमा हिमा के लिए मय का कारण थी । पर
 गाधीजी की मूल धर्मिगता र अमार म वह रात भा नहीं गइती । तब

ग़दारता की नीति निरुद्धी और अहिंसा निरान्त आत्म की चीत समर्पी जा सकली है ।

गांधीजी की शक्ति पर हम आराम से ग़ासन नहा चला सकत । ग़ासन और ग़ासक का समाप्त दखन की इच्छा धरनवाले गांधीजी थे, उसको सहनेवाले न थे । ग़ासक का सग़ा उनम कौपत रहना पग़ । ग़ासक में म रह मवक गल निकालना चाहते थ । लेकिन सेवक अपन प्रम धम को छाटककर ग़ासन धम आदने हा क्या लया । इसलिष वह एसा जनतथ दरना चाहते थ कि जिसकी इकाद स्वाधीन, स्वायत्त, फिर भा राष्ट्र (अथवा समष्टि) न साथ सहानुभूति म रथा एक जनपद हा । प्रत्येक जनपद म मवा का अपना सचत्व मानकर पैग़ हुआ एक समग्र मवक हो । जनतथ के सूत्र का सिरा श्रु संरभ न आगमम हा । जनतथ का इस तरह सिचन दृश की सारी भूमि म मिल । वह किसी भी अथ म अथतथ न बन पाय, सरया जनतथ ही ग़ । मत्ता केन् म धर चलवा ह तर जनतथ जन का तथ न रहकर अथ म तथ जन जाता है । तव अथ ता प्रधान और जन गाण हा जाता है । एमी अथतथता की नीति पर जमनेवाला जनतथ जन-जन में पराधीनता का बाध बढानेवाला होगा । जान अनजान उस तथ का एक आर केनीषता आर दूमरी आर सर ग़ापकला (वानाशाही) की तथ पलन जाना हागा । असम तनाव पग़ हागा धौर पटने की हालत रलती जायगी ।

गांधीजी ने नहीं चाहा कि काद उन पर आमरा टालकर उठ । उन्होंने सरया आत्म निभम दगना चाग़ । उसी प्रकार की स्वावलम्बी अथरचना का सुवपात किया । स्वावलम्बन म शार्दिक परस्परवलम्बन ना हो जाता है । जा नहीं आता वह है उन्माद का मारनचाला परध लम्बन । वह अथ-धवम्या, जहाँ व्यक्ति काम आर पूजी के जभाव म अमदाध जनकर अपन का रचन का लाचार पाता और इन्सान की जगह एक धनना स्वीकार करता है, रागनीतिक पाटी शक्ति थ लुगने आर जमा करने में ग़ मुर्गी की मारित होती है । लेकिन ग़म प्रकार सुधर म म

गौची हृदय शक्ति व कर्त्रीकरण से उम प्रवस्था का विकास और बढ़ा ही है। मनुष्य काम और पुँनी के लिए पूँजीपति की तरफ न देकर सरकारी विभाग की तरफ दगन को लाचार बने, ता इसमें मनुष्य का पराधीनता किसी भी और से कम रहा जाती है। यन्कि सम्भर है कि यदि पूँजीपति नाम के मनुष्य में हृदय पत्य अनर रह जाता हो, तब सरकारी विभाग म तो उस हृदय नाम की चीज का धना ही अगमन और अवैध हा रहता हो यानी वहाँ उस वस्तु का कहीं अता पता ठक न हा। इसलिये मनुष्य की स्वाधीनता की स्वय उमम अलग से नाकर इस या उस प्रकार के तब न जुदा खेपने की नूल का रदावा गाधीजी ने नहीं दिया। उन्होंने कहा कि स्वाधीनता ता हरणक की मुट्टी म ही है। तुणा म्या, लाभ का कम करके आत्मी अपनी तगत पर मन-बुद्धि के पूर सदयोग के साथ टाना हाथों से उपजान और काम करने म लग जाव, ता ऐसे बट अपनी ही म्यतंत्रता न कमा म्या, यन्कि स्व की म्यतंत्रता का भी पास लायगा।

राजनीतिक और धार्मिक म वही अन्तर है। गागर म धूर्त की गिनती नहीं है, लेकिन धार्मिक फिर भी धूर्त का गिनती म गता है। ऐसा बट धर्मा के बरु पर ही कर पाता है। धूर्त के बदलने स गागर कम बदलगा, बदलगा भी कि नहीं, इस ध्यय गिन्ता के नीचे जान स वर गहन पर जाता है। फल जो हा, उम ता वही करना है। आदमी का बचाकर या अपने को बचाकर, राज्य पर या दुनिया पर जाना उमम नहीं बनता। यह अपनी वृष्मण्टकता समझी ना सकती है। समझा ना सनता है कि यह अपने म बन्द हो रना है। अमामाजिकता का दाप भी उममें देना ना सकता है। ऐकि प्रवहार की दृष्टि स मी इसम इतना लाभ अरान है कि उस व्यक्ति म हानेगला मुसकान उस पर ही पकर वही सोमि हो रहता है, उमम आने पैर नहीं पाता। लेकिन अगर उममे लाभ हान वाला हा, ता वह अनय ही उममे बाहर की ओर जाने बिना नहीं म सकता। फिर भी जो मित्र बुद्धिमान है म्मका बट दृष्टि नहीं जाती।

थे। निश्चय ही उनके जीवन मूल्य जुदा थे। ससार उनके लिए साध्य न था, केवल साधन था। राज्य और स्वराज्य में उनकी कामना न थी, उसके द्वारा उन दुस्त्रियों को वापस हक के रूप में उनका सुगम पहुँचा देने की कामना थी, जिसके छीनने में हम स्वयं साधन बने हैं। हम आराम और प्रभुता में रहनेवाले लोग अपना प्रायश्चित पूरा करने का अवसर पायें, यदि राज्य का और स्वराज्य का यह अर्थ है तो उसके पतन के लिए आपाधापी की जरूरत नहीं रह जाती। कम का महत्त्व तब भाव में आ जाता है और प्रतिष्ठा तब कम के फलस्वरूप नहीं बल्कि उसमें के अकम भाव में आ रहती है। निश्चय ही धार्मिक गांधी का मूल्य चाहे जो है उनके उच्चाधिकारी साधारणों के मन का मूल्य कम के फलस्वरूप से बाहर नहीं है। जार शोर की कम-याचना में से वे लोग बृहद् फल अपना लेना चाहें तो उनकी दृष्टि से इसमें अयथाथ कुछ नहीं है।

पर उसमें से निराशा ही फलित होती देखी जाती है। निराशा से फिर कम का द्विगुणित वेग भी दिया जा सकता है। "साम्राज्य से लड़ा जानेवाला युद्ध निराशा से बग पाये हुए कम का ही तो नाम है। लेकिन ऐसा सहलावा बन कर आत्मी अपने का देता रहेगा और इस तरह स्वयं अपने मन को ही सम्कार देने के काम से बच कर छुट्टी पाता चला जायगा? वह काम ठीक मत, इस फल से ही उसमें लग जाओ—यह गांधीजी ने कहा। यह वह काम है जो मन के लिए इसी घंटी मुग्ध है और जिसे किसी याचना पर स्वयं करने की आवश्यकता नहीं है। यह सीधे एक निरक्त सन्यासी की-सी समझी जा सकती है। लेकिन यह उन गांधीजी की थी जो गृह और पूरे जहाँ में आज के भारत के गणपिता हो गये हैं। उस नैतिक धन का जो यह कमाकर हमें सौंप गये हैं, चाहे तो हम गैंगों मरते हैं। अथवा उभे पत्तों भी मरते हैं। आँग्ल गोलमर उग गये कर टालना चाहें तो इसमें भी कुछ हज नहीं है। लेकिन कहीं हम मान कि धन तो नैतिक हाता ही नहीं और जो अगल में धन हाता है वह तो उनकी नौपी हुई धैर्य में हमें मिला ही नहीं है और यह कहकर

यहूँमाग है जो धम न लगाकर जीता और चलता है। दूसरा तरफ शहरी श्रेणी है जो कम से लिपटी है। धम और धम के बीच तार है, जिसका फैशन बढ़ता ही चला जा रहा है। शहर गाँव पर कृपा से भरता है और चतुष्टय से यहाँ की उपज अपनी तरफ रींच लता है। धम की यही महिमा है। धमी गाँव की महिमा यह है कि टग जाता है और अमान म भी संतोष पाने का प्रयत्न करता है। भयकर भूल होगी अगर गाँव धम का और संतोष को हम शहर पर लाने के उपाय शहर की चतुराई लेकर गाँव का उकसाने और उमारने हम जा पहुँचने। ऐसे आग ही लगी और सत्र जल जायगा। यही हो रहा दीयता है। राजनीति जिस कम-मल का लहवा कर अपना सुधार और उद्धार का काम करना चाहती है उससे पहले म अधिसंग यह विषय समझा हुआ है। उस विषय-हरण की अन्धीर दवा के रूप में गांधीजी के प्राथमिक आमद और रामनाथ की धुन का हम साथ-साथ चला तो शहरे म धम से बचना जा सकेगा। कम्युनिज्म यह गांधीवाद है जिससे हत्या करके इस्लाम का जन्म कर दिया गया है। इस तरह यह सत्र कुछ दूरिद अन्त म केवल एक निपथ रह जाता है।

कम्युनिज्म आज शक्ति है। यह घड़ी दुनियाय शक्ति है। शक्ति का निखल्ट घृणा में ग आती है। सच है कि शक्ति घृणा के बिना नहीं होती। इससे निरा साधुतावाक साम्यवाद का जन्म नहीं हो सकता। गांधी गांधी थे, किन गांधु नहीं थे। यादों का म प्रवर्तक यह यादों थे। अस्तु ये वह धमी समझता नहीं कर रहे थे। इस प्रकार अग्रक के विरोध म उनमें सत्र एक टुपप का जगा रहता था। प्युगतादी जिस मीपण कररता के साथ सत्र का अपना इमान मान सकता है, गांधीजी जगम यही कति अन्तता के साथ सत्र का अपना धम मानते थे। उनमें भी घृणा थी और यह स्वयं घृणा के प्रति थी। यह घृणा उनमें चले यही तीन थी कि तितनी साम्यवादी म पूँजीपति के लिए हा सक्ती है। यह तरह गांधी की अदिगा किंगों की भी लिंग म धम प्रार न थी।

गांधीजी और हमारी राष्ट्रियता

गांधीजी और भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ का समय भारतीय इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण युग है। उसमें बहुत-सी बर्नी-बर्नी घटनाएँ घरी, आन्दोलन और दमन हुए, अंग्रेजी हुकूमत गयी, भारत का टूट हुआ, और अन्त में गांधीजी मौली ग्याकर पराधाम से बिरा हा गय।

उनके बाद स भारत अपनी स्वतन्त्रता में वृद्ध रहा है और अपने का मुधीरत में अनुभव करता है। उसमें से बरकर पाकिस्तान बना है और उस विभाजन में से शरणाथिया की समस्या आ यनी है। यह समस्या नैन नहीं लेने देती है। यह मजबूर करती है कि राष्ट्रियता को उल्ट-पलटकर फिर फिर पररा जाय जाए उसके सम्बन्ध में गही दृष्टि प्राप्त की जाय।

गांधीजी के रहत भारत की राष्ट्रियता का उनका भाग दगन मिलता रहा। स्वयं गांधीजी का वह क्षमता नहीं क्षता था। कारण, उन्होंने अपना धम अहिंसा माना था। अहिंसा धम हान में एक जाए अनन्य की समस्या का उनके भीतर ऐसा समाधान हो जाता था कि तात्विक बाद बटिगार उह नहीं हाती थी। बाहर में व्यवहार की कठिनाई जा आती थी, उनमें आन्तरिक भद्रा में झूठर वह कुछ हल ही हाती थी, हावी न हा पाती थी। अपने और अपनी आत्मा के रहकर स्वयं बनते जाने में उह कठिनाई नहीं हुए। अपने होन के लिए उह अपनी मयादा छान्न का आवश्यकता नहीं थी। एक में से ही उहान गरकी छाया। अन्त तक कहा कि मैं मनातन हिन्दू वैणय हूँ, उगी में मैं गद धम मुस समान बना ह। ने मय भी भरे ह, मैं उनका हूँ। मरा वैणयन्व मुस वह कियाता है।

यों यह भ्रिति अपरिचित नहीं है। गूरी और ममा लोग गर में उग

भाषा उनके लिए अनावश्यक हो गयी। अपने सत्य पर स्वयं डट रहना और दूसरे को एवं दूसरे के सत्य का उसी प्रकार अस्तर देना—इस निष्पत्ति, फिर भी दुहरी नीति से पालन से उनके द्वारा भारतीय राष्ट्रीयता को वह मांग मिलता चला गया जो उसे चाहिए था।

किन्तु गांधी और कांग्रेस किसी भी समय एक नहीं हो सकी। स्वयं गांधीजी ने यह नहीं हाने लिया। गांधीजी भाव में एक्य इतना साध नहीं थे कि शरीरकार में ता विविध और विभिन्न बन रहना ही उच्च उचित जान पड़ा। परिणाम यह कि तब उन्हें अनुभव हुआ कि कांग्रेस उनमें जाग स्वयं अपने पैरों पर खान की सामर्थ्य ग्राही है, इतनी उन पर निर्भर होती जा रही है, तब उन्होंने कांग्रेस-मन्त्री से भी अपने को अलग कर लिया। कांग्रेस का यदि अनिर्वास लगे कि वह गांधीजी का नेतृत्व ग्याने और पाय, ता भी गांधीजी उसका संचालन सूत्र का अपन हाथ में धामनेवाले न थे। उनकी आर से यह विभाग माना जवाहरलालजी का हा चुका था। परमाणु के लिए यह मुलभ थे, पाप में सुदृष्टी थी कि जवाहरलाल कांग्रेस का अपनी राह चलाय। गांधी आर जवाहरलाल के सम्बन्ध कांग्रेस के पिछले दिना के इतिहास की सुची है। जवाहरलाल जैसा गांधीजी का भक्त दूसरा मिलना कठिन है। पर अपन प्रति रारे रहन की जागरूकता की अतिरिक्त चेतना से भी जवाहरलाल बन नहीं पाते थे। गांधी के प्रति सम्पण में से जवाहरलाल कुछ भी अपन पास ग्रा रहना चाहत थे, सा नहीं पर गांधी सम्पण स्वयं देना न सींग थे। सम्पण ग्रा भगवान का है। आर गांधी इतने आस्तिक थे कि मानत थे कि कां अलग इश्वर की आर से इगलिए नहा चाा है कि वह अपन अंगणन का, रानी अपन अलग 'ह' आर अंग बुद्धि का अपन पास न रंग। अगलिए तब-जब जवाहरलाल की आर से मतभेद उन तद गया तभी तब उनकी आर से यह सुरातित थापण जवाहरलालजी का थापण कर दिया गया। अमरु ताइन आर गणन का काम कभी रतीभर भी गांधीजी न नहीं किया। जवाहरलाल स्वयं अपनी आर से यह करत हा

कर सनत थे। पर वह अपना प्रकृति भार रक्त का कर्हो न जान ? इक्षर
 जा गांधी का समूचा न और सम्बन्ध था जवाहरलाल की समझ न हाथ
 किसी तरह न आता था। उस धारणा में जवाहरलाल का प्रकृति प्रयोग
 कदवा हुआ दीखता था। उस जैसे का जगह निजली के बल्ले अंगण में
 वह 'उन्नति' लिख चलना और पत्र लिखना चाहत थे। गांधी धार्मिक थे
 पर जवाहरलाल और बोलकर धर्म का उस मान सकते थे ? धर्म कर न
 और इतिहास बताता था कि वे आपस में मिलाते आय है। फर्मी फालत
 में बहुत उदार हुए तो वह 'धर्म-निरपेक्ष' हो ही सकते थे।

इस प्रश्न पर हिन्दू-मुसलिम समस्या के इतिहास का अन्तः।
 मुसलिम के वहां अधिकार हो ना हिन्दू नागरिक के, वह पारणाम ता दोनो
 ही को प्राप्त था। लेकिन जवाहरलाल के लिए तब कि हिन्दू-मुसलिम दाना
 गलत क्या थे और यहम थे, तब गांधीजी का जना धर्म और दाना मान
 प्रिय थे। राष्ट्रीयता जवाहरलाल के लिए इस अर्थ में असाध्यप्रतिक्रिया था
 कि सम्प्रदाय से यह मुक्त रहे। गांधीजी के लिए उसके असाध्यप्रतिक्रिया फल
 का मतलब यह था कि वह प्रत्येक सम्प्रदाय के लिए अपनी हो सके।

हिन्दू-मुसलिम शब्द गांधीजी के लिए प्रतीक थे। यश्वर की अनन्तता
 नाना गुणों का सहाय लेकर बनती आर प्रगत होती है हिन्दू-मुसलिम
 के नीचे माना भेद की यह सन्तुची भूमिका हो आ जाता थी। भेद के
 प्राप्त अधिकार और अवगाहील हाना क्या नास्तिकता ही न कलावगी ?
 पैर पैर से किया जा सकता है, बगी से नहीं। उस मानकर चक्र से बर
 आप ही पन्ने लगता है, पर असल में ता पैरी धार है हा नहा। जो अपन
 का पैसा मानता है वह भूल में है, भय में है। पर का मिगन के लिए
 बग का मान देने से शुरू करना होगा। मान उपरी नहीं, बल्कि हास्यक।
 उपर से तो बल्कि चाह असहयोग और सत्संग्रह भी चल सकता है।

उस दृष्टि से गांधीजी न इस्लामी राजनात से अधिक इस्लाम धर्म
 का आग्र ध्यान लिया। इस्लाम धर्म यदि ग्राह्य था है, तब फिर भी
 अगर मुसलमान अर्थात् के लिए तुला लीगता है, तो कहीं-कहीं जोद

विकार ही उसमें कारण बना ही सकता है। गायद मुसलमान अपने कुशन से दूर चला गया है। मुसलमान में कारण पैदा हुए उल्लान का रूप कहीं बाहर से नहीं आयागा, वह उसी में न जायगा। वह इस प्रयत्न में आयागा कि मुसलिम अपने का और अपने काम को अपने मान पर फसकर ले। गांधीजी ने सीधे हिन्दू का कहा—“सच्च हिन्दू बना”, मुसलमान से कहा—“सच्च मुसलमान बना”। इस तरह हिन्दू के हिन्दू बनने और मुसलमान के मुसलमान बनने के आग्रह से सम्मिलित मारतौपता या राष्ट्रापना कम बनपायी, यह गांधीजी का नहीं हुआ। उनकी श्रद्धा थी कि अपना-अपनी जगह सच्च इन्सान बना की वाग्विषय में जो निकलेगा वही सच्चा होगा। राष्ट्रीपता भी वही सच्ची होगी। किसी भी धर्म को छोड़ने की जरूरत किसी के लिए क्या पार? क्या कोई धर्म ही भी सकता है जो आदमी को सच्चा और सेवा वाली बनाने के लिए ही न आया हो? उस राजनीति में समझा की मुसलमान के लिए काम नीचे गहरा में करना होगा। शायद उतनी गहरा में कि वहाँ मनुष्य का अन्तःकरण और उसका धर्म रहता है। असल में वहाँ ही, वहाँ किया गया काम ऊपर फूल या फल में जाप ही शक्य आयागा। जत मुख्य कृत्य मन का आर चेतना का गम्वार है।

लेकिन वह न हुआ। गांधीजी को ही वह मन पर जाना था, यह मानना अपने का धर्म दे लना है। गांधीजी अपनी मौति जीकर, चलकर और हमारी आँखा का गाल टनेराली सफलता भी दिग्गकर एक जीवन नीति का उदाहरण सामन कर गये हैं। उसमें अधिक करना किसी का काम नहीं है। उस मानव-नीति की भूमिका पर हमारा काम नहीं चल सकता। राजनीति का गल-बला रहा और राजनीतिक अधिकारों की गार और मौग में यातावरण गम बना रहा। गांधीजी अंग्रेजी शासन के गुण और अग्रज जाति में मित्र थे। कारण राष्ट्रीय होकर शत्रुता समझा गवती थी, मित्रता नहीं। नीति का यह द्विधाधार (Exclusivism) यदि हमारी राष्ट्रापता के लिए भीड़ित हो सकता था, तो यह द्वैत का विषय नहीं

तक रह जानेवाला न था। अंग्रेज के प्रति हिन्दुस्तानी गारमपूत्रक द्वेष ग्य सञ्जा है, ता मुसल्मान हिन्दू के प्रति धमपूत्रक अपन म इया का भाव क्या नहीं उपना सक्ता ? जयात् अग्र राष्ट्रवात् न यहाँ भारत म तिराष्ट्रवात् का जम दिसा। जान पत्ता कि भारतीय इस्लाम की आवाज कायद आज़म तिन्या की आवाज है। यह बात कि नमान आर कुरान म भी तिन्या का उतना गार्ग वात्ता नहीं है, उम समय किमी के लिए गगत तरु नहा रह गयी थी। राष्ट्र धम मानव धम म स्वतंत्र उन आया था और श्री जिना एक स्वतंत्र मुसलिम राष्ट्र के न्ता तैर निमाठा के रूप में प्रस्ताव हात चड़े गय। तभीयत उल उल्मा, महत्वहीन जीव हा गया आर मुसलिम लीग तार पकन्ती गयी। त मय गांधीजी के रहत हुआ।

लीग का इमान साफ था। हिन्दू एक काम है, मुसलिम दूसरी काम है, और ताना अलग है। सन्धिया स साथ रहने पास रह है सही लेकिन कामियत ता है, आर भारत को मुसल्मान काम के लिए एक अलग राज्य बनकर हा रंगा। स्पष्ट हा यं राज्य बटान की नाति था।

सन्धुग उसके गांधीजी की मानव-नीति थी। उसका कहना था कि तंत्रवाग चाहत हा, ता जनदस्ती स उसे राक्ता तैस जायगा ? इसस जनदस्ती मे कुठ छन की बात म भा क्या गार है ? आखिर क्या हिंदू मुसल्मान हान म ताना भाद भाद नहा रं ? तंत्रारा भादया म मी हाता है। जयो दा के बीच तंत्र अंग्रेज का लान स मन म पक पन्ता है आर काम जानान नहा हावा। त मान ल्या कि हम एक जुनर के है आर तिर चाहा ता तंत्रारा हा करेगा।

तंत्र भादयन का वातावरण न था। न कांग्रेस के पास न लीग के पास। तंत्र राजनीतिज्ञ थी ता कांग्रेस हम राजनीतिक न थी। अंग्रेज जान लगे ता यहाँ का अपना राज्य किस पर उपकर जायें ? जान म उनके तंत्र होता जाना भी माना न था। आरजी ला राजमान का इन्तनाम किया था तत्र पन्ता नहा दीवता था। गौंनतान इतना थी कि काम तंत्र था तैर मनमानी चलता थी। कांग्रेस का नाति तार मिडालन का मण्या

नहीं थी, उसकी जिम्मेदारी तात्कालिक और व्यावहारिक थी। राज्य उस चलाता था। रोच की घिन घिन से क्या लाभ? चला, झटने में एक बड़ा आपरोधान ही रही। इस भाव से, नीति में और यातावरण में संग्रम और हिंसा हात हुए भी अंग्रेज के हाथों कांग्रेस न टूट-टूक हो जाना स्वीकार कर लिया। टूट-टूक हो जाना इसलिए कि यह काम बाह्य से हुआ था, और सीमाद साथ न था। आपस के समझौते में होकर वह चीज बँटवाग बटलाती और मन में मै न छोड़ जाती। पर उस दुःख होना में से जा निकला वह तमाम आगे आनेवाले राजनीतिका के लिए चेतानवी का काम दे सकता है। चेतानवी यह कि राजनीति के लिए मानव-नीति का छोड़ना कभी-कभी भय होनेवाला नहीं है।

उमरे घाट में भारत की राष्ट्रीयता परमीरी पर है। विभाजन के बाद गांधीजी ने तो अपने लिए रास्ता निकाल लिया था। उन्होंने कहा कि हुक्मतें न हुए हैं जिस ता दो नहीं हुए। आगे उन्होंने कहा कि क्या राष्ट्रीय विचार जाने से लाहौर भेदे लिए गैर हो जायगा? म वहाँ जाने-आने के लिए भाग पासवाग की सोचनेवाला हूँ? उस तरह कानूनन अगर राग न हो गया और उनही सरकारी राष्ट्रीयताएँ न हो गयीं तो गांधीजी ने अपने निष्ठा इस नये दैत का स्वीकार नहीं किया। स्वीकृत राणवता में उन्होंने अपने का जल्द कर दिया। यह कहना ज्यादा गीर हाग कि बड़ा नी राष्ट्रीयता न अपने का गांधीजी से और गांधी भाग में जल्द कर लिया।

गांधीजी किसी भी तरह पाकिस्तान में बसना-ठ मुसलमान का अपने लिए रिश्ती बनाने का तैयार न थे। मय हिन्दू थे इसलिए मुसलमान उनका जोर भी अपना था। पाकिस्तान नाम ही जाने में पंजाब सूरा मरत, मिय रिश्ते-चिस्तान या पूर्वी बंगाल के बहुमतव्यय मुसलमान हा उनके लिए इतन पगय नहीं हो सकते थे कि उनकी भूला और गलतिय का अनन्वयी करे। भारत यूनिफन में वं धिक्कर नहीं देते मरते य भारत का पाप अगर उनके लिए अपना था, तो पाकिस्तान का भी प उद न्तना ही अपना था। मुसलमान के पाप के लिए भी प्रापि-

करना उन्होंने अपना धर्म मान रखा था। मुस्लिम पाकिस्तान में हात डूबे अन्याय पर हाथ पर हाथ धर जन के लिए यह मजबूर न था।

लन्डन कांग्रेसी राष्ट्रीयता धरन साथ साथ चुकी थी। यह पाकिस्तान के सम्बन्ध में असहाय हो चुकी थी। लिच्छ के रूप में पाकिस्तान पर वह प्रभाव ग्राह्य सकती थी, या उसमें निरन्तर का मान सकती थी। जातीय के रूप में उसका मन जाग मत बदलना या उस तरफ उसका चलती स गाल धान के लिए मजबूर जासी तरह न रह सकती था।

नताजा यह कि मुसलमान के पास एक साथ न देना था। पाकिस्तान उसका अपना धर्म भूमि के नाम पर भारत भी अपना धर्म और धर्म-भूमि के हक से। पाकिस्तान मुस्लिम राष्ट्रीयता के नाम पर बना था और उसी रूप में धरने का जमान का ही उपाय उसका पास था। उसका प्रतिश्रिया में भारत में हिन्दू राष्ट्रीयता उभरी। हिन्दू न अनुभव किया कि पाकिस्तान उस कि उसका है नहीं, तो हिन्दुमान तो फरी तरह उसका था। कांग्रेस का यह स्वीकार न था। उसकी हुनमत धर्मनिरपेक्ष होकर ही चलनेवाली थी। हिन्दू-मुसलमान में भेद पालना उस मजबूर न था।

मातृ की राष्ट्रीयता की स्थिति भी यह उलझन जारी ही है। आज में भारत यूनिपन की सरकार बन चुकी है और उसमें जटिल उसकी का स्थिति नहा है। यन्त्रि करे न सकता है कि ताकत सरकार है और उसका के अभाव में कांग्रेस मुन्हा निवार ही है। राज अल्लु गस्तर का नाम कांग्रेस के अनन्य मजबूर और सनिक रहे है, लेकिन कांग्रेस उस नाम को धार मुँह पर भी नहीं ला सकता। याना कांग्रेसी राष्ट्रीयता धर्म-धर्म है। इस्लाम के नाम पर गसर में जो एक नया राष्ट्र उसी के गरीब में म करण धन खरा हुआ है, उसमें मुँह परसर ही चलने का न गचार है। वह मुसलमान का हम सब पर ही जन अन्तर समा सकता है कि वह भारत की परिधि में था। परिधि में गहर हाकर मुसलमान उसका धून में भी गहर हो जाता है। हिन्दू-इस्लाम कांग्रेस भी राष्ट्रीयता में आगमन नहीं हो पाता। गणतन्त्र में उस उदार तरी मिलता और याने उसका

नहा दाखता चा भारत क मुसलमान को टुटफा बपादारी से बचा राफ ।
 हिन्दू नहीं समझ सकता कि मुसलमान को टुटरा लाभ क्यों मिलता चला
 जाय और क्या मुसलमान-गुस्ता भारत की राष्ट्रीयता हिन्दू-राष्ट्रीयता न उन
 जाय । हिन्दू राष्ट्रीयता म यह नहीं जाता कि मुसलमान यहाँ न रह, इतना
 ही है कि हिन्दुआ क मन्नाय क आचार पर ही यह रह आर देश हिन्दू-रा
 गमना जाय इस तरह गांधीजी की मौलिक माननीय राष्ट्रीयता क अभाव
 म इस समय ले राष्ट्रीयताआ म उगादी ह । दाना को मौलिक की
 जगह तांत्रिक कहा जा सकता है । एक काफ़ेमी और धर्म निरपेक्ष,
 दूसरी मंघी और हिन्दू धम-परयण ।

रह कि कुछ गतियाँ पगा ह जा राष्ट्र आर राष्ट्रीयता का सहारा
 नहीं त्रेता आर व गजनीति म गनिय हं, राष्ट्रीयता क विचार म विशेष
 महत्व की बात नहीं है । साम्यवाद राष्ट्र म अलग हाकर विचार करता
 ह, किन साम्यवादी दल कही भी राष्ट्र के मौंच का या राष्ट्रीय भाव वा
 अलग छाटकर नहीं चलता । गति यह अपन लिए यही से र्नाचता ह ।
 केकिन राष्ट्र आर राष्ट्रीयताएँ उगक लिए प्रयोजन सिद्ध करने के साधन
 ह इससे धम परयण अथवा कि धम निरपेक्ष राष्ट्रीयता के इन दोन
 प्रकारों के सम्बन्ध म उस विचार चिन्ता नहा ह । चिन्ता उसे यदि है ता
 या कि लोक-चतना आधिक की जगह कही नतिक न हो जाय ।

मग मानना ह कि राष्ट्रीयता का गांधी-आचार यदि हम स्वीकार
 करना चाह ता उसके दूसरे पलितार्थों को छोडना स नहीं चलगा । अहिंस
 का, यानी गमन्वय का, सत्य आर सत्य क आग्रह के साथ चलाने स
 भारत राष्ट्र उठ सगगा और जायद दुनिया के लिए भी कुछ कर सकगा
 गमन्वय म मूल और समशीता ह, तर सत्य क आग्रह म स अग्रह
 और जल-मुद्र भी निकल सकता ह । जन तत्र इतन प्रबल और
 ता रहे ह, तर मानव की आत्म प्रतिग आर स्वतंत्रता के लिए नसारा
 नहा क्वि प्रत्य रूप म गांधी नीति का म्यानार करना होगा ।



३

अहिंसा

अहिंसा का धल

ए नमो देवता नमो लक्ष्मी के दाता । पर चक्र के राँ
 नमो देवता कि मज्जा नया का टा ७ ७—

मुनरी नैने निवृत्त क शल राम ।

उष ल्या गड दल भरना दरगा

नक मता नही काम ।

निवृत्त हूँ दलगाय पुकग्या

अथ अथ नम ॥

द्रुपद-मुन निवृत्त नय ता नि

गदलय निवृ धाम ।

दु गायन की मुक्त शक्ति नई

धमनार मा श्याम ॥

अरवत नमो ल भर एहुयत

श्याम ह एलराम ॥

मूर क्षिणत हरा म मर दय

हाम का हरिनाम ॥

जुन नम मर का श्याम का जग्गि नय नय अश्रदा
 दुर । 'म का कलान का जग्गि ह' क र ल ल निवृ दनन
 कला ह । एम हरिनाम क मज्जा गु का निवृ नरी न का
 नया । 'क का जुनाम का म्म वृत्ति का वशान हा नई है । जग्गि
 न हों क हिन्दु पर एम जग्गिनाम का अमम धम र अमारी
 नय नय म का का हना नना ह ।

सुनाच खाटपर उन सम्पादक भाइ ने अपने पत्र में लिखा कि अहिंसा के नाम पर यह तो नियन्त्रण की सींग दी जा रही है। महामारत में पाण्डों को विजयी करनेवाली हम कृष्ण की अहिंसा चाहिए। हमका अग्नि के समान तेजस्वी अहिंसा चाहिए। मगतगिहवाली और गद्दीदों वाली अहिंसा चाहिए।

मेरी विनम्र सम्मति में सम्पादक भाई अहिंसा का नया मर्मण भार उन् उक्त शब्द के साथ खेलना नहीं चाहिए।

लकिन सम्पादक भाई को यहाँ छोड़ा जा सकता है और विचार किया जा सकता है कि अहिंसा में क्या है, तो किस प्रकार का बल है? क्या ही असल में क्या है? ऊपर के भजन में सब बल हार जान पर हार को हरिगाम था बल प्राप्त होना पताया है। इसमें क्या आशय है?

आदमी का आज हम पशु से नियंत्रण नहीं कह सकते। पशु में यह श्रेष्ठ है, यानी बल में भी श्रेष्ठ है। हम उनके सम्बन्ध में है और हाथी पर यह मजारी करता है।

पर यह भी स्पष्ट है कि पशु के पने पार पदक जाग जादमी नाचीड है, और हाथी के पौवत्त जादमी की जान याद्री नहीं पर रहनेवाली है।

फिर भी आदमी उन पशुओं से बल में हीन नहीं है, तो क्या

उत्तर है कि जिम बल से पशु बलवान है, उगरो ता आदमी न पन बना लिया है। उसको ता अयल ही उनाकर रख दिया है। क्योंकि उसन एक ऊँचे बल का आविष्कार किया है। उगरो बुद्धि-बल उगरो पन जाता है। उगरो जाग पशुबल नपुसक बना गीगता है।

पारम्भ में आदमी अथ यनवर प्राणियों में एक था। प्रकृति की क्या ने मानो यह बचित था। नग देने नहीं पार लेन नहीं। दो में दुबल। अति-ताप में बचने को बाल्य या लबाल्य भी उग प्राप्त नहीं। प्राणियों में सबसे जमागा प्राणी उस कह सकते हैं। तरह-तरह में अमाया से यह पिरा था और धरान था।

पर वह अभाव ही प्रवृत्ति की आरंभ आदमी का प्रगल्भ था। उस आदमी के द्वारा विनाश का एक चरण आगे घटना था। इसी में वह विरल बना, ताकि एक नये बल का आविष्कार कर।

आदिम मानव की चेतना चहुँ ओर से दबाव से अभिभूत हुई। नये में उस भीत रहना पड़ता था। वह अनायास अपनी रक्षा करने में असमर्थ था, जीवन-रक्षा तर के लिए उसे पुरुषार्थ का आवश्यकता थी। प्रवृत्ति ने उसे अभाव दिया कि अभाव में से जाति-कार का उत्पन्न हो।

तर से अंतर तरु सम्यता का इतिहास नये रूप से जाति-कार का इतिहास ही है। प्रत्येक नवीन बल ने पुराने बल का जलन गृह्य लिया। अक्षर में नवीन बल का आविष्कार हुआ ही उस चरित्र द्वारा हुआ। जिसमें मन में पुराने बलों की अवस्था पलक ही धर कर गयी है। आविष्कारक दुनियावी सफलता से विमुक्त रूप में जोर प्रतिभावान् धनार्थी नहीं होता। क्या? क्योंकि दुनियावी सफलता और धन की रक्षाधता में एक ऊँची यथाधता का आभास गृह्य जाता है। तर उनके लिए लोक प्रेम आदि अयथाध ही हो उठता है। समय इतिहास में भीतर जिस जिने कुछ दिया, यानी मानरता के घगतल को ऊचा उठाया उसने तत्काल के प्राप्य का हेय माना, और आगे की सम्भारनाआ का अपना साधना से सम्भव बनाया।

अहिंसा का बल, शेष, शिवा भी दूसरे लौकिक रूप से प्रयोग का स्वैच्छापूर्वक त्यागो विना सम्भव नहीं हो सकता। यह जो बल नहीं है। इसलिए बुद्धि-बल से भी वह भिन्न है। दुनिया में जिन बल का हम जानते हैं, उनसे वह निराले प्रकार का है। उस बल से उदयान जादमी गतना ही अपने का विनम्र मानता है, वह उतना ही मेवक बनता है। क्योंकि वह जो का नहीं है, इसीलिए वह हरि का है। अथवा मया अहिंसक पुण्य अपने का प्रायनापूर्वक शून्यवत मानता है।

इसीलिए अहिंसक शक्ति सम्पादन करनेवाले को उत्तरान्तर जकिचन बनना होता है। जिने पाण धन ध, कुल में, शिवा के, बुद्धि के, धन के

प्राप्त के लिए म्यान बचा है, वह अभी जटिला के बल का पूरा पात्र नहीं है। अभ्यन्तर का उन सब से जितना अधिक खाली किया जायगा, उतना ही सच्चे अहिंसा के बल को चतुर्दिगम में आने का अवकाश होगा।

जो आश्रित है उसे अपने ईश्वर के सिवाय दूसरा और सहारा ही क्या चाहिए ? इसलिए उसे अन्न भी नहीं चाहिए। अन्न नका म से और भय में स आता है। लेकिन आत्मिक को नका वैसी ? और उसका भय कैसा ? मृत्यु में भी क्या वह अपने ईश्वर की कृपा और उसके आश्रय को ही नडा देखता ? इसलिए मृत्यु की भंड म भी उसे कोई शिंका नही है। वह समभावी है। उसे जविश्वास की जरूरत नहीं, क्योंकि वह आम विश्वासी है। किमो लाने को वह अन्न चाँहे ? उसका ईश्वर तो सब वहीं है।

इसलिए प्रार्थना म स ही वह अपना बल प्राप्त करता है। वह न्त कारुण्य में स बनता है और ग्नेह उसने दान का स्वरूप हाता है।

क्या हम जिसे बल कहते हैं उस भीतर म समझने का प्रयास उगा सकते हैं ? अगर उगा सकते हैं, तो हम देखगे कि उस प्रकार क हर एक बल क नीचे एक निरालता की अनुभूति है। नाच म ताकत है, पर नाच में गमन की कमजारी है और उम कमजोरी का न मानन की काशिश है। जेनी अन्दर की कमी की अनुभूति का नकन क लिए बनती है। बहादुरी, सिपाइगाना बहादुरी, वान बह कि एक प्रकार के मन का ही बचाव नहीं है ? अथात् सब प्रकार का अह-बल अपन भीतरी निरालता की विभुयता म न आता है। भीतर ही भीतर हम जानते हैं कि हम निराल हैं, पर माना हम अपन का ही जतलाना चाहते हैं कि हम निराल नहीं हैं। इसी दृष्टि की स्थिति म स तमाम लौकिक बलों का जन्म हाता है।

लौकिक जब हम तल्लर धन्य भाव म अपनी अखलता का स्वीकार करते हैं और उसे मानों आमुओं क रूप म ईश्वर के चरणों म, जा न्तर कि सब शक्तियों का स्रोत है, विगणित कर देते हैं, तो यह आत्म शक्ति प्राप्त हाती है जा कमी हात या दृष्ट नहीं सफती। यह मूल तन गरी है,

अहिंसा और मुक्ति

इधर बार-बार मेरे मन में प्रश्न हुआ है कि जीवन-मुक्ति अपना माध क्या है ! यह प्रश्न किसी शास्त्रीय तत्त्व की जिज्ञासा में से नहीं बना है । जीवन की आवश्यकता में मैं ही मेरे निकट यह ता उपस्थित हो गया है । और उसका उत्तर हर बार उत्तरोत्तर स्पष्ट रूप में अपने भीतर मैं नुसो यकी मिला है कि जीवन की मुक्ति अहिंसा में है ।

अहिंसा में कष्ट, अहिंसा द्वारा नहीं कष्ट । कारण, अहिंसा साधन या सीढ़ी नहीं है जो कभी अनावश्यक हो जाये । यह एक ही साथ साध्य भी है जिसकी आवश्यकता कभी निरूपेण न हो । उसका प्रयोग स्वयंपापी है । उसे लोधा नहीं जा सकता । इस अर्थ में यह परम धर्म है । यह काद अचल स्थिति नहीं है, सतत त्रियमाणता है । उसमें गति का जनन्त धन काय है । अतान् कोइ यह नहीं कह सकता कि यह अहिंसक है, कह रहा सकता है कि अहिंसा का प्रयासी साधक है । इसी अर्थ में अहिंसा द्वारा की जगह अहिंसा में मुक्ति की उपलब्धि है यह कहना मझे अधिक यथाय मायम हाता है ।

य शब्द कुछ भाषी आर व्यवहार में दूर गये हुए से लग सकता है । पर असल में ऐसा नहीं है । सब पृथिवी में नित्य प्रति के व्यवहार के प्रश्ना का लेकर इस शब्द की सत्यता में लिए आर भी अनिनायता में प्रगत हो आती है ।

मुक्ति और माय शब्दों में अन्ति कुछ 'शास्त्रीय' आ जाती है पर क्या हर समय हम अपने का ध्यान में नहीं अनुभव करते ? क्या व्यक्ति और क्या राष्ट्र के रूप में हम स्वतंत्रता में लिए ही नहीं उत्पन्नवा करते ?

क्या हर काह—व्यक्ति, दल, न्या या साम्राज्य—परिस्थितियाँ स अपन का चढ़ा हुआ ही नहीं पाता वार उनसे आजाद हा जाना नहीं चाहता ? क्या हम कह सकते हैं कि जा विग्रह और सघन हमार कौटुम्बिक, सामाजिक और विश्व-व्यापी जीवन को अज्ञान और अस्त-व्यस्त क्रिये हुए हैं, व अपनी-अपनी स्वतंत्रता की इच्छा और चेष्टा म से ही हमने नहीं उपाय लिये ह ? और क्या अन्तत उनसे मुक्ति ही हम नहीं चाहते हैं ?

इस तरह मुक्ति कोइ पारलौकिक लक्ष्य नहीं हमारे हर कम आर क्षण की आवश्यकता है । ऐहिक और लौकिक लक्ष्य मी उसने दूसरा नहीं है ।

किन्तु समझा भी टीक इसी जगह है । जगत् म अशुभ्य चीर ह । सबको स्वतंत्रता चाहिए । म अपनी आर तुम अपनी स्वतंत्रता चाहत हो । इसम सघन आता है आर शिष्ट व्यवहार व सृष्ट निकालता है कि जहाँ से दूसरे की स्वतंत्रता का आरम्भ है वहाँ एक ही स्वतंत्रता की गोमा है ।

अर निवारणाय है कि जा समित है, क्या वर स्वतंत्रता सचा हा सकती है ? इसलिए व्यवहार में वह गृह कमी पूरा नहीं उतरता है । गीमाओं पर लोग की अलग-अलग स्वतंत्रताएँ सदा ही रगट गथा फरती है वार इस प्रकार नय नय मुडा को जम मिलता रता है ।

कहते ह कि राज्य म एक राजा आर जगल म एक शर रह सता है । यानी उस राज्य में यदि कोई स्वतंत्र है ता वर एक राजा, आर जगल म काह आजात है ता चीर । स्पष्ट है कि पेड़ा के और राजनीति व जगल की यह स्वतंत्रता व सघनी परतंत्रता के आशय पर ही एक क लिए सम्भव जाती है । स्पष्ट ही मेरी स्वतंत्रता पूर्ण तभी है कि अर तुम या काह ऐसा न रहे जो मेरे रहत अपने का गिन, इसी तरह तुम्हारी स्वतंत्रता यह चाहेगी कि कोइ दूसरा ऐसा न रह जाये कि तो तुम्हारे रहत अपन को स्वतंत्र माने । इस पद्धति से दूसरे की पराजय म एक की सम्पत्ता आर उसका परधान रान म अपनी म्याधीनता है ।

सचमुच यह प्रतिपादन करनेवाला एक जीवन दर्शन ही बन सदा हुआ है। इष्ट उसे भी मुक्ति है, पर वह उसकी सिद्धि स्वयं में से देखता है। युद्ध उसका माध्यम है राजनीति उसका क्षेत्र है, वह अहं शक्ति का प्रयत्न से प्रवृत्त, यहाँ तक कि अद्वितीय बनाकर व्यक्ति का अपनी मुक्ति सिद्ध करने का भाग दिखता है। वहाँ व्यक्ति हारता को अपनी आगा में लेकर, उनके ऊपर बैठकर, अपने को बचनहीन अनुभव कर सकता है।

इसीको प्रकृति विज्ञान माना जाता है। इसमें जीव जीव का भाजन है और वह ही न्याय है। यहाँ सबल होना ही एक धर्म और निरल होना ही एक पाप है।

समझा जाता है कि अनंत इतिहास में से जीवन का विकास इसी पद्धति से हुआ है। प्रबल जिया है और निरल के प्रति दया पालन की बात पर वह रुका नहीं रह गया है। गति इसी प्रकार सिद्ध हुई है और कालचक्र किसी ममता को नहीं जानता है। देखो विधाता को और प्रकृति में विधान का। क्या वह निरकुश, निमम आर निरपवाद नहीं है? क्या इन्द्र ही जगत् का नियम नहीं है? और यदि समस्त प्रकृति का नियम स्वयं अथवा हिंसा है, तो मानव समाज का भी नियम उससे दूसरा नही हो सकता।

यह विचार-दर्शन अत्यन्त तकसुष्ट है। वरुण उस तरह तमाम सृष्टि में मध्य में अपने को मानकर उसका जाकलन किया जा सकता है। अपनी निजता का मापा में व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता दण्डता सदा इसमें फोड़ अनौचित्य नही प्रतीत होता। एकनिष्ठ व्यक्ति हट सकता है दण्ड, दूसरे को कुचलत हुए, विजेता बन गया है—“तिहास भी तो यह सिगाता है।

किन्तु इसी तरह अटक भी है। यदि जीव अनक है, और स्वयं मुक्ति इष्ट है, तो सच्ची मुक्ति क्या बरी न होगी जा दूसरे की गता से स्वयं को, यदि उसको अपने में समा ल ?

हम मानते हैं कि मुक्ति का लाभ आर दान किया ता इन श्रेष्ठ आर धर्किचन पुरवों न ही । यह मुक्ति ऐसी थी कि जिस पर काइ सीमा और ममाति न थी । उर मुक्ति में से माना सभी को कुछ-न-कुछ अय मिला ।

धन स और सत्ता से मिलनेवाली स्वतन्त्रता, और प्रेम तथा प्राथना म प्राप्त होनेवाली मुक्ति क अंतर का क्या हम सबका स्वयं थाडा-बहुत अनुभव नहीं है ?

पहले में अभिमान फूलता है और अनिग्रय रूप स उरझी फिर प्रति त्रिया हाती है । उससे कपाय की वृद्धि हाती है और हमार मन पर सूम ग्रधन लिपटता जाता है । दूसरे प्रकार की मुक्ति का आनन्द अधिक आर अन्तस्य है । स्पष्ट है कि कपाय म हम स्वतन्त्र नहीं हा सकते, अधि काधिक बंध ही सकत है ! अहकार बदेगा उतनी ही कधन की जकड रुसेगी । अहकार जातीय या राष्ट्रीय हान स अपने गुण में उदल नहीं जाता । इसल मुक्ति का रूप कुछ बधी हा सकता है, जहाँ अहकार का भिन्नजन हो और सत्र म आमापम्य का विकास हो । यही अहिंसा की माधना है ।

गारीजी से दयें ता मानवता का इतिहास अहिंसा की धार हा बन रहा है । जत्र हम धन चाहत है, ता इसलिए चाहत है कि उसल अपन प्रम का चरिताथ कर सक । अथात् लोक कम में, जिसम हिंसा गर्मित है हम प्रवृत्ति इसी आधार पर कर पात है कि अतरग अपने प्रम का यानी अहिंसा का निष्पत्र कर सक । जान-अनजाने अपने समस्त कम-व्यापार की हिंसा म से हम अहिंसा की चरिताथता की ओर रु रु हैं । यहाँ तक कि हिंसक युद्ध भी कुछ-न-कुछ अहिंसा की पहचान की आर ही हम बना जात हैं ।

किन्तु जान हम उस जगह पर आ गये हैं जहाँ यत्र और चेग म हम अहिंसा की दिक्षा म पर रचना हागा । व सत्र आत्मलन आ सचमुच स्वतन्त्रता का चाहते हैं—चाहे फिर यह व्यक्ति, जाति अथवा राष्ट्र की स्वतन्त्रता हा—मूल में अहिंसा की परमावश्यकता म निमुग्न नहीं हो सकत ।

विमल हाग ता अपना लक्ष्य सिद्धि म ता विफल हाग हा माथ म एक गम्भीर निराशा क मी प्रकार हाग । अडता बन्कर दूसर की अहिंसा का पुनोती दिव गौर र नहा मछती । "सुतरा विकट युद्ध विकटतर युद्ध का नीत ही से जायगा । "सु विरयचक्र की समाप्त तर तक नहीं है तर नरु का निश्चित रूप से गुल्ल का फक्कर अहिंसक निमयता का अपना नहा आर सर का अमरान तथा आहिंसा का अपन उपर वार करन से निमन्त्रण हा नहा दता ।

यद्य अहिंसा है विमल भाजन हिंसा ? । विमल हिंसा म भर नहीं ल्युत अहिंसक से प्रीति है । जा स्वय अमर है इसस हिंसा क दिक्कार की शिक्ता विमल प्रत्यक्ष है । विमल अनुल य है आर जीवन क प्रत्येक क प्रति विमल करणा ।

"स अहिंसा का विचार करती जानता है कि हम अहिंसक समाज रचना का पूरी परिकल्पना उपस्थित कर । "तना ही नहा अहिंसक अपन बीच तदनुकूल समाज संपन्नता का निमाण कर । अहिंसा यति अन्य म गुणा का भाति करन माथ एक मन्त्रगुण हा नहा यति म है याना श्रुति म नूनभूत एक शास्त्र निष्पन्न है ता आवश्यक है नि ता लग उम अहिंसा म निष्ठा मगत है य नरत्नान क निमाण म सच्य हा । जात क आयुद्ध क सार सचमुच तुनिता का रण रहना है । "स विमीषिका म नर क्रम का आविभावर हाता है, तुनिता का नय मित्र म जान का नाल जानना है । राजनीत आर समाजनीति का पराना भूमिकाओं का है । उनका गानों दिनाला निकल पुना है । नर विश्वास है विचारका का युद्धपरन्त वरस उम मनातन मत्व अहिंसा की आर न जाना पन्गा । मच यह है कि उस अहिंसा का हमन शास्त्राय न निरम्मा कर दिया है । अपनी निष्पत्ता से उस गुल्ल के तर हमने नर कर लिया है । अपन जानन की निष्ठा आर समाज का गलकर हा हम उस अहिंसा का पुनरुजावित कर सकन हैं । विचार देना ता युगप की लाइब्ररियों म भी यन्त है । मांग उस अहिंसा

को है जो जीवन में ज्वलंत हो। यही विश्व की पुनर्जात का सम्भव में कुछ प्रकाश दे सकेगी। उस प्रकाश की आवश्यकता है। यारूद के आर-सादविवाद में धुँसे से अँधेरा छाया हुआ है। इस अँधेरे में आपा धापी ही चल सकती है। जर, इस अँधेरे में जान क्या नहीं हो रहा है। ऐसे में प्रकाश चाहिए। यदि आपमें भगवान् महावीर ने प्रकाश के नोट का पाया था, तो उसकी दुहाइ से काम नहीं चलनेवाला है। स्वयं उस रात से मिल प्रकाश को जगत् के सम्मुख करना होगा।

सच, उस समय बुद्ध और महावीर के धर्म का जा मानत है उनका बोझ भारी है। वे चाहते हैं उस बोझ को पटक सकें। लेकिन अगर वे उसको उगार ही रखना चाहते हैं, और चाहते हैं कि वे महावीर के अनुयायी मान जायें, तो जरूरी हो जाता है कि वे उनका प्रति स अपन जीवन का उजला भी कर।



अहिंसक आरम्भ

आज सारे हा जखमार के ऊपर यूनान के हाग का गदर छ
मिठी। बटा लड़ाई का रात ता सज जानत १। यह मित्रा और गजुअ
के बीच गुरु हुए। लेकिन यूनान के जपात म ता मित्रा के अपन बीच म
म ही शत्रुता फूट निकली दीखतो ह। उस खदर का पदकर मन साचा
कि अहिंसा को घम माननवाले आप लागा के साथ मुग आज जिन
अहिंसा की बात करनी ह, यह क्या ह? उसना इस विकर युद्ध से
यूनान के हागइ से संशेप म हमारी समुची स्थिति म फाट साधा सम्बध
ह कि नहीं? या कि यह एक आदर्श मिगान्त ह? ता तर लागू हागा त
हम मनुष्य देवता स्वरूप हा जायेंग।

सचमुच तो काम की नहीं है, विचार का हा है एमी वस्तु पर समन
यह लगावे, जिसे फान न हा, फुसत हा। फुसत यहा किस समझदार
का रक्ती है। हर पल फीमती है। स्थित का न्याय तना है कि जा
का, वह गया। हर घड़ी चानस और चानने रहने का जरूरत है। इस
तरह अहिंसा यदि एसा चीन नहा है जा हमारी आर आपकी हर राज की
जिलगी को मदद द और आग बगाव, ता समझदार होकर हम उस पर
चचा करने में समय नहीं गायग।

लेकिन मैं अहिंसा का बात की नहा काम की चीन मानता ह। जा
रात की ही है वह अहिंसा हिंसा ह। यानी निराद और चचा म असली
अहिंसा का सम्बध नहीं है। अहिंसा परम घम है, जिसका म यही अमि
प्राय लेता हूँ कि जीवन की हर स्थिति म अहिंसा लागू है। यह आर फाल
के भेद से समझी गलतता म न्तर नहीं जाता। अहिंसा भाषा निभग नहीं

है, वह भाव म है। यह हृदय की चीज है। उच पृथिवी ता अहिंसा की माया मौन है और उसकी अभिव्यक्ति 'शब्द' स अधिक धम म है। अहिंसा की चरितायता के लिए किसी को विगान् होने की आवश्यकता नहा है। मेरा भावी और उत्सर्ग-गील विद्रुता के विना भी हुआ जा सकता है, और अहिंसा का सार यह मेरामय उलग है।

व्यक्तिक धम के रूप म ही अहिंसा का विचारने आर पालने स उस सम्बन्ध में कुछ भ्रम हाता देगा जाता है। एसी अहिंसा वतमान का पुष्ट करती, विन्तु उसे मरिय की विद्या म गति नहीं देती है। अमीण श्रान्ति के माग म इस तरह वह अग्रय धन जाती है। उसम असामा विरुता का तत्त्व आ जाता है। वर म्वाथ पापन बनी हुए देगी जाती है।

व्यक्त अहिंसा की एकागी मान्यता में स यह दुष्फल फलित देखने म जाता है। अध्यात्म धम आदि सजाओं के साथ भी ऐसा मनमाना व्यवहार हुआ है। पर यह ता मानव प्राणी का दाप है। जो हर गुण का अपन प्रयाजन की नीचाइ तक रीय लाता है।

पर जोन अपनी एकाइ के रूप म पूर्ण है? काइ निज म स्वय ही कर नहा जनमता। जगत् में अमतीण हान के साथ ही नाना सम्बन्धों स है यहाँ के जानेक लारों के साथ युक्त हा जाता है। 'वक्ति' गुमाज का गि है और अविभाय्य है। यहाँ तक कि मृत्यु के बाल भी रगति के रूप। वह गीप ही रहता है। महावीर, बुद्ध आर दूसरे महापुरुष हम म होकर राज मी क्या जीवित नहीं है? और आनेसाली पीढ़िया म मी क्या नवा प्रभाव उत्त होनसाला है? इस तरह व्यक्ति का गुण-दायमय 'वक्तित्व' उसकी निज की चित्त का विषय ही नहा, वह सामाजिक और सावजनिक चित्त का विषय भी होता है। निजता का गीमा कही दे ही नहीं। हलकी-सी सफरी से पनी लहर का गुत्त पैलत पैलत जैसे जल तल की श्यत्ता तक व्याप्त हा जाता है, उसा तरह व्यक्ति स आरम्भ हुए भावना भी उत्तरात्तर व्याप्त हाती जाती है। अनेक के बीच यह एक है गही, पर उसकी निजता अपने म उतनी ही गल्ल आर गिद्र होगी

प्रकट होती गयी है और आपसी झगड़ों के बीच में समान-जाति अधिक से-अधिक सम्मिलित होती चली आयी है।

आज यह सुद्धि से जानने की नहीं प्रत्यक्ष आँसु से दिखनेवाला बात है कि किसी की अपनी अलग स्वतंत्रता जैसी कोई चीज नहीं है। फोड़ दण्ड अपन में एकांत स्वतंत्र हो, इसका कोई अर्थ ही नहीं है। और अपने का घेर कर और उसमें बन्द होकर नहा रह सकता। शेष के साथ जेन-जेन, मिलने-जुलने, आने-जाने का सम्बन्ध उसके लिए अनिवार्य है। हमारे पुराने धार्मिक निभरता और स्वयं-पूणता के आत्म जय विलीन हुए जा रहे हैं और इस प्रत्यक्ष सत्य से उचने का काम उपाय नहीं रह रहा है कि सारी मनुष्य-जाति मयुक्त है और एक का भाग्य दूसरे के साथ जुटा हुआ है।

विकास के ठीक इस मुहाने पर हम आज हैं। हिन्दुस्तान के यमा मोर्चे पर लड़ाई इस वक्त नहीं है, और नहीं है वह जगह हमें एक सम्मन्त्र पार है। लेकिन क्या अपने किरी फाम या रिस्ती भाव में हम उसके अन्तर से बचे हुए हैं? हमारे चारों ओर मँहगाई है, चोर बाजार है नफा-तोरी और घूसतोरी है। नयी दिल्ली में शाम के समय हिन्दुस्तानी से यादा इस्लामानी सनक मादूम होती है। इस्लामानी भी क्यों, वह बाजार का दुनिया के ही चौराहे जैसा मादूम होता है कारण अमरीकन और दूसरे लोग भी वहाँ कम नहीं दिखते हैं।

म कहना चाहता हूँ कि यह प्रियम समय है जब कि हिंसा-अहिंसा का प्रश्न प्रश्न का, विचार का, अथवा नीतिवाद का ही नहीं रह गया है, बल्कि वह हमारे सँस लेने जितना आवश्यक, तात्कालिक और तावहारिक बन गया है। वह एक ही साथ आध्यात्मिक और भौतिक है। यह एक जीवन से सम्बन्ध रखता है। बल पर उस टालना नहीं पायगा। चाहे तो इसी ध्ये उससे छुट्टी पा लें (यद्यपि छुट्टी सम्भव है नहीं) ता फिर उस पर अमल करने लगने का ही निणय कर लें।

विश्व में अनेक वग आर बाद हो गये हैं। य भी विश्व में

का अर्थ नन्दर जगत् का स्यावर सिद्धा है जर वे - विरुद्ध
 न-रिद्धा के विरुद्ध के अन्तर्गत के अन्तर किना है। लन्टि
 नावर के निम्न के लिए लिन व न सग लवर किया है - व
 व जायनिक का हार हो कि लिक पुत्र हार न मुद्रा भा
 है या निर व न लकिट का लकन ल अकिटन ल व
 अकिटन लि, (Greatest Good of the greatest
 number) हा कि लिक अतुन्त्र लि अने त्याघ को प्पथ न
 मिला व - जा हा, किन्तु यह वा न हा है कि म्प प्रसारान्तर से परतर
 च्चन के लिए अहिता का हा मान्य द्यगत ह।

किन्तु धान पडता है कि नाति शान्त्र म अहित की निरपना उ
 योनि का लानार करके मी च्चन म उत्तका सगति विधाना आसान
 ना है। उस पर व ल दन से आत्मी च्चन पारलोक्य हो जाता हुआ
 च्चन जाता है कि संसार के काम का नई रहता दूसरी ओर स्मार म
 सायक होने के लिए माना अहिता को निगाह से आह रतना अस्वी
 परार दे लिया जाता है।

इस विरोध को तकवा से नहा भरा जा सजता, इस साह को ता
 ममन्वयगील साधना से ही भरना होगा। आज क्या हम करने नल
 कि इंग्लैण्ट का शयियार डाल देने चाहिए, सभी उसकी जीत होगी ?
 गाधीजी ने यह जरूर कहा। उनकी साधना अगम है और अधिकार
 अमित ह। पर इंग्लैण्ट के वस का यह फव हो सका कि वह उनकी सीत
 मुन ले ? कारण, इंग्लैण्ट अपने सदियों के गस्कार से क्षण म छुड़ी चाह
 कर भी छुट्टी पा सैते सजता है ? उस देश का लोक-मानस, उसका समाज,
 उसकी सरकार अपने सचित कम-दोष से मानो आत्माविद्य बचन परन
 को लाचार ह। क्या सचमुच उस देश के अनेक मनीषी विद्वान्,
 जिन्हें भविष्य का संत प्राप्त है आर जो भूत से पदित नहा ह, यैही ही
 मलाह नहा गते ? पर बीज बन्ने बिना फल को बदलना पर सभा
 हुआ है ?

अथात् यापक राजनीति म अहिंसा के प्रयाग का प्रान हम नमों के लिए फल का ही है, यानी अनागत और अप्रस्तुत है, कि जिनहोंन अपने जीवन के मूल में उस अहिंसा को नहीं साधा है। लेनिन यों पूछिये तो राजनीति की स्वतन्त्र सत्ता ही क्या है ? क्या राजनीति हमार आपने सम्मिलित जीवन-व्यापार से ही स्वरूप नहीं पाती ? राजनीति हमको लेकर ही बनती है। उसका अधिष्ठान जनता है, कि जिसके हम सब अंग ह। इससे राजनीति का सार नागरिक-नीति (Civics) में है। और राजनीति शास्त्र मानव सम्बन्ध के नियमन का ही शास्त्र है।

इस पद्धति से आप देखेंगे कि अहिंसा के विचार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध आत्मा, परमात्मा के अथवा राष्ट्र से उतना नहीं है जितना कि हम बात से है कि हम धार आप अपने पड़ोसी से, अथवा कि इतर जनों से किस प्रकार व्यवहार करते ह। और इस दिशा में आप ध्यान देंगे ता तत्काल जीविका के, अथात् घनापाजन की विधि के प्रान से आप का विचार जा छुड़ेगा। और तब आना वही पुराना रूप हम सब जान पाया कि जैसा गांधे मन, वैसा दाव मन आप देखेंगे कि आपका जीवित रहने के लिए भोजन की, वस्त्र की, और दूसरी जा आवश्यकताएँ हं, वे सदा पूरी नहीं जाती। उनके लिए कुछ 'करना' होता है। इसी का जीवोपाजन कहा ह। यदि हम अहिंसा का यापक क्षेत्र म घटित करना हा, ता सबसे पून इस जीविकापाजन की विधि म उस अहिंसा का चरिताय करने से आरम्भ करना हागा। म अपने लिए किम कर से अत जुटाता हँ उसम अंग अहिंसा नहा है, ता आगे किम कर अहिंसा की सफलता किस प्रकार हो सकती है ?

अहिंसा की साधना को इस विन्दु मे हम आरम्भ कर सभी अर्थ की और हमारी सभी परीक्षा है। उगम सार है कि हमको प्रचलित अ शास्त्र और समाज शास्त्र से प्रसाध प्राप्त नहीं होगा। यना-बनाया प दशन या विज्ञान हमार हाथ नहीं थामेगा। उनकी सुनिश्चिद ही सु टहरी न। इगये हमका अपनी भ्रष्टा और धम मे एक तये ही अर्थ ज

की नींव डालने आर नयी अहिंसक समाज रचना के लिए तैयार हो जाना होगा।

और क्या आज के युद्ध ने युद्धात्तर निमाण के प्रश्न का अत्यन्त चिन्तनीय नहीं बना दिया है? सचमुच वह प्रश्न जीवन मरण का है। विद्यालय योजनाएँ गम म ह, और उनके जन्म के लिए बड़ी-बड़ी तैयारियाँ की जा रही हैं। ऐसे समय सभी को सचत रहना होगा और अपने भीतर टूटो कर तै कर लेना होगा कि हम क्या चाहते हैं।

मेरी धारणा है कि इस युद्ध के निमित्त से मानव-जाति न कापा प्रायश्चित किया है। मरान् करे कि एसा न हो कि अगले युद्ध के बीच अभी वो लिये जायें। अपने बाये का फल हम ही काटना होगा। लेकिन इस युद्ध में हमने चत किया है कि प्रेय आर दमन के बीच की फसल फेरी कहुवी होती है।

हम में स प्रत्येक अपनी-अपनी तरह स्वाधीन है। वह अपनी निज की जयासक्ति में आसपास शोषण के बीज रो सक्त है अथवा कि सेवा कम द्वारा अहिंसा को जन्म में अपने जीवन को साच सक्त है। हर हालत में कम की गति अटल है। कल पल उससे भिन्न नहीं मिलने वाला है जो आज हम बोते हैं। इसमें बाहर से समाज विधान या राज्य तंत्र के बदलने की प्रतीक्षा म रहना जरूरी नहीं है। भीतर से जीवन उगता हुआ आसगा, तो जीण बन गय हुय विधान आर तंत्र ता उससे अभि नन्दन में आप ही गिर रहगे। लाख जीवन के जाटत रतन के जागे तंत्र-व्यवस्था की रूति आप ही नत मस्तक हो रंगी।



४

सरकृति

संस्कृति की घात

संस्कृति पर आप से कुछ बात करने के लिए मजाता गया हूँ पर समझ में नहीं आता कि शुरू कैसे करूँ। शब्द का कुछ फारीक दे और उस पर पूरी पकड़ नष्ट होती है। या भी काम काज से वह बाहर का मालूम होता है। जैसे विद्वानों का यह शब्द ही और लिखने पढ़ने का प्रयोग में ही आता हो। आये दिन की जिन्दगी से उसे उसका वास्ता न हो और जो सवाल हम और आप को मामूली तौर पर घरे रहते हैं, संस्कृति उनसे कुछ दूर की चीज हो।

ऐसा मालूम होता अकारण भी नहीं है। संस्कृति शब्द ग्रीक-साध रूप में कम ही बोलने में आता है, अधिकतर किसी न किसी विशेषण के साथ जुड़ा रहता है। कभी किसी देश के नाम के साथ युग के साथ जाति विशेष के या अमुक मतवाद के साथ। ऐसे अनर संस्कृतियों रन आती हैं जार हर एक पर विचार लाग मेहनत करत हैं, उनका स्वरूप खर करत हैं, लक्षण रिगते हैं और उनका चार में तरह-तरह के शोध में लगे रहत हैं। इस तरह प्रत्येक संस्कृति दूसरे से विभिन्न बनता है और लोग उसकी रिगिप्रा का प्रती और प्रचारक हा जाया करत हैं। ये उसकी रगिप्रा का संरक्षक बन-बढ़ा करता है और उस पर न्यान रं लिए तैयार हा जात है। ऐसी संस्कृतियों आपस की रगिप्रा में बिगड़ पर उदार दी जाती है और कलह-कोलाहल उपजाने के काम आता है।

कलह का हम संस्कृति का नहीं कह सकते। कलह संस्कृति हा ता विद्वति किने कहने में फिर भी दराने में जाता है कि संस्कृतिया का टेकर विद्वति का, मानी रिगिप्रा का पापन हो रहा है। गार गार्गी अनुक संस्कृति के नाम पर अधम आचरण कर उगा है।

संस्कृति या तो धरत है और हममें से कोई उसके अधिकार सच नष्ट सकता। क्या यह सच नहीं है कि हम इन्तान ह और जानवर नहीं हैं? तब, जो हमें नीचे पणुता में गिरने से रोकती है और मानवता में ऊपर उठाती है, वही मानव-संस्कृति हानी चाहिए। उससे अन्यथा जा हा, उसे विकार मान लेना चाहिए।

अब इस धरती पर मुट्टीभर लोग ता नहीं बस ह। व धरोहर-पर कराड ह और दूर-दूर दशों में फैले हुए ह। उनमें कई भाषाएँ ह और रहन रहन के ढंग भी अलग ह। पर उा समी के लिए जरूरी रहा ह कि ये एक-दूसरे के सहयोग में आय, हिल-मिलकर फनप और इग हेल-मेल और सहयोग-सहानुभूति का गिनार परत छाये। भाषा और नीति-नीति की गिनता इस विश्वास में यों साधन जान पत्ती है। पर सचा सकस्य उमे भी साधन बना लेता है। कारण, भेन में यह अमेन गन पाता है आर इस तरह भेन के प्रति भी आदर और प्रीति रखता है। न तोड़ता नहीं, समन्वय और सामजस्य साधता है। गिनता का देखत हम कह सकने ह कि अमुक मानव-समुदाय की यह विशिष्ट संस्कृति है। पर स्पष्ट है कि अमुक संस्कृति की यह विशिष्टता रूप, यनाव आर परिस्थिति के तल तल ही है। अन्दर से स्वकी साधकता एक ही है, यानी आपसी सहयोग का उत्तरात्तर व्यापक आर फनिष्ट बनाते जाता। पहरान का भेद मन्थ मन में भेन नहीं टाल सकता। लेकिन यगा भेद पत्ता हा तो यही कहना होगा कि उसमें मन का अम्वारण्य कारण ह आर मानव प्रकृति पर किमी विवृति का आरोप आर प्रनाप हा गया है। तब म्वारण्य गन के लिए उन राग का निवारण जरूरी हा जाता है।

सहयोग की अनियायता लकर हम आदमी पैदा हाने ह। एकाकी को न नष्ट करता। इकल होकर मरा ही जाता है। पीना ता संग-साथ ही हा करता ह। पर जब यह अनियायता हमारे अन्दर है, तब उगनी रागन आर लकासा लत्व भी हमार अन्दर ह। इस तरह जीवन सरल नहीं, काफी गनना हुआ तब है आर संस्कृति का विकास अनियाय हास भी मदज-साध्य

नशा, अत्यन्त प्रबल-साध्य ही होता है। हम मनुष्य में पशुता के तब भी " और ये नाच गीचत है। व हमें एक-दूसरे की स्पष्टता और शान में लात है। उनके वश हाकर हम रैर विराध टानत है। उन्हीके तार दूसरे का हान ग्वकर अपने का उरत, उसका अपमानित कर अपन का सम्मानत जग सको नग कर अपन का पुग करन की चग दीग पती है।

समाज न्यक उन शाना प्रकार का वृत्तियों के तान-दान में मिला जुलकर बनता है। अहसास और तर्ह-तरह की लिप्सा जाकाजग का वश हाकर जा हम नाना तपास करत है, यता काज और न मानुभूति और विवर की चतना में ता समा साधत है य घाज ता वज जा सद्धत है। इन्हीं तागा से जल मला समाज का पग जुनता है। धागे बितने धौर होंगे समाज उतना स्वच्छ और अच्छा हांग। उनम चितनी कालिमा मिला जायगा, समाज उतना ही मल, जग कटया बनगा।

स्पष्ट है कि समाज की धनावत में चित्ति निमित्त है पर अपना निरुद्धा में नहीं। अपन पारस्परिक सम्बन्ध के द्वारा वह ज्ञानमत्त बनता है। असल में वह समाज-पत्र में तान और दान के जाट में जन गदा हुआ काल यह सिद्ध है चहों हाकर पारस्परिकता के तार जापस में तन छिल्लत-मिलन और पार जग जात है। अत य तार उहाँ उरुक्त भी नकत है। इगलिए प्रमन उतना व्यक्ति का नहीं है चित्ति पर बल या समाज नग है। यह ता व्यक्ति और यात के ग्राच का, उम गीच के सम्बन्ध का है। उम सम्बन्ध के अभाव में चित्ति के अस्तित्व की कयना ही समाज हा जाता है। उन सम्बन्धों की मुटमन में चित्ति मुग्धा हुआ बनता है। उन सम्बन्धों की बनता और पुग्ता व्यक्तित्व का सम्बन्ध और सग बनता है। उम उल्लाप हा, या शान हा ता व्यक्ति भा हान, दुग्ता और दुग्ल हाता है।

इस तरह समाज जग चित्ति का जग में विचार शाना हा सम्भन नहीं है। समाज अरुत्त है, चित्ति है चित्त। इगलिए उम जग का दुन या समझन के लिए चित्त व्यात हा काम पता है। समाज व्यक्ति के बिना एक संशयम रग जाता है। चित्ति का गग रकर चरन न

समान व साथ विसा प्रकार का यन्त्र सन्ध्या स्थापित नहा विषा जा सकता । ऐसी स्थापित फिर भी हाती है, यानी व्यक्ति का बिना ध्यान म लिये समान का मुधार टांगने के प्रयत्न टान लिय जाते हैं । स्पष्ट ही यह जरूरी है कि ऐस प्रयत्न निफल जायें । इस तरह चलने से जान्दोहन अन्त म प्रतिनिर्या उत्पन्न करत ह और मुधार की काशिंग उल्ले विगाड़ उपजा पडती ह ।

व्यक्ति और समाज, हमने देखा, ना नहीं ह । फिर मा दा शब्द ता और स्थिति जनन हत का एकाएक ह्या म नहीं उजाया जा सकता । ता कहिय कि एक ही वास्तविकता का यह तर्क व्यक्ति है, ता उसीना पार का विनारा समाज है । अब हाता यह ह कि उय जीवा की वास्तविकता के इस विनारे मत, महात्मा कवि आर आदर्शवादी जपन तीथ टालकर साधना साधत ह, ता उस पार कामनाजी छाग गकिन आर सन्नीतिक जपने-अपने पक्क गत बांधकर बग जात हैं । श्वर वं जा व्यक्ति की भाषा में पूणता के आदेश का दगते ह आर इतर का भजने ह, उधर व जा गल साधकर ममप्रता का, यानी स्पष्ट का सामने गगनर सप्रयाजा सधर करते हुए सामध्य सम्पादन करना राहत ह । इस तरह एक तर्क आध्यात्मिकता है, निम्न आदमी कयना तक छाड़ बैरता ह दूरी आर पगधरादिता ह, जाँ गगनरकर मी नृणा समात नहा हाती ।

ए सृष्टि की बात करत समय न आध्यात्मिक जाम्ना का, न सामा निर विज्ञाना की पन्ताल जरूरी है । श्वर या उधर रूँत गादरर और बुछ जी मदे, सृष्टि इस तरह नहीं पी सजती । जानों विनारों के बीच, उन गजा का गृही हूद, दानों का समझती हूद, उन दाना तक अपना चेतन्य और परस्पर का धेम पहुँचाती हूद, सृष्टि ऐसे बहती है कि प्रयागनाली का प्रयोजन भा नष्ट ग हा जाग जाम का आगन् भी सधर गतमान र ।

साप है कि इन दा विनार पर बगनगलों का निपट श्रुत, उनरें सैर का नभार आर विप्र गगनर लिय प्राग का काग्य बनता थाया

सरकृति और विकृति

संस्कृति का शब्द बहुत तरफ से उगाया जा रहा है। कुछ लोग उसकी बात मन से भी कहते होंगे पर अधिक, जान पन्दा है, मुँह से कहते हैं। मुँह से कहने का मतलब यह नहीं कि किसी तरह का मायाचार करत है। मतलब यही कि गहर में से मानत है कि संस्कृति याद की बात है, पहली नहीं है उपर की चीज है, मूल की नहीं है। यह बहुत कुछ अतिरिक्त वस्तु है, जैसे मूलधन का व्याज। इसलिए जरूरत का नहीं जितनी शाभा की वस्तु है। पिलाए का धु जय म न , ता न विष्णु अधिक है, आवश्यकता कम।

इस मन्तव्य के लाग अधिकतर मानव जाति के जिम्मेदार पावन-कार व्यवस्थापक बग के हैं। उन पर दायित्व का भाग है और वे प्रत्येक कृतव्यय में इटकर पराश्रु कल्पना में भटक नहीं सकते हैं। वे प्रकट दास्त हैं कि पहली आवश्यकता रहने-माने-पहनने की है। उसमें बात आवश्यकता अच्छे खाने, अच्छे रहने और अच्छा पहनने की है। बात सिर्फ खाने में आगे बढ़कर बढ़िया रहने की हो जाती है तथा यह संस्कृति कहलाता है। इसलिए संस्कृति का मान है 'जीवन स्तर'। एक गाँवप्या मासिक खर्च में रहता है, ठमुर का पाँच सो लगत है नामने का हजार अपमान होते हैं। इन तीनों में संस्कारिता की प्रमाण उत्तरात्तर तरतमता दोगी जा सकती है। इस तरह संस्कृति के प्रान का निर्माण है चला-पला उला-पन आर यथा-व्यथा उपाजन। अधिक मुग्धिया, यथात् अधिक सम्पत्ता।

वे दायित्वगीर जन, जो मुग्धिया में रहते हमने मुग्धिया उपाजन में भी रहते हैं, मानते हैं कि सम्पत्ता का रूप संस्कृति में पन्ना नौतिक है।

सगुणों का आवश्यक पदार्थ चाहिए, इसलिए उसका पत्रात उत्पादन और समीचीन वितरण चाहिए। उसके लिए फिर उचित ढंग से और पत्रा तत्र चाहिए। इस सबके लिए वस्त्र जगत् संघ बनाना होगा है। जीविका सदन नहीं है प्रकृति के धार परिस्थिति के साथ वह एक युद्ध है। जीविका के लिए नृपना पत्रा है। इसलिए प्रश्न मूल्य आयिक है, गानी जीवन-मान आयिक है और मनुष्य आयिक प्राणी है।

ये लोग संस्कृति के निम्नस्तर पर एक समयक धार अभिमाना है। जानते हैं कि अधिक रचना में सहा संस्कृति का उद्गम हो सकता है। इसलिए बात चाहे संस्कृति की कर काम अथ का फल है। भरा मानना है कि वे भूलते हैं। समन्या रहने-मान पहनने का नहीं है, इन्सान के लिए वह इन्सान हान की है। जानकर रहता जा सकता है। गाली भी कुछ न-कुठ पहनता है। जा वस्त्र नहीं जानते उच्च प्रकृति छाल-गाल-गाल पहनाता है। गदना-गाना हमारे हान का गुत है। समन्या वह नहीं, न धानो चाहिए। अखल में समस्या का उच्च रूप पत्रा है, गानागी है। विन धाने में ही गाभत है कि रहने का रस जाता है और गान का गाया जाता है। समस्या का आरम्भ होता है हमारे इन्सान होने से और हमारे उत्तरात्तर गली और सध इन्सान जनन की ओर उस समस्या का उत्तर जाना है।

भूय का समाधान है ग्या लेना। भूय रगा, गर निरुप, जिम्कार मारा धार खाकर आराम से सा गया। भूय आदमी की समस्या नहीं है मरती, क्योंकि भूय का मीधा सम्बन्ध गान से है। वह सम्बन्ध मनुष्य के लिए उतना मीधा नहीं रह जाता, इसमें कारण उगरी मनुष्यता हो है। बीच में मनुष्यता का हटाकर समस्या की एकत्र समानि हम या जान है। पर वैसा नहीं हो सकता। इन्सान चाहते भी इन्सानित ग्या नहीं सकते। इसलिए प्रश्न भूय नहीं, इन्सानित है।

जा मूल प्रश्न का उत्तर की साथी धारणरता की भाग में ग्यत य प्रश्न का किसी तरह भी सुझा नहीं सकते। कारण, उ उच्च चरित है। विमन अपनी मनुष्यता के उच्च भूय का ग्यत लिना समन जगना

भूख का मित्राया किन्तु अपनी अनिच्छा से नहीं है। उसने घड़ी आपत मोल ले ली। चोगी, टूटी, टूटी धागा-दही करके भूख का सीधा मग जा सकता है, लेकिन समझा समझती नहीं और बनती है।

यह मत कि जादू की शक्ति है, यह है। धर तब फाइ आदमा मने नहा देगा, जा शरीर पर समाप्त हो। जब्त स जघन्य अपराधी भावना से मुक्त नहीं होता। भावना, यानी मन का भूख। तब की भूख ता घाग से भी जादू की शक्ति कर लेगा, लेकिन मन स अपमान उसम नहीं रोग जायगा। उहाँ ऐसे उदाहरण भी है, जहाँ खुशी से लोगों न भूख नहीं है, अपमान नहा मग है। भूख यह गहरी है, यह असली है। यह समझा यहाँ है।

इन्सान का शरीर की भाषा पर उदाहरण उसी समझाओं का निपटारा न्यूनता उदाहरण है। इन्सान को न समझन स ऐसी फाईश का आरम्भ होता है। सहानुभूति का उगम अभाव होता है। इसमें जितनी ही यह चक्षु वैज्ञानिक जाती है, उतनी ही व्यथ होती है।

आश्चर्य कि म उनस सम्मत नहीं हो पाता है, जा मन्त्रि का दूर की, ऊपर की, फाइ भव्य वस्तु मानकर गन्ताप मानत है और उनिवात् म ही उस नहीं जेना चाहत।

मन्त्रि का नीय गहा है, सिन गिगर है एन वात्स्यर है। राज नीति का सस्कृति का भाष्य के रूप म आग रगकर भाषन के रूप म गाय नहीं गवती है, प्रम आर प्रपन्न ही उत्पन्न कर सकती है।

मन्त्रि एक दक्षान है, धन शक्ति, विचार शक्ति इम नहीं बनता जानकर अथ होता है कि विद्विती का हम स्वीकार करत है।

या ता विद्विपुत्रक संस्कार की जोर हम बढ़त है, तहाँ ता रगपुत्र विचार की आग दृष्ट है। फाइ गति म जगत म नहीं है। चदम नहीं, ता गिरना हमारे लिए लाजमी है। उन्नति का अभाव अवर्ती है। जानन गतन गतिनी है। मन्त्रि की आर है, व प्रगति

अन्यथा अनाति इ, ज्ञा दिनार म स आती आर विद्वति म पदुचाठी है ।

सन्धति, वा विपानो आर विपाना की वस्तु है, अनन्त गारा-रूप है । वहाँ मूलाधिपान पाना कठिन होता है । सुनाये ऐसी विविध सन्धतिना जास म ल-द मचाता रना जाती है । उन हा तबे कि आधो म ग्रावार्णे आपस में उल्लास पत्ती है । आधी म गन का अभिन्न समझ ल, ता गाराआ क लिए यह कठिन नहीं है कि अपनी यत्नरती म वृत्त क मन् ल-द ने अपन सयक सम्यक का व भूल नाथ, मूल चाह जायें, पर उनकी शिवि का आधार बही है । उम आधार न ही कही न टूटी, ता तगग मूल पर यह ना पडना हागा । फिर हरिनाल क यहा म गन आर मूलकर उनके इधन बनने म दर न लगगी ।

सन्धति आर गयी परस्पर विमुक्त तय है । हाल की ही गत है कि यहा दिन-दहा कल हा रहे थ आर शाय माना उपान ग्या रहा था । एक ओर न 'अला हा-अकर' का नारा गता था ता दूसरी तरफ न 'हर-हर महात्म' का गिनाना । यह परात्म पुन्य का पुण्याय न था, म्भकी दिग्भना था । दाना तरफ म्भम ग्या था । 'अला हा-अकर' और 'हर-हर महात्म' पवित्र-से-पवित्र उच्चार है लकिन गयी पर चक्कर एक शैतानी तमाग क सिवा थ कुठ नहीं रा जात । नय थ दन्तानिदत क गिनाये का धारणा हा जात है ।

'अरनी' सन्धति का गय—यह मात्र हा मिष्या है । इसम पद्यी सन्धति की अवगण समायी ही है । वहाँ अपनी परायी संज्ञाओं क प्रयोग म यह अधिमान एव अग्रमान का मात्र आ जाता है, वहाँ स्व-पर की माया आर न्य पर का वाष भ्रान्त मानना चाहिए । यह जात्म-नाथ में साधक नहीं, बधक दानाग्य है । अनेक का नूमि पर भेद स्वय स्वीकरणाय आर गारग्योत्र बनता है । लकिन भेद का मूल क अभद का सान चर निरा नृपता है । इस न गयी थ उपहान्य ब-तु दूसरी नग आर पारत व है, वा आपन रा सय से अल्पमन् गिनता है । जत सन्धति का गय है दिनार, भक्ति ।

हम अहन्ता एकर जीत है। जो हमका एक आर इन्द्रा रसता है, यह हमारी अहन्ता ही है। किन्तु उम अहन्ता का यत्तित्व गिनना नूल् होगी। अहन्ता यद्यपि होने की भूमि है, पर वही हाने की व्याधि भी है। इसी से बार-बार हाना, निम धार्मिक मय-थाया या आवागमन कहते हैं, कुछ उपादेय नहीं समाप्ता जाता है। मुक्ति इस होने, यानी होते रहने म मुक्ति है। आवागमन से निकलकर फिर क्या होगा। यह प्रश्न प्रस्तुत नए है। सार बस इतने म ही है कि स्वयं होकर हान म सुख नहीं है, पूणता नहा है, प्रत्युत निरन्तर घघ का गाय है। जधान अन्माय शाय हम जीत है, तो भी उसम अधिकाधिक छूटते जाना उत्तरात्तर सच्चा जीते जाना है। अपने को याद रखे रहना सबसे बडा दु ख है, भूल जाना सुख। जो जितना ही कम 'अस्मित्व' है, वह उतना ही महान 'अस्मित्व' है। यत्तित्व (या अस्तित्व) सम्पादन के लिए 'अस्मित्व' का उपग्रह नहीं, उत्सग चाहिए। इसी से दएत है कि जो आगे उग्रर मरता है, उ अमर बनता है। यानी जीने की फला, उसकी कुञ्जी मरने की शिपा और साधना म है। उत गत का समाप्त ता नम सम्मृति का गार मिल जाता है।

हम अपने का जगत् का केंद्र मानकर जीत है, यह है विवृति।

हम जगत् में हून्य भाव म निय, यह होगी संसृति।

अहन्ता म गून्यता की आर जाना निवार से सम्भार का आर उठना है।

उपर की बात का तात्त्विक से पारहारिक बनाकर लिया जाय। उम मानव-सम्बधा पर धटित कर देना जाय, तो जय मर लिए सामने का यत्ति प्रधान और म स्वयं उसकी अने ग म गण घनता है यानी उम आदर देता है, चा उपर से अपमान ही पा रहा है। याम में उसका लाभ प्रथम दएता है और अपन लिए यथासंभव पर मन्ताय करता है उसको सुख दकर अपन दुःख का भूल जाता है। गजम में उग्रर फ-पाण म स्वय काम आता है—ता यह सम्मृति की शिपा की साधना है। उम

तरह की प्रवृत्तियों से समस्याओं का घरातल उठेगा (क्याकि समस्या निपटने के लिए नहीं है, केवल उठते जाने के लिए है) नधन टूटगे और जो विषय मानव-सम्बन्धों को कुण्ठित और कठिन बनाये ग्लता है और मद-मसर, इष्या-खालसा और द्वेष-शुभांश पैदा करके योद्धिक से मारक-दर्शन और वैज्ञानिक से सहारक गच्छात्र का आविष्कार कर पाता है—वह विषय कटेगा। स्नेह की कुण्ठा उमम दूर होगी और सहानुभूति का प्रवृत्त प्रभाव खुलेगा।

दूसरे सिद्धान्त से हम समनसल का अपन स्नेह के वजाय स्वाथ का उपादान बना सकते हैं। तब हम अपने को उसने लिए नहीं, उसे अपने लिए मानेंगे—अथात् उससे अपना प्रयोजन साधन का सदा आर प्रमुख ध्यान रखेंगे। अपने काम को इतना रंगग कि उसको टगने से नहीं छतरायगे। स्वयं उससे अपना मुख्य निकाल लगे, चाहे फिर उसका भाग में दुख ही रहे जाय। अपने सम्मान की भरपूर चिन्ता रखग, फिर चाहे हमसे कितना का भी अपमान हाता रहे। अपने लिए पर गंभीर और हमारे के लिए सिर्फ बोट दूसरे का आशा दग, अपन को प्राप्ति। तो जीवन की यह पद्धति दूसरी दिशा की ओर ले जाती है। मैं मानता हूँ कि इस दिशा की प्रवृत्ति निश्चित रूप से संकट को और विकट करनेवाली है। वह शापण की है, हिंसा की है। अन्तरीकने वाले धाम धाम—उपकार, सुधार, व्यापार, ग्रासन, व्यवस्था, सभा संगठन, समाज-साधना आदि सब तरह के सब काम—ऊपर की दोना प्रवृत्तियों से किये आर चलाये जा सकते हैं। पहली अवस्था में ही ये साधक हा सकते हैं, अन्यथा वे सब बाधक आर बाधनकारक होनेवाले हैं।

संस्कृति का अर्थ बाह्य काम से फार सम्बन्ध नहीं है। काम की भाषा या उस प्रकार की आग्रह आक्रोश विचार का स्थान मानी जा सकती है। काम रचनात्मक है, जो संस्कृति निग्रा, यानी अहिंसक प्रेरणा में सजाता है। काम से संस्कृति या अहिंसा नहीं है। संस्कृति में मे काम का हाता है, अथात्, धमपूर्ण काम।

शब्द आर हा, भाव यही था। अर्थात् जात पाँत के सहार जीवन चर
ता राज और राजनीति का क्या होगा ? सय तीनि-तेरह हा न हा
जायगा ? और, ऐहिक (सेकुलर) स्टे के लिए जो आर्थिक प्रोग्राम
करनेवाली पार्टियाँ हागी, उनको धहाँ मीमा रह जायगा ? यों भारत म
एहिक लोक-राज्य (डेमोक्रेटिक सेकुलर स्टे) फिर धीमे बन पायगा ?
इसमें तो सन्देह नहीं कि साम्प्रदायिकता संकट है। उल्ट ट हान पर उरक
अन्दर धी नफरत बाहर रिवास्वर लेकर बढती है और हत्या को राजनीतिक
प्रगति का साधक उपाय टहराती है। इस तरह रिहा एक पद्धति बनती
है और उसका उपयोग बहादुरी का लक्षण। सम्प्रदाया के पृथग्भाव म
से फिर और छोटे-भाटे बगों धी पृथक्ता निकलती है आर वे म्पदा ध
आधार पर अपने दल गाँधने और नारे उटात ह। या जीवन म्चनु
ठिल भिन्न हो जाता और समाज एक जंगल बन जाता है।

साम्प्रदायिकता की तरफ का सक्त प्रेशक छोटा नहीं ह। किन्तु
शायद वह असली संकट नहीं है। यह ता निगान नहीं है, निगान भर
है। इरालिण आ आन्तरिक है, ता मूलभूत ह, गायन असली है आ सक्त
चितनीय होना चाटिण। पूरे निगान और म्पदा के लिए उसे हा
पाना हागा।

अर्थात् साम्प्रदायिकता की आर म गो जहरीला प्रहार संस्कृति के
प्रतीक गाधीजी की हत्या के रूप म हुआ, संस्कृति की रटि ने ब संकट
हा सकता है। पर संस्कृति की आर म परीभा इम है कि उस प्रहार
का उत्तर कैसे दिया जाता है। मरे अपने संस्कृति का प्रान नीक मी
जगह विचारणीय है।

संगठित धम, यानी सम्प्रदाय। उरक मुफार संगठित राजनीति
यानी पार्टी अथवा दल। नैमे सम्प्रदाय धम दल भी ऊपर प्रहार द्वारा
अपनी इच्छा का सुधार या परिवर्तन लान म मिश्रास कर सने ह।
प्रान है कि क्या एक का प्रहार संस्कृति पर संकट, ता प्रयुक्त में दूग

ऊपर का बात मैदान्तिक और व्यवहार से अछूती लग सकती है, लेकिन संस्कृति के संकट का यदि प्रश्न है या वह नितान्त विचारणीय है। लेकिन वही एक बात विचारणीय है।

दल धार्मिक मतवादों को ऊपर उठाकर जुट सकते हैं, जैसे भारत में हुआ है। इसी धमवाद के आधार पर यहाँ विभाजन हुआ और पाकिस्तान बन गया। गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने सदा एकराष्ट्र का सिद्धान्त माना था, लेकिन नीचे व्यवहार दुःख की भावना लेकर चला, आर शीमेँ दादा तो हुक्मत दी यनी ही। सदिया से हिन्दुस्तान में बसनेवाले यह लोग वीच एकट्ठापन उदता चला आ रहा था, जो अनिवार्य ही था, कि अंग्रेजों के आने से यह काम रुक गया। अंग्रेज उनके बीच मुखिया बनकर आँधी और हिन्दू-मुसलमान की गैरियत जो बराबर कम होत जाने को लक्ष्य की उभ अंग्रेज के सहारे ली ही यनी गयी। फिर भी यह परायापन ऊपर था, क्या तक जहाँ तक राजनीति की पहुँच थी। धरती से और मेहनत से गकर रहनसहन औसत इन्सान, हिन्दू या मुसलमान, मिल-जुलकर जाता था। उन लोगों के दरमियान हर तरह का भेद-द्वेष या रिश्ता था। बट-भाट किसी गुद मजदूर से उभ रिश्ते के। यानी तरह-तरह के रिश्ते के, मेल-व्याहार के नाता से सारा हिन्दुस्तान एक तरह की हिन्दुस्तान में मिला जा रहा था। अंग्रेज के जात-जाते हिन्दुस्तान के ऊँड़ जो हुए, तो यह स्थितियों से चली आती हुई बुदरत की वाशिश में गलाफ काम था। हुक्मत में आगे रियासत में रहनेवालों के दिमाग उभ दुःख के आँगी और हिमायती हा भी गये हा, मुल्क का दिल इतने से तैयार न था। वहाँ से जो गुमनाम और तनाव, मुनीयत आर तपदी या हुद उस फोन नहीं जानता। यह मजदूरि के गिलाफ काम था, संस्कृति निम्न इन्सानियत दूर नहीं सकती जाग जिसकी टेक पर नव-व्यक्ति का चलना होगा। उस बसाटी पर रियासतें आर हुक्मत ही जायँगी आर फँक दा जायँगी। उरी इतिहास के लिए कौड़ी यनेगी आर नव राजनीति का पैगला बरेगी। हिन्दुस्तान में भ्रम के आधार

अन्दर लकर चलनवाली भारतीय सस्कृति गाधीजी के हाथ पूरी तरह मान्य और प्रतिष्ठित हुई। कारण, उन्होंने घर की राजनीति के बीच निर्देश की धम-नीति को प्रतिष्ठित किया।

क्या हम मान कि हिंसा जीती, गाधीजी हारे। गाधीजी की मनु-संगता बिलकुल है। यह मृत्यु उनके लिए अमरता की मुहर मनी है। आर-गमस बड़ी पराजय हिंसा के लिए दूसरी हा नहीं सकती।

ता सस्कृति का उगार इस जगह है कि हम पृणा का, द्रप का कैम-जीत ? अपने स राहर के द्वेष और पृणा को अपने अन्दर की निर्देशता स-पराय देनेलायक हम नहीं हैं, और एक तरह के घर से ही उसे काग्न-चलने है, ता यह सम्भारिता की हार और विचार आर संहार को जीत है।

सचमुच गाधीजी के बाद भारत कसौटी पर है। उनको उत्तराधिपति-आर उनके नाम स स्मृति आर सहारा देनेवाली राजनीतिक पार्टियाँ मान-ले कि उनकी परीक्षा है। गाधीजी की श्रेष्ठ की कि हुजूमत चाहे दा हो गयी-गा, हिन्दुमान के दिल स नहीं हो गये है। कांग्रेस के द्वारा सस्कृति की-मजा या रक्षा होनी है, तो उसको बह धनना होगा जो हिन्दुमान के समूह-सयुक्त हृदय की प्रतिध्वनि है। उसमें घर के लिए समाह है। अहकार स-अपने को इतना मही माननवा-है हा सकत है कि जिन्हें सत्ता हथियाना-अतना जरूरी भावूम हो कि अपनी राह के विघ्न का हिंसा स दूर करना-य पुण्यक्रम गिनें। उनका इलाज हुजूमत जा-ना-है कर। या हर मत और-हर व्यक्ति का हान का और अपना मान रगने या अधिचार है आर-हर संस्था अपने त-त्र में स्वाधीन है। इस तरह उभाजेमी का अपना सार-हमना के लिए अधिका को जान आर मान लेना है।

विन्तु अयहार की राजनीति का त-र अपना है। यह शक्ति का त-र-है। विचार और शक्ति तात्कालिक शक्ति की अपेक्षा स ही यहाँ विचार-णाय धनत है। यह श्लेषक प्रवृत्ति है। दंगों स का अपना शिष्य-निगमगी आर उनके बीच जय-भराजय की युक्तियाँ रंगना। अमुक-दुष्मना उगार-ले लिए अमुक धम या त-र का मिशन का अगल ही दन-

एक दासगी । यह पानशासिक राजनीति, पावर-पॉलिटिक्स पहले तो भारत का ही मूल नहीं साध सकती, फिर हिन्दुमान और पाकिस्तान का मूल, जो कि अमली और दिली समझा है, वह तो उसके गुमान में भी आ नहीं सकता है ।

राजकीय समझा भारत की अलग दल ली जाय, किन्तु सांस्कृतिक समझा उस तरह पाकिस्तान का और फलतः मुस्लिमान को अलग बटा पत्रा मानकर चैन नहीं पा सकती । यहा संस्कृति का निविधिष्ठ आर गमय भाव में लिया है । विधिष्ठ आर सीमित और नामधारी संस्कृति, जो पन्मान से अधिक विद्वान की है, उसकी चन्ना यदा नहीं है ।

गांधीजी न भारत की राष्ट्रीयता का उस धुनियाद पर गया जहा जाति धम आर उण आदि भेग का मध्य नहीं है । यहाँ सब समान है आर सब के लिए समाद है । धम के विविध रूपा अथवा शरीरों की रणा करते हुए उसकी अग्रगता, उसका आत्मा का एकता को टहाने जगाया तार चले चकत गुहार ली

इश्वर अल्लाह नर नाम

हिन्दू-मुस्लिमान की, काफ़िर कम्युनिस्ट की मरा-तेरी यदि यह ल्याद था कि हिन्दुमान (का राज) तरा नहा मरा है, तो गांधी न कहा कि हिन्दुस्तान के मालिक तो वह है जो धरती में परसिना डालत आर वहाँ में सब के लिए धन उगात है । वह धन उत्पादन हा अपना माग मानकर बाकी लू गसोत का काम सचाला के लिए ल्याद दत है । इसलिए हिन्दुस्तान किमी का है तो उसका है जो इन मूक मेहनती जनता का अविश्वन संयक है, जो सब सेवा माना प्रायश्चित्त की भावना से करता है । इसी तरह धम के मामल में इश्वर आर अल्लाह का एक पुकार में मिला कर उन्होंने उता दिया कि भगवान् पिशा का नहीं है सनका है । आर जो अपनी सुरगानी लता है उस पाता है ।

धर्म में संस्कृति का संकट किसा दल अथवा मत में नहीं हा सकता, क्याणि का धनु लगत या मतवाली है ही नहीं । चिन्दगी की प्रकृति

आर्थिक याजनाया के अधीन चले, आर्थिक प्रगतिगतक दृष्टिकोण से चले, या फिर फोड़ अपने किसी दूसरे दृष्टि बिन्दु से या दूसरे कार्यक्रम में चलाय—उस समय के सम्बन्ध में मस्कृति का कुछ मतलब नहीं है। जादमी का आदमी पर प्रहार न हो, दया न हो, असम्मान न हो बल्कि हर दो के बीच सहानुभूति, सम्मान और सहयोग का सम्बन्ध हो हर एक पड़ोसी भाइयारा सबेरे अथ-सम्बन्ध सहकार के आधार पर हो, समाज स्वच्छित सहयोग पर बने और व्यक्तिगत की निजता का अवसर आना जाना हो—ये मस्कृति की आवश्यकताएँ जार लागू ह। ये सब हर एक की निजता अलग और अनोखी होने के कारण सम्भव हैं होंगी और संभव होंगे, लेकिन यदि उन संघर्षों में भी सम्मान रह सके तो जिन्दगी को और मर्यादा, विविध और सुन्दर बनाने वाले ये होंगे। इस तरह मत भेद रही पवित्र और मूल्यवान बस्तु होगी, क्योंकि यह अपनी-अपनी इमानदारी की पहचान होगी। हर एक का व्यक्तित्व अपने में पुष्ट और इस लिए किसी कतर दूसरे से भिन्न होगा, तभी परस्पर सम्बन्ध और सहकार कीमती भी हो सकेगा। जार तभी सम्मान ही केवल सम्बन्ध की और दोष की, भीड़ की चीज न रहेगी, बल्कि यह होगी जो रुढ़ि होनी चाहिए। यानी प्रत्येक की स्वाधीन चेतना का यह धर्म होगी जार उमरी आयात मुक्त प्रत्येक की यानी मस्कृति मानवता की होगी।



लोकन म जानता हूँ कि प्रश्न व्यक्तिगत नहीं है, पारिवारिक भी नहीं है। इस पद्धति से अपना-अपना होकर वा प्रश्न निगम जाता है और गायक उस गैंगीला भी बह उठना नहीं रहता। पर नहीं, प्रश्न का वह रूप निर्व्यक्तिक नहीं है। निर्व्यक्तिक हो वैशानिक होता है। अतः माना जाता है वह है जो निर्व्यक्तिक है, सामानिक है सामाजिक है। इस लिए वह राजनीतिक और तात्विक है।

निस्यदेह दिमाग पर नहीं तक जान म जोर पड़ता है नहीं रागी का माना उस कदम क्रतिकारी है कि मूल रोगी का धारणा उससे नहीं रहता, गालिस माना ही माना म जाता है। तब पता है गी म व मस्त्वृण है।

उस रागी को जानना जानना है जा गहूँ से पनती है, यनाम म जिनसे तरह-तरह की मेहनत लगती है और जा भूय भरती है। पर वह रागी, जिसका सम्बन्ध न तो गहूँ से है, न भ्रम से है, बल्कि सीधा सम्बन्ध क्रांति से और माने से है, इतनी गहन और सूक्ष्म हो जाती है कि उस सुत्री में लेना और पेश म डालना सम्भव नहीं हो पाता। वह दिमाग की चीज मानस होती है। अगर वह किसी की भूय भिगती या बढ़ाती है तो गायक दिमाग-माल के दिमाग की ही।

रागी का मोचा इस तरह उनका नया भावम होता जा पड़ के भूय है, वह मनका है जा भूय दिमाग के है। वह माना दिमागिया का है।

एक मन्दिर के तार पर कस्मर दगते है कि भुवमरों की पाँत लगा है। भूय का पाँत म लगा छागी बात नहीं है। उनका लिए मीन और धुन हा प्रकृत है। लभित यह लाला जा गिनती की रागी लत है और गिन गिनकर ही उठे म समत है, हा-दला फलन्द नहा फरत, वरतीर फमल करत है। इसलिए एक का एष ही रागी मिले, यह मुर्मीज अपनी ओर से लालाची का मन के लिए भुवमरा न पाँत यौधना छीत लिया है। तब तब पति है तब तक गायक माने का पूरा मजा हमका उग हार म नहीं गीयगा। पर खुश पाँत दृष्ट जाती है और छीन-शाप न

असम्भन काय नहा है। यह पढ़ति सं एव दिन धनिक न सिर पर प्रभु
 धनकर बैठने की तरकीब निकल आ सकती है। बौद्धिक मनकर, मुडि
 पनाकर वह इतना भी नहीं कर सका, वो उठते और क्या थाशा की आ
 मण्ती है ! नहीं, वह प्रचार करेगा, संगठन करेगा और भाति करके हा
 छोड़ेगा—भाति कि जिसमें आज का नडा आत्मी पामान् लीगगा आर
 जनता के भूप के मोचें पर भाग लेकर, घोष दकर, उँचा उठनेवाला
 नायक बहाल होगा। धमिक की आर मे उठकी सहानुभूति में बौद्धिक
 बग को ही तो नवे राज्य का अधिनायकत्व समहालना होगा। इउर
 लिण सुद रोटी से ज्याद राटी के माचें पर ऑर रगनी होगी।

मैं मानता हूँ कि रोटी के मोचें पर मसृति नहीं चाहिए, ससृति का
 गीत नहीं चाहिए। भरे विचार में वहाँ राटी आर रोटी का धम भी
 उतना नहीं चाहिए। वहाँ भाचा चाहिए, गीत भी माचें का ही चाहिए
 और माचें को चेताने के लिए रोटी में ज्या उठका अमात्र चाहिए। बघा
 लीखी आर बाकी राजनीति चाहिए। राटी के लिए प्लान बन सकते न
 स्कीमें बन सकती हैं लम्बे बन सकते हैं आर भाच-कृम के नक़ बन
 सकते हैं। क्याकि इन मन्नी मोचें में गगति है और म्भन रोटी में
 गगति नहीं है।

राटी के मोचें मुझे इउ सरा न ही लिगाइ मत ह। पर पर जा उम
 क लिए मेनत हा रगी है, नाच उगाया जा रहा है, चरी पीसा जा रही
 है, बह ता टडे धम की बात है। इसलिये वह ता मोचें के नाम पर उतनी
 विचारणीय नहीं है। उसके लिए विचार में अधिक लगा और बात में
 अधिक काम चाहिए। उसके लिए राज की बात करने और राज की चा
 करने में अधिक स्वयं काम में काम चला लेने और अधिक-से-अधिक
 उखान की दरकार होगी। इसमें उसमें मोचा काम बनेगा, काम
 अधिक बन चलेगा। अत उसकी बात शृषा है। माचें धमल में दा ट
 (१) जिल पर उपकारी है, (२) जिसे उपर जातिकारी है।

१ उपकारी रोटी का माल होगा या पाता न। न वह भी



जलम हा चाव है। उसको सहन माय स रोटी मिलत जान स ह त्वाद पूरा नहा हो पाता, इसके लिए मोचा बनाना जरूरी होता है। जिसना कहते हैं राष्ट्रीयकरण, सरकारीकरण, घट बहुत कुछ यही माचा-रन्दी है। दस हजार मिल मजदूर एक मिल मालिक स अपनी रोटी पाते हैं। पाँच लाख कलम के मजदूर कलक एक सरकार से रोजी पाते ह। लाख-करोडों प्रजाजन शासनासन पर बैठे राजन्य जनों की कृपा स सँस लेते और पैस पालते हैं। इस अधिकार-भोग का मुभीता मोचा गढा किये बिना फस घन सज्जता है। इससे 'ऐ नागरिको ! पागो अनुशासन म पाँत बनाकर बैठो। नम्वर आये तय अपना नाम बालना आर घोट दना। उसके बाद तुम्हारी तरफ से हम जायगे और सब रोटी जहा जमा ह, वहाँ स लेकर बराबर-बराबर तुम म घोट दगे। जानते हा नम क्यों भूय हा ! क्योंकि जवल तो एक रोटिया का दर नहीं है। कुछ अपने चौकी चलते हैं। रोटी, जो किसी की निजी सम्पत्ति है, घड़ी ता मुसीबत है। तुम हम मौवा दो कि छीनकर पहले सनकी रोटियों का एक बड़ा तर लगा द, फिर देखना कि हम सबको पूरी तरह पेटभर कर दते ह कि नहीं। पर सावधान ! हम ही ह जो तुम्हारा पेट भरेंगे। उस अधिनाग की तरह कहीं भूयों को पहुँचने लिया ता गजब ही हा जायगा।"

यह राटी का दुसरा माचा उद्यम हाय नहीं है जिसके हाय म पकी पकाह रागी है। यह उनके पास है जिनके हाय साली हैं, इससे जिनके पास रोटी के बराबर वायद और नकद ह। वायद छात्र दान की बजह नहीं है, इससे माचा मी बडा है। धन की बृत हो खपती ह, आशाएँ अनृत ह। इसलिए आशाओं पर भूय का और भूयों का पालनवालों का रोटी का यह माचा सचमुच ही उपकारिया स माचें स बहुत गरम और ताकतवर होता है।

इन दोनों से बाहर तीसरा माचें की मुसा गहर नहीं है। तीसरे जन वायद य ह जिहें रोटी के लिए सहयोग आर धम करना पता है। उससे इसलिए कि बोलाटल म भूय और भूयों के नाम पर पेटभरें के का दा

ज्ञानि और युद्ध

दुनिया एक युद्ध में झुंझट से पाए हुए है कि दूसरे एक पर जा मैंगया है। इससे दुनिया की आद का समन्या है गान्धि। जगह गान्धि के लिए समाए हा रहा है। उन लोगों की तरह व ल साचन है, और उनका तरह से भी वा करत है। एसा मान्य होता है कि मनी चाहत गान्धि हैं पर पात है कि जाने अनजान, अनम म वा अने सावन्त न युद्ध में पर चउ वा रह है।

निचर ही काद युद्ध नहीं चाहता। युद्ध हाग दा गज्जल का वेगय में छोने पर उनकी विमन्तरा मद्रा पूरे पर गलत। लखनवा गनों दल जाप-अग्ने का गान्धियाला कतर्ने। अर उन्हें मृत म नग मनना हवा। कारण, लडाक सचनुचलोंने चार्गी नग है, विर मनीगी है। इस बात छ समन्य मद्रे ता समन्या पकड़में वा लपर। ल लखने के, व लखना (गुन करना) नहीं चाहत। लेकिन उनमें हरएक मनता है कि मूय्य हन्ता क ता चवाव में लखन के सिवाय जाय नहीं रहता। मरना दर घन नहीं है वो घन घना है। इसन र्दन पर लव आ नता हा तर बान गवा लना गी घन टह्य। इसतरा मुग्धा में मनु का माग्ना वा अना तरनम उसका वान का म्तरा पैदा कर दना मो आवन्क मन न आता है। हम दर कि लडाक वों वान की अनिवाय गत क म्म में हमार गैव आ जाता है

दल में प्राणी का बान कने चछ्या है' वनों हरएक लखन है कि विमन्ता नन मने-मान अर लैन हा अान का मरे अर वान वान म गवान। इस प्रकार का निवाध लखनवा का नाम है जाली बवन। गदमी मन में म आता है। गान्ध आता मी मनने हा गला है, लेकिन

अपने रहने के ढंग का सम्यक् कहता है। जानवर का जगली और अपने का सामाजिक बताता है। लेकिन अगर जीने का तरीका उसका यही है कि जा हो हथियाये और जैसे बने अपने को बचाये, तो उसको जानवर से कुछ दूसरा कैसे कहना होगा ?

यन्त्र पशुओं की लड़ाइयों ने देती है, बताते हैं कि अद्भुत होती है। कमाल की पेंतरेजाजी यहाँ दम लीजिये। शेर शेर के पास नहँदार पंजे हैं, तो सूअर के पास तींगे दाँत। इस तरह अलग-अलग श्रमियाँ ब हथियारों से मुकाबल में वह चाट चली हैं कि सौन्दर्य का विलक्षण चमत्कार उपस्थित होता है। बड़ खोगा के रैक्कगानों में इसी से विलास की नहीं, ता अधिकांश वैसी ही तस्वीरें आप का मिलगी। इस तरह युद्ध प्राणियों का सबसे प्रिय खेल रहा है। उसमें श्रावण के तल कला-शील और ज्ञान विज्ञान वेग से गिर उमरे हैं। जीवन माना उस समय रस से आ भरता है। नसें परफरा उठती हैं और मन उमग की पेंग ल उछलता है। जिन्दगी सूखी नहीं रह जाती, जैसे सार से भर आती है। मारने के उछाह में आदमी अपनी जान दहेली पर ले खुल मौत में रू चलता है। प्राण त्रेन की कोशिश में प्राण पर खेल जाना उसे जसल जीना लगता है।

युद्ध से यह सब होता है। इससे युद्ध का छाटना सहसा उसमें बश की गत नहीं है। इतना उत्कृष्ट रस वह दूरी किस चीज से पा सकता है ? इसलिए जान पता है कि हम याद-बहुत जा शान्ति काल में रहते हैं, जो इस ढंग से कि उसमें फल में युद्ध जल्दी अनिवाय हा आये। युद्ध माना घटना नहीं है, वह क्षण है। हमारी जावन विधि का यह फलित फल है, माना यह हमारी सिद्धि है। इसलिए शान्ति के सगल का इस रूप में दग्गना ठीक न होगा कि युद्ध में कैसे बचा जाय। युद्ध द्वारा आगिर जुठ ता हम चाहत हैं। हम आग का एकत्रम शून्य नहीं किया जा सकता। कसल अभाव ता विक्रता नहीं। इससे अभावात्मक हाकर शान्ति कभी आनेवाली नहीं है। त्रेनी ता यत्र का शान्ति है। उसमें लिए चैतन्य का ग्रावर जल बाना घम हा जायगा। यह निष्क्रियता गहरी लीयेगी। वह शान्ति माना माँगेगी

कि हम अज्ञान का हन्त्र कर, नाना निपेसों से प्राण प्रवाह का बकड़ बन ।
 यह निरन्तरता का जगह स्थिरता चाहेगी धार गति-भात्र कम-भात्र एक
 स्थिर भाति के कारण होंगे ।

आज-काल से ज्ञानि के लोचन मन्त्र हम का मिला जा रहा है । हम न
 मठलव विश्व के सम्राटों का । अज्ञान भारत का ल, ता-है शत्रु और भा
 मन्त्र है । लेकिन उन महामाओं ने अपना वा ज्ञान्त और मुक्ति माधी, ता
 क्या वह अज्ञान मन्त्र नस्तु था ? क्या समान में व्याप्त युद्ध ने प्राण उसने
 हृदान् विमुक्तता न थी ! या समाज-मान्य युद्ध-नेता का महारा भी न था ?
 युद्ध-जला राजद्वयों के प्रथम मरहट्टर क्या उन्होंने अपनी ज्ञान्त का युद्ध का
 एक तरह प्रार्थी और श्रमार्थी ही नहीं प्रमाणित किया ? किन्तु अज्ञान
 भारत में हम ज्ञान्त है कि क्षयि-ज्ञानता और मन्त्र-तर्पन्वियों की लम्बा
 परम्परा का प्रयोग करनेवाला महापुण्य हुए राम और कृष्ण विन्दान युद्ध
 लिया था नहीं, युद्ध किया । क्रिया और वर काय । राम और कृष्ण क्या
 राजा और यादा नहीं थे ? और पश्चिम के मया-रक्षा का क्या शक्ति-मूर्ती
 बना करती हुआ होगा कि वे नितान्त पर पदान्त ज्ञान्त-साधना में रहे ?
 शोका निश्चय ही उल्टा लगगा, जो चुप जा रहे निश्चय न हागा, वर
 प्रयत्न और पराक्रमी शत्रु । यादा उस हाना ही चाहिए । मुहम्मद नहव
 जिनका धन ही ज्ञान्ति कहलया, क्या लंकाओं के लडन मठनक आराम
 पा सके ? शक्ति-ज्ञान्ति का ज्ञान्त साधन चाय है, ता मन्त्र कारण नह
 कि युद्ध में बचना है ! स्वानवाली ज्ञान्ति तात्कालिक मन्त्र म कायर का
 और अन्तिम मन्त्र म ज्ञान्त का है । वह विचार का वस्तु ही नहीं । धर
 गिरमी बौध्दक मन्त्रवाला हर आत्मा देखी मुग्य ज्ञान्ति का मन्त्र अज्ञान
 यही मन्त्राता और ज्ञान्त भाग का प्रतिष्ठित करती है । इस ज्ञान्ति-भाग और
 ज्ञान्तों मुराक के लिए जान फिर क्या जुट नहीं हो सकता । मात्र पथर के
 किले का लक्ष्मी-चांगे प्राचीर क्या हकीकत नग जगवा जाती कि अज्ञान
 मन्त्रों की ज्ञान्ति अनुष्ठा रहे ? युद्ध इसा मुग्य ज्ञान्ति में म हात है ।

हम मन्त्र उन अज्ञान मुग्य ज्ञान्ति का पक्षी शीतारों से आर पक्षे शिवा

म घेरकर एसा मुरझित बना लेना चाहत है कि फादर उस पर न क्षण सके न कोद शासक जा सके। इसी का करिष्मा है कि सब वहाँ हाय हाय और नाच-ग्यसाट मची हुई है। यही चाह समूह के नाम पर संगठित होकर खुल रहती है, तां युद्ध का रग भर जाती है। अपनी छोटी-मोटी शान्तिया की चिन्ता और रक्षा ही यह मारुत है, जो इफट्टी हाकर और चिनगारी पाकर आसमान का अपने स्फाट से रगाग और लाल घर उठती है। तब मूरुरतियों लिखती है कि जिनका लेकर इतिहास के बरु जगमग हो रहत है। यानी युद्ध से विमुक्त हाकर अपनायी जानेवाली शान्ति खुल उस युद्ध के लिए ईंधन है। हम नहीं लड़त, यह कहन से लड़ाई कम नहीं होती, मिक हम कम होते है और हमारी लड़ाई का थोडा दूसरा के कंधों पर जाकर स्थायी और पफा ही बनता है। ऐसे तनगानार सिपाही पैदा होता है जिसका पेशा लड़ना बनता है। जोर युद्ध सबसे ऐश्वर्याली उगाग और ग्यवसाय बनता है। फिर आधुनिक संनापति कभी लड़त मुना गया है ? वह उठे गान्त रहता है, जवकि सिपाही उसी की लड़ाई लडात है। मन्कि और पाछे जाइय, ता घर में बंग या सभा म बालता युद्ध-सचिव और भी व आराम और गान्त है। इसका मतलब है कि लड़ाई उतकी रचना दे, इसी से उसका लड़ना हमसे पर है। पेशेवर सिपाही क्या लड़त है ? क्योंकि एवन म मिलनगाल नतन भक्त से अपने चांभेवन म के कुछ घर-बारी मुर-शान्ति अपने लिए पुता पान की आशा रखत है। हम मरकी अपनी अपनी शान्तिया की चिन्ता ही युद्ध की गामभी और अवसर बनती है।

इसलिए प्रथम पर ऐसे विचार करना यकार हो जाता है जैसे युद्ध का अमान शान्ति हो या दोना परस्पर विरोधी हों। एमे एबान्ती और सिद्धान्ता विचार से मुनिया युद्ध के लिए खुला रहत हो रहती है, जियमे सिफ शान्तिवाणी विनारा र्वाचन की अपने लिए खुशी पा जात है। तबिन य दोनों मुरत सही चिन्दगी की नहीं है। शान्ति मन्कि इष्ट है, ता मरकी और मरके बीच हाकर इष्ट है। अन्यथा यह छुटना है। इगुय प्रान यह हाता है कि हम जो मारकाट के गमिय पाना और रचना गान्त हैं, स्वा उग

है, जो अपने चारों ओर पदाथ जोड़ता और उमरा जाग म मना गति से और नियति से बचने की युक्ति में अनुर स्वाय का स्थापना करता है। काल-गति दाहवी ध्वंशकारी है उसकी छाती पर से जय चली है, ता उसे लगता है, जैसे शान्ति का आर धम का अपलाप हो रहा है। पर यह अप्रतीति है। कारण, शान्ति का धम दिना के जधम से माचा होता हुआ ही चलने का वाच्य है। उससे किनाय बाट चलनेवाली शान्ति क्योंकि प्रवचना है, इससे यशारम्भ से सत्रम पहल वनी म्याहा जानी है।

गायद ऊपर स्तरनाक माया जा गयी। पर स्तरं से उचकर सत्य का तप्य चलना कैसे होगा? शान्ति के लिए नहीं 'शान्ति के द्वारा' हम जाना है। गाय्य को साधन से गमित और तलम रहता होगा। फिर उस सत्त्व का आदमी सुराज कमी यावेगा हा नहा। उगे मृत्यु से बचना नहा है। उगे किमी से, कुछ से उचना नहा है। हम मरने काकार जाना है। उगे मवात्म्य से तादात्म्य पाना है। इसलिए नहा युद्ध है, वहा भी बह है, यद्यपि अदिसक होकर है। युद्ध से अल्ला शान्तवाली शान्ति हिना के लिए जर कि इधन है, तब युद्ध के गमय गहनवाली अदिसक कमपसमण शान्ति उस हिना के लिए मयाज खलजार है। परता शान्ति से बचन का प्रान स्वय युद्ध के लिए उपस्थित हाता है युद्ध से बचन का प्रान उगे शान्ति के लिए नहीं उगता। यही नहीं, यदि शान्ति का ता स्वतः प्रान है कि युद्ध क्यों है, कि जहा हा वहा वं पहुँच आर फरे—'जा', तुम जाना हा, तुम्हारी वीरता किन फायरता है। तुम्हारे शत्रुओं का भा मृग किस हा उगता है? यदि उस कारण तुम पर दया होती है। तुम दर महार शवार है, तो म्ने, यह म हूँ। मुझ पर प्रहार कर घायद तुम पहचानो कि म दुःमन नहा हूँ, यदि यह हूँ, जिगई लिए तुम भटक रहे हा।' ऐसी जा शान्ति है, यह गवार के सवधेष्ठ यादा से अलग वही रह नहा उगती। यह याचना की वस्तु नहीं, साधना की वस्तु है। रनी ग आन की शान्ति याजनाएँ युद्ध-यात्रों की नकोबली का भाग वनी दानी जाती है। योजना में शान्ति नहीं है। कि सामुदाय में आग नहीं है। गुण्ड मकर

ही कोइ धूप द सकता ह और शान्त होकर हा काइ शान्ति रदा सकता है । अयात् जमाव-जुगव स, सख्य-गणना स, तत्र से और यत्र स उसका सम्बन्ध नहीं है । उसका सम्बन्ध आत्मा स और आत्म-सत्कार से है ।

ऊपर तत्व की बात आ गयी । उसे ही स्ववशर म उतारकर दन रना है । उदाहरण क लिए हाल का निव-युद्ध ल । स्र जानल है, उससे पहले की वसाद का सधि के नीच गुद् न्याय नहीं था, शान्ति-न्याय था । गुद् न्याय प्रेम का नियम पालता है । प्रेम का नियम है कि असमय का न्मु-स्रगत की अधिक मुविधा चाहिए । समय छोड सकता है, इस्लिए गतिमान अशक्त को अधिक दगा आर स्वय कम लेने का तैयार होगा । अन्त में ता उसे निरीह निपट हो रहना है । यह है सिद्धान्त प्रेम का, धर्म का, यज्ञ का, प्रास का । पर वसाद-सर्व न परान्ति जमनी के जग भग का न्याय माना, अपमान का उसका पुरस्कार रनाया । जमनी क्या उम राष्ट्रीय अह-भायना का ही नाम न था, जो अमुक प्रश्र और अमुक संसक लोगों को परस्पर मिलाय आर उगाये रग हुए थी ? उसको कृता धता की ओर न ले जाकर दूसर त्रिशिष्ट राष्ट्रीय अहकारों क पुगाव के आर म ताडन और तिरस्कर धरने की काशिष्ठ क्या माननीय न्याय हा सकती थी ! तो उसका परिणाम ही न्याय कैसे आता ! कुछ ही वर्षों म इट्लर म मूल हारि क्या वह राष्ट्र-चतना, उद्युद्ध आर उद्धत, यूराप क लिए चुनाती नहीं उन उनी ? वसाइ यह समय था कि जग हम राष्ट्रीय अस्मिताओं का विप हर सकन और राष्ट्र भावना का सस्कार द सकन थे । पर अहंकार न अहंकार का चाट नी, ता परिणाम म उल्लुद्ध जहजार का जन्म रना ही था । तिरस्कार म स अहंकार छाड और क्या पलने-माला है ?

वसाइ का उदाहरण फिर दाहराया जा रहा है । एक बार फिर ग्वा की बहुलता और प्रखलता क हाय चय आयी है । तन म स न्याय निणय का अधिकार आया है । जय ग्म्व की है, ता निश्चय न्याय को भी शख में ही दाना होगा । हम ग्ग चुक हैं और आग के लिए भी ध्यान रख कि शान्ति का न्याय क नहीं है जा समाधान ल सकेगा । वह दानरी

न्याय है, यानी वह अन्याय का बीज बाकर अगली पापी ४ नाम युद्ध की फसल वाग्ने का काम दे जाता है। ठीक है, युद्ध को ता हाना हागा। अन्याय मानवता की आत्मा में रिना घडने पै नहीं सकता। उस विचार का पटना जोर मिटना हागा। युद्ध विचार का विसाट है। पर विचार पर और फूट, ता फिर अपन बीज मनुष्यता के अन्तरग म जोर गहर टाल जाय—क्या चिरकाल तक यही होता रहेगा ? क्या संस्कार आगे आकर विकार म माचा न रेगा ? क्या हिंसाओं में ही युद्ध होगा ? क्या एक भी पप कभी मारन से इन्कार करके मरन की प्रतिगालकर आगे न रेगा कि युद्ध की ही अन्त्यष्टि हो ?

एक आदमी हमार बीच हाजर गया है। महात्मा नहीं कहता, अब ता नहीं कहता, मैं उस आत्मी कहता हूँ। वह आदमी के सिवा और उससे याद कुछ न था। उसने प्रकृति से बदला नहीं निकाला कि मुन नुकीली गोट, नागून और पजे क्या नहीं दिये ? गरीर का पैसा बल क्या नहीं दिया ? नहीं, उगने अपने इन्सान हान का विनम्र और कृतश भाव म स्वीकार किया। सीमा पंजा आर गदा की जगह काम देन को उसने तरह तरह के हथियार गढ़ने म पुम्पाथ नहीं माना। उगने जानवर से परावरी नहीं गनी। उसने माना कि जानवर सफल हूँ, इसी से मैं इन्सान हूँ। इस कर्मी म ही मेरी मलाद है। इन्सान म निम्न कम है कि जिससे दिल ज्यादा हा गन। जोर दिमाग भी उगे याद है। उस याग दिमाग से क्या बर जानवर से निम्न की ताकत में कम नहीं, यादा हाना चाहता है ? अर, वह युद्ध जानवरपन है, जो दिमाग का उस काम में लगाता है। यह आ इन्सान का िल्ल मिला है दिमाग क्या उग नेमत का नहीं समझा नहीं गेजारगा ? इस तरह आदमी न अपने दिमाग का उसकी रत्ती-रत्ती शक्ति का अपने या दूसरे की शक्ति का नहीं, इन्सानियत को यत्न में लगाया।

वह आत्मी अब उठ गया है। जीभा तन कभी फलमर नर गान्धि म न रह पाया। कौन आपन थी जा उसके मिर न टूनी। एक हंगामा चागे तग गहा और उगन बीन नर गला किया। ब-ब- उगने मोने

नियं शर लक्ष्मणों लगे । आराम का एक सौं उतक भाग न आया ।
 कनकल हा उसका एका रहा । क्या-कुछ उसक पास न पहुँचा । मर
 विनूति, वा तुनिया चाहता है, उतक इद गिद धूमती रहा । पर उतक
 एक कान पर भी हाय नहा टाला, सुत्री नहीं गधा । कुठ जमन दर न
 न ल मका । चार हाय कपट मे आगे उतक वहा जन्म न हुद । गान का
 माग-मात और रहने का बॉस-फ़ैस की आपना उस नमन दना । यह
 आत्मा शान्ति क पद्मान्त में नहीं गया । युद्ध क घमासान की तरफ हा
 उतक कदम रह । या कहा, वहाँ पहुँचा, वहाँ उसके साथ आँवा पहुँचा ।
 गत आया, ता वहाँ भी राजों आर राजधानियों की राजनात कपट
 लका । लेकिन जंत राज क आर युद्ध क जाण-ताइ आर दाव-पच उसक
 पास विनती कपट आय आर उतक उन्हें पुचकार कर लिया । शान्ति का
 उतके कहीं भा बाहर नहीं गया । मुनह शाम का प्राथना न सगर वह
 उतक अन अन्दर सँवाप रहा । फिर युद्ध उसका कम था, क्योंकि शान्ति
 उसका घम था । इस घम-युद्ध में मुसकराहट उसकी ललकार बना और
 प्रम उसका अन्न । गनु इसमें भिन्न हुआ जाण सगा उस शत्रु ।

न आत्मी निपट आदमी के गग स अमी हाल हमार बीच जी गया
 है । एकदम आदमी का था, इससे यह गग हमें समझ नहीं आया । बहुत
 अनोखा वह हमें लगा आर कभा ता अचरख हुआ कि यह देवदूत तो नहा
 है । लेकिन कुछ का दानव भी उसमें दाव आया । जायद अपने हिल
 म्वाय के क्षाम में से उन्होंने उसे देखा हा । यह, वा हा, आने सीने पर
 टनाग गाली स्वाकर हमें हाय चाहता, माना हमसे धमा मोंगता अपनी
 विदा ल गया है । अब वह आँग स आसन्न है आर उसने भारत म
 म्यराज है । स्वराज म उम आदमी क ही कुछ साथी मरकार बनाकर बैठ
 हैं । वे उमी की गह चलना चाहत हैं । उसकी वह चली-चलाइ रह ता
 पिठी गमती है, पर आगे उसे बताने के लिए वह युद्ध पास नहीं है ।
 ऐसे व साथी बना उदहन में है । तगह-तगह के दुश्मना से बिरफर वे पीज
 गग गे है, एक-धक कर गे हैं, कारवान निग गे हैं और इस तरह

हिन्दुस्तान का सुरक्षित, ग्य आर मालामाल जनान की वाशिश म लग्य ह्यु है । वह आदमी उघाड़े बदन, पाँव-पाँव चलता था । अपनी भद्रा म उमे जल्नी न थी । लेकिन जमाना खाने कैसा है ? इसलिए उसर सींग माथियों को ह्या की गति से और विद्युत् क बग स चलना हा रहा है । फागण, पश्चिम आगे है और पूव का पश्चिम क परावर हाना है ।

और ह्यर पश्चिमी गोब्दाढ म संयुक्त राष्ट्रस्य की बैन्ध चलती ह जा सम्गम हाती ह । माद प्रतिवाद ही नहीं, शम्भाख का उत्पादन भी सत्परता से हो रहा है । जमनी, जिनन सिर उग्या था मिठा पडा ह आर मादूम हाता है कि मित्र सगों म शत्रु के स्वत्म हात हा आपसी मित्रता की जहरत भी परम हो गयी है । चल्कि बीच स शत्रुता उठकर दोनों मित्रों को अपनी तरफ लान्चा रही है । शत्रु मित्र, पर उसर कारण जैसे और नरली बनी शत्रुता अँगड़ाद लकर दोना का माह रही ह ।

एमे म वह आदमी याद आता है, जा इस पूणता और अकिचनता स जीआ कि हमारे शत्रु की दुह उसकी सचाद पर नहीं पाती । यह सोनी गनी युद का आदमी था, जिमे कि सा-ही-सी-सनी वह शान्ति का आदमी था । सच यह कि वह सो-नी-सनी आदमी था । इसलिए इन का उसम फम अधिक् बँटकर यह नहीं हा सकता था । जिसका था, पुरा-का-पुरा था और अचरज कि वह मबका था । अनेकता यहाँ बन्तुआ, विधाना और विवादों की है । धारणाएँ आर कामनाएँ अनेक ह पर यह अन्त एक था—एमे निधारण आर निष्काम था । लौकिक विभिधताओं में एक गा च्यात था विमुक्त था । शायद वह बैन्ध चिमय था । ऐम का दलमत आपस म कैसे बँटकर बंटे ? अब याहर यह फही नहीं है और हम सचार् ह कि उमे अपने भीतर स ही पायें । घहा के सिवा उस फही दगा, रगा और पाया नहीं जा सकता । प्रया म नहीं, म्यूजियम में नहीं, समाज मवों म नहीं । शायद अपन अतर म ही उस जगाकर हम आसन्न युद का अद्यगत और शान्त फगन की यह घृसा और यना-यना करत ह ।

ही है, जो इस राष्ट्र रण का जकुश में रखे। या दा मतवाद है, साम्यवाद और लोकतन्त्रवाद। पर ये भी राष्ट्र-एकांत (नेशनल सोवरेटी) का मान और उभार कर चलते हैं, उससे समय और उत्तीर्ण वे नहीं हैं।

जाति के लिए यही सबसे बड़ी और जड़ की याथा है। गांधीजी म दुनिया को तो भी डाढ़स था। वह एक समूच राष्ट्र के नेता थे, पर उस राष्ट्र से सीमित न थे। यानी आज जबकि दुनिया इतनी छाटी बन गयी है कि अन्तराष्ट्रीय होकर ही हमारा काम-कान चल सकता है, तब किसी भी पूरे राष्ट्र का बल जितनी शक्ति म नहीं है, एसा व्यक्ति या ऐसी नीति, क्या शाति या क्या युद्ध, किसी में कुठ कर घर नहीं सकते गांधीजी इसी से भारत-राष्ट्र को लॉपर अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में नहीं उतरे। जानते थे कि काम-काज के क्षेत्र में बवल तत्व विचार की आर से किसी नयी नीति का प्रयोग आरम्भ नहीं होनाला है। इसलिए वह तत्वदर्शन या विचार विवेचन का प्रश्न नहा है। प्रश्न अधिक घनिष्ठ आर समग्र है वह अन्तराष्ट्रीय है। इसलिए उसके घटक किसी एक राष्ट्र का आम प्रयाग से आरम्भ करना और उस नीति का प्रवतक बनना होगा। उनको श्रद्धा था कि वह माग भारत का है। समाज म अल्प सत्य के हाने पर भी (बल्कि म) माना पूरी तरह वह राष्ट्र के बनकर रहे। जब भी श्वसर आया तदाने यही कहा कि भारत द्वारा ही उनका काम सब दुनिया को पहुँचानेवाला है। यही दृष्टि थी जिससे राष्ट्रीय कामस और उत्तरे बाद राष्ट्रीय सरकार से भेद रखकर भी उन्होंने अपना आभेद बनाये रक्खा। शाति कौन नहीं चाहता है! जो युद्ध टानत है, व स्वयं फय शाति नहीं चाहत। बल्कि वे तो प्रत्यक्ष अनुभव करत हैं कि राष्ट्र-नायक हाने के नाते उन पर शाति-रक्षा का दायित्व अधिक है। उस दायित्व-पूर्ति में ही उन्हें युद्ध स्वीकारना और टानना पड़ता है। जहा तक उनकी इस मान्यता की बात है, उद् गलत नहीं टट्टया जा सकता। इसलिए जातिवादी का यह पुनावी है कि यह शाति की नीति नहीं किसी इकाई पर, किसी मानव-समुदाय पर लागू करनी बताय।

युद्ध का हारना है तो किसी दंग की समूची गति का, विद्वज्-गति का भी शांतिवाद पर ढालकर और चलाकर दिखाये। ऐसा नहीं होता तब तक लोग क्यों न कहें कि शांतिवादी स्वप्नवादी हैं, आदर्शवादी हैं। व्यवहार जगत् के नहीं, वे तो विचार-विहार अन्यस्तोत्री लोग हैं। उनके कंधों पर विम्वेदारा का नहीं है, इम्लिष व क्यना में और आदर्श में ऊँच गहर सकते हैं। पर राजवाला अपनी जानता है और चला-चलाना उसका काम है।

इस पद्धति से गति का बात गून्व हा जाता है। यह अनसुनी कर गी जाता है और छटाई की तैयारियों का-का-न्या अनिवाय बनी रहकर लोक-मानस का घेरता चली जाती है।

यह सवाल नहीं, चुनाती है। इसका उत्तर स्वय उत्तर बनकर हा दिया जा सकता है। चुनाती शांतिवादी के लिए न भी हा, अहिंसावादी के लिए है। क्योंकि शांतवाणी गति रहकर जी जाय और मर जाय, इतन में शायद सायक हा सकता हा। लेकिन अहिंसा का साधकता फारा गति में नहीं है। बाहर जग की हिंसा से किसी आत्मा भीतर चाट न खाय, वह अहिंसक कैसे? अत प्रतिकार अहिंसक का घम है। अपने पर अनाम का न सहना आत्म का घम है। गांधी की शांति और गांधी की अहिंसा का यही लक्षणता है। अथान् हिंसा और अगति सदा गांधी का अपनी आर गतिचती रही है क्योंकि अहिंसा बन्द होकर न बट सकती है, न बैग रहन न सकती है। कारुण्य क्या कहीं समाया रह सका है? उस ता बाहर मन कहीं पहुँच और रमे बिना चैन ही नहीं है।

अहिंसा का चचा ता बहुत है। निश्चय उसमें अहिंसा का शान है। तब के तार फलाकर अहिंसा का उसमें एत उलझा दिया जा सकता है कि वह निष्प्राण हा जाय। हा स्वय शक्ति है वह इस तरह जट दना गी जा सकती है। पर उन सबके लिए जा चा पुरातन परम्परा की भडा में अपने का चैन और देणव फहरकर अहिंसावादी गिनत है, चा आधुनिक गांधी-अनुगामा हाकर अहिंसाधर्मो बन गय हैं, सगल है कि और मुन

कहीं हथियार की तैयारी भेजते हुए और सभी को द्रव्य और दुश्मनी की राह पर कटियद जानते हुए भी क्या व धरने इस भारत देश को, एक अकेले अहिंसा की नीति पर चलने को कह सकते या चलाकर निगा सकते हैं ? अगर नहीं तो क्यों न कहा जाय कि अहिंसा व्यक्ति धम ही है, जगत् धम होन की उसमें धमता नहीं है ।

मेरा मानना है कि शांति की सीमा यही आती है और शांति पर आरोप भी इसी जगह आता है । भारत के भीतर शांति सबकी समक्ष म आ जायगी पर वहाँ सीमा पर कि जहाँ से विदेश गुरु हो जाता है और शायद जहाँ से दुश्मनी शुरू हो जाती है, वहाँ पर भी क्या शांति का ही धम लागू होगा ? वहाँ यदि शांति का धम नहीं चल सकता तो निश्चय रचना होगा कि अन्दर-अन्दर की शान्ति केवल बाहर की लड़ाई की सहायक ही बन रहनेवाली है ।

युद्ध यदि उत्पन्न-वृत्ता का विषय नहीं है तो शान्ति का भी उसी तरह का विषय बनकर नहीं रहना है । दोनों उससे अधिक उद्भव हैं । युद्ध एक महान् उद्योग है । संसारभरपी उद्योग एक वही है । जाने-अनजान हम उसके क्षेत्र और अवयव बन हुए हैं । युद्ध किसी गाँव हिस्से में किसी गाँव अरसे तक चिनगारियों देकर पूरता स्थितता है तो उसको हम धरौ तक सीमित न मानें । जातीय लड़ाई के लक्षणों में वहाँ पूर्णता दिखती है, उसको तिल तिलकर जान और जमा करते तो हम कह जानेवाले शान्ति-व-काल में है ।

शान्ति कस हो सकती है, पर तब कि युद्ध म बला उद्योग बतपर रह न उभर सके ? कराड़ा व्यक्तियों को लार्गों तरह का काम युद्ध देता है । हमारी समस्त और सतत प्रिया उद्योग मध्य का एकत्र रखकर चलती है । शांति को अगर आना है तो हमारी समस्त और सतत प्रिया का उद्योग शान्ति बनना होगा । उद्योग शान्ति का कराड़ा-कराड़ का निष्पत्ति का रण नात्मक धमता रना होगा । उद्योग का प्रयागात्मक रूप गांधीजी का रचना सस्क कायदम है । पर प्यान म, मय में शान्ति नहीं है । अगर कहीं

वने हुए हैं। योग, यानी प्रजापति, सरकार जना स सदा ही अविचार की, अनुमति की, कृपा की आशा और भिषा करते रहते हैं। यह स्थिति आज मानों हृद तक पहुँची हुई है। टोनेन्टेरियन जा नहीं भी है, वह भी स्टेज मानो किन्ही अन्तगत लाचारी से उसी मरगुत्तात्मकता की ओर घनी चली जा रही है।

इसका प्राण सिक्के के अवमूल्यन के सिद्धांत से आरंभ नहीं होता। अवमूल्यन ऐसा नहीं कि जैसा हाल में टालर की अज्ञानता से स्टॉलिंग और छापे का हुआ है। नहीं, अवमूल्यन खुद सिक्के का ह्रास, और वह धम की अपेक्षा में। यानी मूल्य धम का इतना बढ़ जाय कि सिक्के का वह लगभग रह ही न जाय। यानी धम की कल्पना मुद्रा की वेदनी है।

जब तक मूल्य में यह प्राप्ति नहीं होती अज्ञानता ही सही नहीं हो सकती। जब तक जोसत आदमी लाचार है कि वह धन के लिए धम करे या धन उसके धम-मूल्य को उठा ले जाय तब तक धम पीछे जाय धन आगे रहेगा ही। यानी तब तक परिमाण का महत्व होगा, गुण की अवगणना होगी वस्तु की पृष्ठा और व्यक्ति की अज्ञानता होगी चातुर्य चलेगा और महानुभूति भूयो रहेगी उन्मत्त मूर्खता समझा जायगा धार उपाजन कुशलता का प्रमाण होगा—तब तक जिन्हीं हमारी आधी रहेगी और गान्धि युद्ध की गाम्भीर्य बनने के लिए रची जाया करेगी।

मरा मानना है कि गांधीजी हमारा उम्मीदवार लिए जा रहे हैं। उन्मत्तता का और धामन का विदेशीकरण वह उम्मीदवर्तक में चारों ओर से। चहुँ ओर दूर दूर फैला घबराती में पसीन के रूप में पड़ी हुई अज्ञानता की धम-साधना सिर्फ़ एक जादू में जा गिातो के कुछ घहरों में चुगी और गिन्धी चली जाती है, यह हमें उन्मत्त मानना का पातक जन पता था। गिन्धी का यह जादू हमारे सिर चला था और चला है। जहाँ समझ आते हैं हमारी आँसु मुन्ना में बग जाती है। जहाँ धम में जी हृदय लगाता है। यह तो कृपा है कि यह समझारी मन तक नहीं पहुँच पाती और

श्रमिक श्रम में अपने को सायक करते ही चले जाते हैं। लेकिन माना कुछ ने प्रण किया है कि वे सबको 'सद्ज्ञान' पहुँचाकर ही रहेंगे, याना मानव चिन्ता को आर्थिक और आकिक बनाकर ही छोड़ेंगे। माक्स का आदि लेकर कम्युनिम ने यह बीडा उठाया दीखता है। उसरु इस जय ने मानव-जाति की मापा म फह, तो उड़ा धनध किया है। क्योंकि जिसका मूल्य दहना है, उसी में नये सिरे से मूल्य ढाल दिया है। श्रमिक की मापा श्रम की न रहकर धन की धन गयी है और आदमी को जगहन करके स्टेट को सब-सहाय बनाया जा रहा है।

शान्ति की समन्या उत्पादन के उद जान से या सम्पत्ति के निवर विक हो जाने से या निनिमय और कितरण के द्रुत और नियमित कर लिये जाने से उतनी सीधी-सलमन नहीं है। कारण, उस आर से मनुष्य म आत्म-निभरता और आत्म-गौरव का भाव नहीं जगनेवाला है। यह ता उपाय मुख्यता से इसमें है कि मानव-चतना का भार केन धन से श्रम की आर बसे आर श्रमश-श्रवस्था वह आये कि श्रम ही एक धन ही जाय और उससे पृथग्-मूय का कहीं अधिग्रान ही न रहे।

इस दिशा में समझ दृष्टकर चेण हा और सब दशा की उदासीनता पर भी एक भारत दग की राष्ट्रनीति उधर चले तो मेरी प्रतीति है कि अन्तराष्ट्रीय दनाव उस पर कम होना आरम्भ हा जायगा और विश्व-संक्रम भी कुछ दीला होगा।

आज तो भारत न पूरव और पश्चिम दाना तरफ पाकिस्तान ह जिसके साथ सम्बन्ध भीन नहीं हैं। परिणामत देश की सारा इफॉनोमी (अर्थनीति) उस दुश्चिन्ता के अधीन चलने को लाचार है। सेना और शनिक का मन्त्व ऊँचा रखना होता है, सरकारी धाय का धन भारी माग उसमें जाता है श्रम की श्राथकता जैसे श्रमिक के पास न हाकर शनिक के पास हो जाती है, जिसना सीधा धाम बनाना या उगाना न होकर निगादना आर नष्ट करना है। सारी दृष्टि का धम तदनुकूल बनाना पन्ता है और उत्पादन में अधिक श्रय की महिमा पन्ती है। सैनिक स

मेरा लेने और जबरत पर उसकी जान देने के लिए दूसरी दिशाओं में उसे भोग की मुविधा देनी होती, यद्वि भोग की आदत उसमें डालनी होती है। ऐसे जान-बूझकर संशयिता में उलटा यानी बरतता का प्रम चलाया जाता है।

क्यों ? क्योंकि अपना तब दूसरे के व्यवहार से लेने की भूल से हम आरम्भ करते हैं। यदि हम दुःख मानता है तो हमारे लिए भी दुःखनी ही एक नीति रह जाती है, ऐसा हम मान लेते हैं। गांधीजी ने कहा कि यदि इसी जगह अपनी गलती हम पकड़ लेनी चाहिए और शाहसपूर्वक दूसरी नीति का प्रयोग कर चलना चाहिए। मित्र का मित्रता देने में क्या बढ़ाह या क्या पराक्रम ? शत्रु का मित्रता से जीतना है। शत्रु का मज्जा नाश इसी में है क्योंकि शत्रुता के बीच मित्र हैं और शत्रु शत्रु के लिए मित्र बनता है। पाकिस्तान कुछ भी कर तो भी क्या भारत मज्जामानग नी तर दयता चला जाय ?—गांधी की नीति ऐसी ही पोर थी और कांग्रेस उसी दायुपन से चल रही है, यही आर महागमाद माना यह पर हिन्दू-पराक्रम का जगाना चाहता है।

पराक्रम का टीक एकिन पराक्रम हिन्दू बनकर क्या अहिन्दू का उगी के लिए लालकारता नहीं है ? ऐसे न्यायी पराक्रम का घात और राष्ट्रीय के जानेना परम्पर विराधी पराक्रमों के विग्रह की ही प्रकृति होती है। बुद्ध रही तुमाइय नहीं ता क्या है ? अन्तिम समय है कि अब एक न्यायी पराक्रम का उदय हो, जो अहिन्दू और प्रगल्भ शत्रु इगलिए न नक कि उसका राग किसी सीमितता में नहीं है कि उसकी भद्रा उग मज्जाम म है, जो मय फर्दा है, इगलिए जियम शत्रुता के लिए गान नहीं है। नद अदिग भाव अदृष्ट रह सकता है, क्योंकि राव ही है जो शिवता में गला है। उरर आर अति राष्ट्रवादों के घमासान में अगर को राष्ट्र समझ मानव-जाति की आर म हम मय आर मानिक, इगलिए अन्तिमिक पराक्रम का अन्तिम अन्तिम गर्न हो। मया ता मयिग करा मया, यथा मयिग है।

गांधीजी वा गये। उनमें घम घम से और कम घम न जुदा न था।
 लगता है कि उनकी परम्परा वहीं चँटकर सड़-सूट वा नहीं हो गया।
 म्मा तो नहा कि घम पिनोम में आर कम जवाहरलाट म टिफने का रण
 गया और उन सिये के बीच का गांधी-युद्ध कुठ वीण पण गया। ऐसा
 है वा शान्ति के लिए शायद मानव की धार से आशा न स्यान न
 है। लेकिन अगर ऐसा नहीं है आर यह आत्म-युद्ध शाना का अभिन्न
 पद्धता में शूषर भारतीय जीवन म सक्रिय कर दे सस्ता है वा हम
 निश्चय रण कि उमटते काल शायद कर जायगे आर भारत के भावा का
 नालस्य के रूप में उच्च हान से काद न राक पायेगा। तप दर न
 प्रकाश जागेगा धार एक नयी विश्व-संस्कृति का आदिमा होगा।



युद्ध और भारतीयता

युद्ध के बाद की हिन्दी-बहानी के बारे में कुछ कहने का मैं सार्थकता नहीं हो गया हूँ। लेकिन सच यह है कि साहित्य काल में फटता है, ऐसा नुक़्क़ा नहीं लगता। युद्ध में पहले साहित्य एक था और युद्ध के बाद दूसरा होना होगा, यह बात गमना में नहीं आती। हजारों वर्ष पहले और हजारों मील दूर की कथा अगर हमारे मन का आज भी छू जाती है, तो मानना होगा कि कुछ है, जो दश-कात् में बँटा नहीं है। साहित्य माना गी का प्रतीक है। यह नहीं कि यह गल्लता नहीं या नये-नये रंग नष्ट होता। पर रूप और विधान-परिधान बदलता है, अन्तर्गम नहीं बदलता।

यह तो आप ज्ञान का आज का रंग बना है, जो चलते-चलते मनुष्य-मान की कठिनाई जोड़ता और गंजता है। काल के नियमों से विभाजित करके यह हर चीज में विज्ञान के सिद्धान्त का सिद्धि देना चाहता है। मानव-बुद्धि का यह हस्त-चलित उपयोगी हुआ है। एतद् शन विज्ञान निपजा है। लेकिन इधर उस एतद् अन्तःकर्म की अनुपयोगिता भी गमना रही है। मन्य का मुनी में कर ले, इसमें उतनी मानव की साधकता नहीं है, जितनी इंसान है कि यह अपने का मन्य के हाथ में दे दे। सत्य ज्ञान से सत्य ज्ञान असत्य हा यकी परिपूर्णता है। एतद् यद्यपि प्रतीत नहीं जाता कि युद्ध विषय-सामग्री देने से अधिपत साहित्य के गम्य-धर्म में कुछ कर सकता है, तो भी यह उपलब्ध होकर हम अपने को दग्ध-बूझने का असुर दे सकता है। जो यह ज्ञान समझने के लिए जल्दी भी है।

युद्ध मानव-अनुमान का नया रूप में गमना करता है। यौन के साथ

एक अलग तायसों म एकत्रित भी कर गता है। जा अन्यथा विंगर रहत ह, तीन विराध भाव का लेहर ने परम्पर विमुक्त शिवा क कैल्यों में मुक्क शकट्टे हा जात ह। यानी उससे चतना म ता फड, कक्षिय गरीर म ता मन उन उगत ह जिनक बाच गीच-तान चरती ह। अमजी क 'पालरादनेउन' म यही भाव ह। पिछला युद्ध ता गमनाय क्या समूची मानव-जाति का हा था। मानव का जाति या कितनी भी विंगर हा है ता धन्त म एक कुटुम्ब हा। अत युद्ध यूराप में छिना, ता एणिया का ना कही का काइ मुक्त चैन स गह मका, सा नहीं। युद्ध का ताग्व जना नहीं मचा, स ता का भा पिअर युद्ध के अमान बुग तग हिन जाया। टाक-चतना तागत मावों से शय हा रही आर साहित्य की गह बह धोन, विमुक्ता प्रचार नाम दिना गया गव ही उतरा अर अभग।

दुष्मन यों गिनता में ता हात हैं पर दुष्मनी म एक जन ह। गाना एक-सा पात्रे एक म अन्न, एक-सा नाच आर एक-सा गनका गहिन हाता ह। झगट पर यदि चिन्त वित्र हात हैं, ता कानियों में नी उग तरह नाम अटग हा जात ह। एक जाण गुणम गानि ह और बह जमन ह, ता दुसग जग दानव कम्पुनिग है आर उह म्सा । तदनुसार दुठ दुस्र यीयों में पक ह। गर में एक ह, सा ही दुस्र वा मनना हाता ह। युद्धजनित साहित्य का यह शिवा हा कि कुमें आग्रह ग्ल हा है आर अन्न-अन्न ग्ल हा, गदिन आग्रहाव मव कही एक-सा है। इस ग्लान की प्रतिग में यक्ति की निजग दूव गता ह। मालिक पात्र और चारु का अन्तारण कहाना में दुष्म हा जती है। पात्र स पायों नों ता परिनिधि क हायों म शैर चरत हैं। तर म्साय व्यक्ति क म्सा की कामत पर बग का गग्व अर म्सा गने हाता ह। सत्र में ता समन्ता हाकेक का जगह गणिक हाती ह। रहाना में अन्ता अर चनना हा जगह गग्वन-गिनाय अर म्सा विभिन् का जानयण गता गता ह आर स यथा स आरद म्सा गन गला ।

रोमांस की शक्ति धरी, यथाथवाद उभरा। यथार्थवाद का ऊपर प्रकट फूल की मुन्दरता की ओर न जाकर जहाँ को, जहाँ खाद लगता है कुरेदता है। यह जरूरी काम था, मगर विज्ञान का काम था। पर कहानी का भी यह काम बना, माना कहानी प्रकृत न हाकर वैज्ञानिक बनी। सृष्टि की नहीं, माना कारीगरी का यह उम्बु हुआ।

इस प्रकार यौद्धिक विम्लेषण का यथेच्छद के सन्त स कहानी धीरादास नायक में चलिचिंत चरित्र तक आ गयी। मानो महत्ता मन्दिम्ब हा आर धुन म ही महत्त हो। उक्त कहानियाँ लिखी गई जिनम समय पर योग्य था, यथेच्छाचार पर सृष्टा। मन पुरातन में तब प्रतिगामिता दीग्य आयी और स्र नूतन म प्रगति। परम्परा का इन्कार श्रान्ति का स्वीकार बना। युद्ध का यह अवयवमायी परिणाम था। यत्मान भारी तक उठ, इसके लिए आवश्यक समझा गया कि वह अतीत सट्ट। पृथ की स्थिति छूटकर ही पश्चिम की उन्नति सम्भव दीरती। अनकानेक हिन्दी-कहानियों ने इस मुद्दिम को लिया। मन्दिर, ब्राह्मण माधु आदि संस्थाओं और समय तप याग जादि मन्वों की गणना कहानी की उन्कृष्णा की।

विवाह की परित्रता का परिवार की मयादा भारतीय समाज के मू म युगे मि त उ द। न गस्थाभा न इतिहास के आश्रमणा के बीच भारत का काम रगता है। लकिन कहानियाँ लिखी गई और कम सला में नहीं, जिनम न मयादाओं का गिरा न्ने की मुर्ली सट्टा थी। विवाह माना विवाग म आर प्रगति म बाधर है आर परिवार व्यक्ति का समान म काटता है, क्योंकि यह एक भीमित स्वाथ म उस जात्ता है ऐसे इन कहानियों का मन्तव्य था कि विवाह यमिचार का पापक है और प्रम न प्रवाह पर बाहरी अरुध टालकर केवल समझा उत्तर करता है। मानना होना कि युद्धात्तर फाल म तय केवल समाजगत मयादाओं का बहुत भाग न्कर मैशन में तर्क आय आर उनका ग्ना क प्रति उन्नों

दपना दाखिल नहा माना । बल्कि उक्त वाक्यना भावता के प्रति
 'न' कृत्य माना ।

लक्ष्मण सुद्ध के वाक्य अर्थात् धीरे-धीरे हिन्दी-बहानी में सुद्ध जा रहा
 मालूम होती है । जो तब कल्पनावादी विश्वास माना जा रहा
 है । 'त' नये सिरे से नयी भंडा प्राप्त करने की आवश्यकता है जाना है ।
 माना प्रचलित नूतन काम न दत्त है। लेकिन अस्म और सनातन भा
 श्वाक हाथ न आते हैं । दुनिया तबी से बदल रही है और घटनाओं
 का प्रति द्रुत है गया है । राष्ट्र अपने में होकर फार जा नहीं पाता
 है और जो दुनिया न ऐतन्म हर किमी का साक्षात् यत्वा ही जाता है ।
 नर रम्याति अर नया चाल-चाल के लगे हर सुद्ध में आय दिन दीवत है
 जो हृदाद चित्र सब कहीं के लोगों का उच्छ्व यहाँ-वहाँ पहुँचाते रहत
 है । एक राष्ट्र प्रम फार ग्य ऊँचा जादगा अर नहीं रह गया है । पश्चि
 म का ज्ञान मन से सहज नहीं छूटनेवाला है, पर मन्व्य और 'बैल्यू' के तार
 पर राष्ट्र तबी से हमारे हाथ से निकला जा रहा है । वह राष्ट्र जिसका
 अर हम जीत आगे मरने का लक्ष्य पात है अर दूसरे के सुद्ध, वा लक्ष्य
 में नाते बनकर अन्य मान से हमें मत तब भेद दत्त ये अस्ती गति गीत
 जा रहा है । 'प्रेमी-पाकिता' नाम का अर कद प्ररण नहीं देखी है—माना
 'प्रेमी' अर की है प्ररण सनात है । उमोकेही और सशक्ति अर
 कम्बुनिम अर वं सुद्ध नहीं रहे, वा कृति लागें । ये विरचन के काम
 के हैं, कल्पित के नहीं । प्रेमी अर्थात् में यति हिन्दी-बहानी का गाव कुछ
 निष्ठी गाने है, वा विन्म नहीं है । जो ता धराधर पर निष्कृष्ट रहे हैं
 और कानी होना मर में अनिवाच है । अतत हे से दोन्ना तब कदानी
 गत्र का गत्व हागी । अधिकांश उम्में मरनाली कानी है । कानीली
 कदानी की कानी हिन्दी में इस समय सन्तान है, वह नहा कदा वा
 दत्ता । दत्त अनी ना जन्मा है अर कष्ट में है । सुद्ध के धस का समेष्टन
 में भा गना लगत है । अर-कम में मानकिक उरत की आशा भी
 का जो जाय ? न्यान्तराक्या का मा कालगा है । गानरन भारत में

लोक-राज्य की प्रीति धननगली है। परिवार के बीच घुगुग बड हा, एम सरदार बैठे ह। धानधान का दिमाका कहीं नहीं है। गावी-परम्परा का पुरा पालन है।

फिर का तोप ह, उन पर ध्यान जान की क्या आवश्यकता है ! वेता परिस्थिति की मयादा की सूचक हो सकती हैं। नीति अहिंसा की है, पर परिस्थिति म हिंसा हो तो अहिंसा की नीति ताप को साथ लेने से डर नहीं सकती। मन में अहिंसा चाहिए, फिर बाहर छाय म तोप-सम्पार भी हा तो क्यों असम्भव है कि वह मन की अहिंसा की रक्षा के लिए न हो ?

आदम से छिप काम नहीं चलता। यथाथ का पहचानने की शक्ति चाहिए। यथाथ की मयादा का उल्लंघन नहीं हो सकता। दश में हम शांति चाहते हैं, समाज की अहिंसक पुनरचना चाहते ह। ता पहल दुःमन से देश को बचाना और उत्तति के भाग को गिच्छटक बनना होगा कि नहीं ? वह इस तरह अहिंसा की दिशा का ही प्रबल क्या न समझा जाय ?—दुल्लादि तद्वतमान राज्याधिकारी का हो सकता है।

उस तद्व का उत्तर क्या है। निभयता यदि शत्रु हा त ही अता है, ता शत्रु के अमाय म भय आ जायगा। शत्रु के अमान को अहिंसा मान, तो भय भी अहिंसक हो जाता है। इसलिए तन्नार के विरोध म फोड़ तद्व नहीं गिया जा सकता है। कारण, भय को दूर करने के लिए शत्रु धाया है। भय का तो दूर करना ही है। यदि सिंगी मी धार म निभयता नष्ट आ सकती है, तो शत्रु का अन्त आना होगा और नीति का फोड़ भी उत्पन्न न उगे तल मरगा, त अनुचित कर्त्तर स्वयं गायक हा सरेगा।

अत प्रश्न यह नहीं है कि ताप अनुदर जात जपानि ह जात बर न हा। सिन्हा को ली यद्वत मुन्दर लग सकती है। अमुक परिस्थिति में या इतनी महिमा-मण्डित हा सकती है कि बंदा पर दयता रूप म विराजी जाय।

प्रश्न है फवल यह कि हमारी भडा क्या है ? जात यह प्रश्न धमोष है। हम बार में घोड़ी भी तूक पातक हा सकती है।

अहिंसा एक समग्र भाति है। समय पर यह एक गुण नहीं है। यह चरण धाम तब तक नहीं है। यह धर्म है ना कर्म हार या यह नग्न मरता है।

अब दा हा स्थितिओं का मरती है। या ता हम समय दिव्यास करत है या विवास नग रखते। अज्ञा में धोच की स्थिति कार नहा है। या ता अज्ञा है, या नहीं है। अहिंसा का अज्ञा स हिंसा का जीवन में स गप नहीं हा जाता, लेकिन जा हाता है वह यह कि उसका आम-समयन नग मिलता। अन्यक दान का यह एक बहा लक्ष्य, रहा सृष्टी है।

आज की स्थिति मरुतप्रन्त इसलिए नहा है कि उसम हिंसा आवक है, मरुत आज ता उन्नति आर मरुता हा जाग है। १०० जीवी दररता और मरुता नहा है। मय जीव का जात कानून का धार रखत्या का रूप मिला है। जिंसा भा पदर जैसा अनगत यह जर जाग नग जागती है।

मरुत का कारण यह है कि दान म स हिंसा जागता हा किन्तु-रवा हम छात्र हा गती है। दान का मय हा सामान मान कर उस पर म अभावधानता का उचित मान लिया गया है। उस जिंसा अहिंसा मरुत तत्व का प्रभु है, अनिराय विरुद्ध पा प्रभु नहीं है।

यह स्थिति घातक है। धर्म की, अयात् दिवक का, अज्ञा म प्रत्येक धण हम म आम-समयन और आत्म निर्माण चलत रहना चाहिए। करन धर्म की यहदवासी म जाभादलावन म अभावधान हाता साध नरव का धार करना है। काम-काज का आरग जर हम धर्म क निर्देश म जाग डाल रहा है, ता काम-काज का यह समाराह हा हमें पता दनगला है। मरुतों और मिलों क मरुत हागला मी आम-समय मरुत का अज्ञा हा मरुता है अगर उसक मय अन्यक-दान का मय हम न मिल मदे। ऐसक तरी म चलन की दृष्टक म न चरगा, साचना हाग कि चलना दिपर है।

गांधीजी अमी इमार धर्म हा गप है। अज्ञान आर प्रत्येक नहीं

कमठता थी। प्रथम काटि कं कम प्रतिष्ठाता पुरुषा म उनकी गणना है। लेकिन जब कम के कूच का अस्सर आया, तब ही तब धम चिन्तन की आवाज उन्होंने ऊँची की। युद्ध के अवसर पर गीता का उपदेश हुआ न था ! कुक्षेत्र ही धमक्षेत्र है। जब करना सामने है, तमी का सोचना साथव है। ऐसे ही मथन म मे धम की प्राप्ति और सृष्टि होती है। गांधीजी ने प्रत्येक कूच और प्रत्येक मार्च पर बन्दे से पहल दिला अहिंसा सम्बन्धी सूत्र धम विचार की कांग्रेस कायसमिति क या अपन दूसर माथियों क, सामन रगा। यही वह विचार अनिवाय आर अमोघ होता है।

राजनीति म हर महत्व क क्षण पर धमनीति की बात उठानेवाला गांधी जो आज नहीं रह गया है, दूसर राजनीति अपने ही यूह में वैसी लीगती है। समूचा कम बन्दे एक दु-ज की रचना करता दीप्त रहा है। कम एक यह चर है कि जिसम धम की सृष्टि न हो ता वह केवल नशर और युद्ध की रचना करगा। धम की दृष्टि न हो ता वह बन्दे-सहार आर युद्ध की गना करगा। धम की दृष्टि छालकर हम उगी युद्ध धन की धम-क्षेत्र बना द सका है। तब गोप्य का मी रूपान्तरित करके जगम मे प्राण की राह निकाल सकते है।

धम-कम का प्रयोग आज प्राग का कारण है। एक उठाऊ सयाम म हा रगा है। दूसर छार उपाय सम्भन नहीं है। आज के अग्यार का चित्र उस संयाग का चित्र नहीं है, वह जगदा मित्र प उपदास है। ताप क मुँह क गीत का ग्यादी अहिंसा की गाथा रहा है। उस ताप से भुनना हुआ ग्यानी परिनामला होता, ता उस ग्यादी का म समन करता था। तबया हिमा क पट म दुबककर बन्देवाली जहिमा फार नहीं पीजती है। ज्ये गला म लाग जाना है गीर जगमे किमी का कुछ आना नहीं है।

हम ता यहाँ क्षत्र राज बनावर रह है, ता मचमुन ही ग्यानी उगती गही प्रतीक हा सकता है। ग्यानी जगदा लाग आर भादचार, जिसम जगज्यन नहीं है, जगता मी रूप हा करता है। खनि ताप ता

तानाशाह तानता है ! लोकशाही और तानाशाही सिर्फ चहरे नहीं हैं कि सुविधा से बदले जा सकें। पर आज ऐसा ही मालूम होता है। लोकशाही अपने भीतर से तानाशाही के लिए तैयारी करती हुई देखी जाती है। एक यहाँ नहा सब कहीं ऐसा है। इसलिए शर्मों के आल-जाल के नीचे रोग के बीज को पकड़ने की जरूरत है। अन्यथा किया कराया सब चौपट होगा और लोकशाही तानाशाही का आसन जगन को रह गायगी।

आज जैसे विश्व की सम्यता और उसका विशाल अनी पर एड़ हैं, उनको कसा और परखा जा रहा है। केवल सदियों का समथन होने से थोड़ा चीज रस्ती जानेवाली नहीं है। खरी होने पर ही वह टहरगी, अन्यथा एक दी जायगी। बड़प्पन, बड़ शब्द, बड़े धायदे, बड़े नक्शे अब मानसता को अधिक काल तक रोक नहीं सकेंगे। राज-नेता का धंधा अविश्रान्त की वस्तु बन उठा है। शासन और शासन आतक की वस्तु मले हो, अब हृदय के आदर का पात्र वह नहीं रह गया है।

गांधी ने गम्भीर और आन्तरिक एक भ्रान्ति जो कर दी है, उससे अब शासक प्रत्यक्ष में जब तक सेवक नहीं बन पायेगा, तब तक वह अपने को सुरक्षित भी अनुभव नहा कर सकेगा। गांधीजी ने जीवन के प्रकृत मूल्य को हमें दे दिया है। बता दिया है कि शहर की सम्यता के कंगूरे पर पैग समृद्ध नेता केवल अभिनेता है। केन्द्र वहाँ नहीं है, न मूल्य वहाँ है। वहाँ केवल माया है, जिसने मन को मोह रखा है। उस मोह पर ही राजशाही और साम्राज्यशाही चला करती है। उसकी रक्षा के लिए युद्ध होते हैं और उसकी मोहनी बाल्जर युद्ध के लिए ईंधन जुटाया जाता है। नहीं, धंद्र है वहाँ जहाँ भ्रम का पानी धरती में बाल्जर अब उगाया जाता है जो हमारा पोषण करता है। शासन समझा जानेवाला काम न ऊँचा है, न आवश्यक है। इस माया मोह ने ही उसकी महिमा दे रनी है और भूमिओं का भ्रम उसे ऊँचा उठाये रखने के काम में चूग लिया जाता है। यह सब किस तरह से सिक्के के जादू से हाता है उस सिक्के के तिलिस्म को समझना लगभग असंभव बना दिया गया है।

इसलिए जरूरी है कि जीवन की प्राथमिक बातों का आकलन बनाकर व्यय शब्द का आकलन हमें रचनात्मक रूप में धन के विचार को निकालकर पकें नहीं, बरन् धन में से धन की प्राप्ति करें। अन्यथा धाकांपा बगावत उस जोर से जो धन की सृष्टि होगी वह हमें ही सा जायगी। रुपये से चलनवाली सरकार और उस जोर से होनेवाले काम ऐसे ही आमघातक होते हैं। वे सदा अधिनाधिन रुपया माँगते हैं और समाज में तनाव डालते हैं। सरलता उसमें पियती और सुटिलता पलती है।

धन को धन के ऊपर रखने पर फिर धन का मान धन ऊपर दबाव न होना असम्भव है। सरकार आज उसी रुपये को ऊँचा उठाकर उसी की छटी को मान बनाकर चल रही है। धन की ऊँचाई से माप में व्यक्ति की योग्यता समझी जाती है। इसलिए व्यक्ति को निगाह व्यक्तित्व पर नहा घेवन पर है। इमानगारी नहीं, तिरुहम यहा की नीति बनती है।

अब समाज एक है। सरकार में जो मान चलता है, उसी की समाज में प्रतिष्ठा होती है। यहा मान ऊँचे घेवन का है, यहा भी धन-दीलत का है। मूल में नान यह रुपयकर धनचार और धूमपारी को रोका जा मिटाया जा सकता है, यह थापी धन्यना है। रिशतगोरी का पल्ल प्रिना डेनल है? ड पर नग लगता। रुपय की भाषा में साक्षात् और पालना रूप्य यह डटल है। मूल यही रुपय, ता लगनवाला पल्ल पल्ल नहीं सकता।

केवल धन, पल्ल और उगड़े परिणाम का सामने रखकर होता है। अथवा उमम आगुकि और धानाजा है, उगम रुपय और लाभ की दृष्टि है। प्ररणा यहाँ प्राप्ति की है।

लेकिन धन रुपय धन का ही प्रतिष्ठित करता है। उद उमहो कतग्य का रूप देता है। उस पल्लगुकि से वह यहा को मुक्त करता है। परिणाम में धन से गामागुकि यथा अर दैगम्य उपजने की सम्भावना कम होती है। हीन शक्त रण रण जाती जात यन्दर-वाट धरन के लिए हटात तरामू

लेकर किसी को शासक और व्यवस्थापक बनने का मौका भी कम होता है।

मूल में इस दृष्टि को नहीं रख सकेंगे ता जाने-अनजान अपने सिरों पर हम एक अधिनायक को ला ही पिटावेंगे।

यदि उस सम्मान को हम अनिष्ट आर मानव-जाति के लिए लज्जा जनक समझते हैं तो मूल की आर हम जाना हागा। दंगना हागा कि हमारा उदासन और वितरण आर उनके आधार पर बननेवाले हमार सम्भव क्या है और क्या उन्ह होना चाहिए ? अगर इन सम्भावों में हिंसा और शोषण है ता अन्त में ऊपर अधिनायक का आना ही होगा, जो छत्र को आर दंड का लेकर हम पर शासन करगा। तस्वीर की तोप के मुँह की तरह उसकी घोंहे ऊपर हागों और उसकी छाया के नीचे बैठकर हम ग्नादी पहनंगे आर शान्ति चरचगे।

ऐसा यदि नहा होना है और नहीं होना देना है, तो मूलभूत दृष्टि को स्पष्ट अपने मन में पिठाना और स्वयं उस पर आलस होना हागा।

जगह-जगह से सुनता हूँ कि कम्युनिस्ट दशन तो ठीक है, कम्युनिस्ट उपद्रव ठीक नहीं है। मुझे लगता है कि कम्युनिस्ट उपद्रव आर कम्युनिस्ट पोचा की तो फाइ चिन्ता हा नहीं है। उनमें रत्तीभर शक्ति नहीं है। लेकिन दशन के रूप में कम्युनिज्म हमार मन में जगह पा सकता है, ता निश्चय है कि सिर पर एक रोज उसका अधिनायक भी सवार दागेगा। कारण, यह दशन नहीं है, धम नहीं है, अक्रम नहीं है। यह प्राप्राय है, यह धमाप्रह है। धम की सिद्धि यहाँ कम में है और दशन का फलित भी कम में है। ऐसा कमवाद अगर हमारी थडा में बैठ सकगा ता हम एक दिन कम के पुत्र (ओटोमेन्स) होंगे और सामुक्त लेकर कम-धारराने या मननर अपने अस्तिरग की जमात लेकर हमसे कम दगा कर रहा होगा। कम खन तक धम प्रेरणा से धर्तव्य (अथात् अक्रम) के रूप में हमार द्वारा नहीं होगा, प्रत्युत आकाक्षा में आम्रहृष्टक फल नात्ता बनकर हम उसे कर रहे होंगे, तब तक निम्नले रात्नीतिश की पाटियाँ आपस में

खांचतान और कोलाहल मचाती हुई, अदल-बदलकर हमारे ऊपर स्टेट का नाम पर शासन करने का दंभ रचती ही रहेंगी।

अहिंसा यह नीति है जो समाज का ऐसी आन्तरिक और सहज मुख्यवस्था तक ले जायगी जहाँ शासन को अतिरिक्त परिग्रह के रूप में टिकने की आवश्यकता न होगी। व्यक्ति स्वेच्छा से श्रमिक होगा। अतः यह स्वतंत्र होगा, सहानुभूतिशील और सहयोग परायण होगा। संक्षेप में व्यक्ति नैतिक नियम से चलेगा और समाज 'स्टेट विहीन' होगा।

किसी भी दूसरी पद्धति या तर्क से चलकर हम उस अवस्था में भग्नके बिना न रह सकेंगे, जहाँ व्यक्ति केवल एक होगा और वह अभिनायक होगा और व्यक्तित्वशाली केवल एक दल होगा और यह शासक दल होगा शेष सब मनुष्य केवल अन्न और औजार होंगे।

अहिंसा का नाम हमें रिभीयिका से बचा न सकेगा। अहिंसा का काम ही उस दुस्मभावना के स्थान पर हमारे लिए एक उज्ज्वल मरिच्य का निमाण कर सकेगा।

कांग्रेस को और कांग्रेसी सरकार को इस विश्वास के प्रकाश में अपने को फसना और संभालना आवश्यक है।



६

अपरिग्रह

सच छोड़ो

घमें वह जा धारण करता है। उत्पत्ति का, विनाश का अरु उन दोनों से युक्त घुन को वही धारण किये हुए है। अतु जलित वं साथ और निन्द ब्रह्माण्ड के साथ जिस सूत्र के सहार अनिता न शिरोवा हुआ है वह ह घम। स्थिति में गति अरु गत म स्थित यदि सम है ता घन के कारण। जो है उसके होने म कारण न्त घन ह।

इससे ता घम से छुटी चाहत ह वे घम गुण से नास्य हा रुकने हैं, पर घम-तत्त्व से युग कमा निनी का मि नहीं सतता। पहा तक कि नानिक अनगान नामिका का अना घम रना बैन्टा है। पश्चिम का उपयोगाद आर समाजवाद चच से या स्व मरि स छुन्ना पं ले पर वह भूला है यदि मानता है कि इस तरह घन से हा वह ग जाता है। मंदिर, मन्दिद अर गिरज का तादर उमका वह पाग्या का अत्यल वना गेने से घम नहीं टूटा, के एक स्वता का गग जन बान में भूरे दक्षता का ही प्रतिग कर दा जाता ह। पश्चिम का नन घन है गामन घम। जनका रता है गे। उस गे-दव का पून में गे ग्राहुति पनी उवनी वलि पुग-युगंत स दूरे निना दठा पर नहीं चटा होगी। पर इन् जाधुनिक दस्ता का जुल गों म वितन प्रन्त नर रत का अभियक मिग आर कितने अरुन नर-नों जी अचना, इयता दिग न है। भाषा ५. र स अमलित न र नहीं पं ताला। इकाए अनुक शब्द पर साथ करने की आ-वता नहीं है। घन नहीं मिग, तहा मि उदता, इसका गीश कारण यह है कि हात हुए परिवतना के मध्य वह घुन है। व उस चिन्ता किदान्त का नान है ज नान को अभियनि आर उके विकास को साधता है।

बीच-बीच में जो मुधार के या बिनाग के आन्दोलन हुए वे धम को नहीं, धम के अपलाप को, उसके व्यभिचार को मुधारते या मिटाते थे। असल में वे उन समयों में प्रचलित लोफहण धमाभासों के बीच सत् धम को प्रतिष्ठित करने के हेतु से हुए थे।

ऐसा जो धम उसी की महिमा हमारे गाँवों में जगह जगह गायी गयी थी। जहाँ धम है वहाँ धेम है। धम गण्यता है। धम के धण से मय का पहाड़ टलता है। धम की रक्षा का हाथ जिस पर है वही सुरक्षित है। श्वादि।

मर लिए सचमुच धम से गहरा शब्द दूसरा नहीं है। हमारे जीवन में कद मर है। हमारी माया के अधिकांश शब्द उसके व्यावहारिक मर से नीचे नहीं जाते। वे नित्यप्रति के स्थूल व्यापार तक ही संगत हैं। जीवन मम उनका सहारे छुआ नहीं जा सकता। किन्तु धम शब्द स्थूल व्यापार से शुद्ध अप्याम तक सब स्तर में एक-सा नापक है। मृदु धनचारी वाले पत्थर पर सिद्धर पातकर अपना धम का काम चला लेते हैं। दार्शनिक हवा से भी यारीफ यारीभियों में उतरकर धम की याह नहीं पाते। यही मेरे निकट उस शब्द की विशेषता है। यह सब को मुक्त है फिर भी अगाध पाण्डित्य के बल से भी उस शब्द की सम्भावनाओं का पुराया नहीं जा सकता। इसी से उसकी जगह दूसरा शब्द चुन कर स्वीकार करना में मुक्त निगम है। पश्चिम से वह 'इम' चले हैं और नये-नये भी निकलते जाते हैं। यक्षीयनादग के लिए नयी-नयी संज्ञाएँ गढ़कर देना करते हैं। फोड़ धम की जगह ह्यूमेनिटी (Humanity), फोड़ यूटीलिटी (Utility), फोड़ फ्रैटरनिटी (Fraternity), फोड़ लिबर्टी (Liberty), विश्वबंधुत्व (World Brotherhood) आदि-आदि संज्ञाओं को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। मरे मत से इन शर्तों में समार याही है। ये अधूरे हैं, जगह पन्ते हैं और बहुत जल्दी उनको निमी मिगण के सहार धामन की जरूरत हो जाती है। ये शब्द हमें एक-दूसरे से जोड़ते भी हों, समष्टि के साथ उनका सहार याग बनना नहीं हो सकता। धर्म समष्टि

के प्रति जिस अभिन्नता का संवेदन भीतर लेकर जन्म पाता है वह धर्म से नीचे किसी और शब्द से व्यक्त नहीं हो सकती।

इस तरह यदि मैं कायल हूँ तो एक शब्द का और बड़ है धर्म। लेकिन जहाँ कोर नामिकता नष्ट पहुँची वहाँ गीता की यह पक्ति जाती है

‘सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज’

धर्म नहीं छूट सकता, फिर भी गीता ने कहा कि उसका भी छोड़ दो। किसके लिए छोड़ दो? मेरी शरण में आने के लिए। ‘मैं’ कौन? ‘एकम्’ जा एक हूँ। सब (धर्मों) को छोड़ो, एक (मुझ) को लो।

धर्म के विवेचन के बीच गीता की इस पक्ति को धर्म नहीं भूलना होगा। इस पक्ति के सार को भूलकर धर्म को पकड़ने से अधम हाथ लग सकता है।

हम तो जानते थे कि जा अभिन्न है, जो एक है और सबव्यापी है, धर्म जिनके हैं उसी की राहें हैं। पर गीता ने कहा कि उन्हें भी छोड़ने को उचित रहा। मुझे पाना है तो उन्हें छोड़ना होगा।

ध्यान रहे कि यह नास्तिक का वचन नहीं है। नास्तिक का शास्त्र यहाँ तक पहुँच नहीं सकता। यह चेत्तारा तो अपनी नास्तिकता के धर्म से बंधा है। गीता का यह वचन मुक्त पुरुष का वचन है। और उनमें जो सत्य है वह इहाँ शब्दों में आ सकता है, क्योंकि वह भाग्यतीत है।

आज जब कि पश्चिम से शका का प्रथम शौका आया है, जन अदृष्ट बुद्धि सय आदर्शों को चीर फाड़कर भ्रष्टा को असम्भव बना देना चाहती है, तब धर्म के माननेवाला को जैसे चुनौती ही दी जाती है। पश्चिम को उन्हें जवाब देना होगा। जवाब तर्क का काफी नहीं होगा। क्योंकि तर्क से तो शास्त्र भंगे पड़ें। और पश्चिम उन सय शास्त्रों को अपनी आलमारी में बन्द दिखला सकता है। जवाब इसलिए जीवन से ही लिया जा सकता है। और मैं मानता हूँ कि जा सच्चा धार्मिक है, यानी ‘मामक’ के प्रति जिसका सम्पन्न सम्पूर्ण है, उसका जीवन पश्चिम को चुप करानेवाला जवाब ही लायगा।

गीता की यह वाणी कि सब धर्मों को छोड़ो और मुझ लो, प्रबल-से प्रबल सन्देहवादी को भारी पड़ सकती है। वह इगको नष्ट पचा सकता। वह तथा-स्थित सन्देहवादी और बुद्धिवादी असल में अपने माने हुए मत विश्वास से चिपका हुआ है। गहराई से देखा जाय तो वह अपने मोह में कहीं अधिक आघ है। वह भ्रमा नहीं है इसी से उसे मोह पहना पड़ता है। वह तो इश्वर विश्वासी ही है, जो अपने को अथाह म छोड़कर वह सबता है कि म कुछ नहीं मानता क्योंकि मैं उस एक को ही मानता हूँ। वैज्ञानिक सत्य की अथवा आध्यात्मिक सत्य की उपलब्धि के लिए यदि कोई व्यक्ति अधिकारी और समय हा सकता है तो वही जो कह सके कि म सब छोड़ दूंगा ला, मने मय छोड़ दिया ! यह शक्ति अपने का बुद्धिवादा, शकावादी कहनेवाले लोगों में हो कैसे सकती है ? असल में ये अमुक मतवादी ही नहीं होते प्रत्युत धनज्ञान में उस मत को अपनी कठोरता म 'पय बना लेनेवाले होते हैं।

यहाँ एक बात की आर ध्यान लिखा जा सकता है। गीता में धर्म का छाड़ने के लिए नहीं कहा, धर्मों को छाड़ने के लिए कहा है। वहाँ बहुधचन का प्रयोग है। यानी अमुक नामा से चलनेवाले अथवा अमुक धर्मों द्वारा मान जानेवाले जो अनेक धर्म प्रचलित हैं व अपने आप में माय और इष्ट होकर भी एक स्थिति म जाकर मानो पीछे हट रहेवाले हैं। जिसमें दिधा है ही नहीं उग एक धर्म की राह म, द्वैत और अनेकता पर चलनवाले अनेक धर्मों का बीच म ही हट जाना होगा। गीता के मत्र का यही अभिप्राय है।

मैं मानता हूँ कि जाहिरा जा धर्म के नाम पर भिन्नता, अनरन और कलह देखा जाती है, उग्रम नाम ही धर्म का है। असल में ता उग्रके मीतर कारण राजनीतिक होते हैं। राजनीतिक से मतलब स्वाय प्ररित। क्योंकि धर्म में ता सग स्वाय का भिन्नता हा हाता है। गीता म ही नहीं सब धर्मों म एम वाचन मिला करैगे। परन्तु फिर भी यदि धर्म के नाम पर भिन्नता-बन्दी और दैगनस्य भिन्ने ता जान सगा चाहिए कि मू धर्मा

देशों के प्रति अभावधानी ही उसका कारण नहीं है, यन्त्रि गहरे में दुःख हुआ कहीं निश्चित स्वाय ही उसमें कारण बना हुआ है। जिसके सहारे गुप्त या गिरोह घाम कर रखे जाते हैं, गीता में ऐसे नामधारी घमों को ही छोड़ने के लिए कहा गया है।

सच यह है कि प्रभु एक है। उसका परम पिता कह तो भी उसकी निकटता हम पूरी तरह जतला नहीं सकते। वह भीतर रमा हुआ है। वह घट घट व्यापी है। वह पिता है, माता है, बन्धु है। जो कहा उसके लिए योडा है। वह एक है, क्योंकि वह कुल है। उसका सिवा प्राणी को कुल और नहीं पाना है। उसको पाना भी भाषा की अपूर्णता के कारण कहना होता है। वह अलग भी नहीं है कि उस पाने कहा जाना हा। सच पृथिवे तो उसमें स्वयं तो जाना है। वह एक ही साथ परमात्म-व्यम है। आत्मा तो दो ही नहीं। इस तरह शेष में अपने को पाना और अपने म शेष का लेटना, यही परमात्म प्राप्ति की साधना है।

मेरे निकटता यह स्पष्ट है कि किस तरह इसी साधना के वृत्त में समाप्त-सेवा, राष्ट्र-सेवा, मानव-सेवा इत्यादि सामयिक और ऐहिक धन कृतव्य अनायास समा जाते हैं। यह साधना लौकिक क्रम से विमुक्तता नहीं घटलाती, प्रत्युत लक्षकर्म की दस्ता देती है—

‘योगः कर्मसु कौशलम्’

किन्तु योग में कर्म-सुकौशल अपने आप में इष्ट नष्ट है, वह तो उसका अनायास प्राप्त फल है। योग में यदि शक्ति की आर से चढ़ा है, तो वह सीधे समाज के राष्ट्र के या मनुष्य के प्रति नष्ट है। उल्टि समप्रता और एकधप्रता के साथ परमात्मा के प्रति ही है। इधर म कौन-सा समान, कौन-सा राष्ट्र, कौन सा इतिहास ऐसा है जो सम्माना हुआ नहीं है। सचरा चर जगत् सन उसकी झोंकी ही ता है। हाँ उस कर्मनालीत विराट् के समान वह झोंकी अत्यन्त स्वयं है। आर सचमुच जितना कुल हम जानते हैं, जान सकते हैं, कर्मना में हा सकते हैं, कुल उससे बाहर नहीं, उसी का अंग है। इयलिए घम की भाषा यह नहीं कहती कि समान के लिए

मरो, दश के लिए मरो, वह तो कहती है कि यशाथ जीओ। अर्थात् यश के लिए तो तुम हो ही, और कुछ सम्भव ही नहीं है। पर उस यज्ञ के समर्थन के लिए समाज या राष्ट्र या विश्व को क्यों अपने अधिकार की बुद्धि से रीचकर लाते हो। यज्ञ का धर्म तो मैंने ही तुम्हें दिया है। मने जो तुम्हें जीवन दिया है, उसके पीछे तुम्हें विभ्राम देने को मेरी भेजी मौत भी आ ही रही है। सो इस तरह मरे हाथों आज भी तुम मरने के लिए ही उत्पन्न हो रहे हो। पर वह मरना नहीं, मुझ में तुम्हारा लौट आना है। इसलिए तुम्हारा इसका सिवा कुछ भी और फायदा नहीं रह जाता कि तुम मेरी ही याद में जीओ कि मुझ में खुशी से लौट आओ।

हमारी लौकिक बुद्धि, तक बुद्धि, शायद इस बात को नहीं समझ सकती। उसे बलिदान के लिए छोटे-मोटे नारे चाहिए। राष्ट्र चाहिए, इनफ्लार चाहिए। यशाथ जीवन अपने-आप में कम समझ में आता है। प्राति क्षण समझ में आ जाता करता है। पर लौकिक बुद्धि का भी इसमें दोष क्या दें, वह अपने बस तक ही चल सकती है। वह धर्म की भाषा को समझ की भाषा से बदलना चाहती है। वह अपने लिए ऐसा कर सकती है—यानी सामयिक आदर्शों की भी उपयोगिता है। पर प्रयाजन की भाषा से अनुभूति की भाषा जब कि भिन्न होती है, तब सत्ता गहरी और सखी भी होती है। तनिक रहस्यमयी सा तो लगे पर उसमें गम्भीर और प्रचुर अर्थ भरा रहता है। वह इतिहास के युग युग में जातियों और संस्कृतियों का प्रेरणा देती है। वह ही मानव जाति की अधर घाती है। इस समझ में न बँधने पर भी उस भद्रा से स्वीकार ही करना पड़ता है।

धर्म की राणी स्वरूप ने अरूप, स्थूल से सूक्ष्म, पदार्थ से आत्मा आर जगत् से ईश्वर की ओर जाती है। हम जिन कर धर्मों का अपनी दुनिया में जानते हैं—जैसे हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम-धर्म—वे भिन्न भिन्न रूप में अलग काल, परिस्थिति और देश में उग निकलकर सबव्याप्त के आच्छन्न के प्रयास हैं, जो मानव-जाति के अन्तःकरण में

बहुत गहरे में बसा हुआ है। विविधता दश और काल की पृथक्ता के कारण उनमें आया, पर वह एक ही सपना लक्ष्य हाने से उन सब में अन्तर्गत एक-सूत्रता भी है। पर जहाँ उन सब में आपार हुआ वह सूत्र दिग्वाद् न दे वहाँ व्यक्ति क्या करे ? इसके लिए गीता ने यह हा दिया— इसको भी छोड़, उसको भी छोड़े, और दोनों जिसके लिये बने ह उस 'मुझ' का ले। यह 'मुझ' है, परमेश्वर। दण्डन की भाषा में उसे ही कहें परम-सत्य। और गीता की उस नीति को म अपनी ओर से संज्ञा दूँ तो यह है, अहिंसा।



दिग्घर

मनुष्य आता है ता यत्र राय नहीं लाता । जाता है तत्र भी यत्र उसके साथ नहीं जा जाते । वस्त्रों का उपयोग इसके बीच के काल के लिए ही है ।

यत्र का समर्थन दो प्रकार के कारणों में है, एक दैहिक दूसरा सामाजिक । यत्र सर्तों-गर्मी से हमें बचाव है और रुज्रा टँकने के काम आते हैं ।

दैहिक कारण का तहाँ तक सम्बन्ध है यत्र की उपयोगिता साफ है । सर्तों गर्मी से ऋतुप्रभाव से आते ही है । फिर भी शीत से बचने के लिए क्रिमी का पत्र और दूसरे को ज्यादा कपड़ों की आवश्यकता होती है । पशु-पक्षी बिना कपड़ों के ही काम चलाते हैं । जंगली ह्योग या जंगली अन्धस्था में मन्व्य लोग छाल और ताल से काम लिया करते थे । उनका शरीर की सहिष्णुता और अनुकूलता अधिक थी । पशु-पक्षियों का शरीर ऋतुओं के प्रति अनायास भाव से अधिक सहिष्णु है और प्रकृति उन्हें इसमें मदद देती है । मनुष्य म शनै शनै गेह की रंग क्षमता का हाथ हाता गया है । ऋतुओं का अन्ध बह अपने खुले तन पर सहन नहीं कर सकता । धूप और हवा से बचने के लिए उस यत्र की आवश्यकता है ।

इसी का दूसरी भाषा म मयता का निम्नण करते हैं । उम विकास के साथ दह का हाग हुआ है । मनुष्य, कहते हैं, उस विभाग में उत्तमतर सामाजिकता प्राप्त करता गया है । और सच पृथिवी तो यत्र की आवश्यकता के पीछे देखता उतनी नहीं गिजनी कि सामाजिकता कारण है । ऋतु तो नमन तन पर सह भी ही आव, पर सम्यता तन को नमन नहीं रहने

देती है। वस्त्र इस तरह सर्दी गर्मी के लिए कम और मजबूत व्यवहार के लिए ही अधिकतर आसानी है।

यों भी दीखता तो यह है कि आज की मजबूतता मुक्ततया वस्त्र पर निर्भर है। यंत्रिया कपड़ों सामाजिक उत्था के लक्षण माने जाते हैं। वस्त्र में कर्मगत टांगन के लिए जाने और चादी के तार दिने जाते हैं, चाहे उनका रंग ता का ठनिक भी सुन्दर न होता है।

इस वस्त्रमयी लौकिक सम्यता का गहराई से समझना चाहिए। तब तब जान पड़ेगा कि उसके जन्म की भाँति है। वहाँ सामाजिकता की सिद्धि नहीं, बल्कि गोपनीयता की वृद्धि है।

सामाजिकता निम्नलिखित व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है। मिला-जुलकर ही यहाँ काम चल सकता है। सहयोग गुण अनिनाय है। व्यक्ति एक पैदा हुआ है, पर इसलिए कि यथासंभव क्रिया के भी प्रति वह दूसरा नरत्। तभी सुखकार ने कहा— परस्परोपपदाजीवाताम्। एक दूसरे के काम आना जीव का लक्षण है। मनुष्य के इस स्वभाव में से सामाजिकता को बम मिला।

इस सामाजिकता के उदर के साथ वस्त्र का उदय हुआ। पशु-पक्षी वस्त्र की आवश्यकता से मुक्त हैं, क्योंकि उनमें स्वच्छ सामाजिकता नहीं है। उनमें रक्षण और भयादा की भावना ही नहीं है। वे स्वच्छ हैं। मनुष्य भयादाशील प्राणी है। उसका समान दे, जिन्में भ्रमों हैं, छात्र-बड़ हैं, मान सम्भ्रम है। मनुष्य समान में सरने अधिकार परापर नहीं हैं, वस्तु यह भेद से उनके अधिकारों में भी भेद है। उनमें परिवार भावना है और सम्बन्धों में शान्त्य और पवित्रता की कल्पना है। शिष्टाचार से उनमें गुरु-शिष्य का भेद है और एक चरण छूता दूसरा माथ पर हाथ गगन उठे आशीर्वाद देता है।

यदि ज मवादाशीलता का उद्भव आर विनाम है, यही क्या मनुष्य जाति की चित्त संस्कृति और मजबूत नहीं है? कृती के साथ मन्त्र की संस्था न विकास पाया है।

इस दृष्टि से ब्रह्म के विरुद्ध कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। वह एक जीवन के लिए अनिवार्य है। उसने मयात्वा शीलता और शुचिता का रक्षण होता है। यह वासना पर आवरण है। पर नहीं, ब्रह्म यहाँ तक नहीं रहा है। वासना को टँकने नहीं, लिखाने या बंदाने तक का साधन यह होने लगा है। ब्रह्म की सभ्या धर आकर तो अब रोग की गॉट हो पड़ी है। कारण है मेरी समझ में हम मनुष्यों का समाज को अपनी परिधि मान रहना और समष्टि-दृष्टि को भूल बैठना।

समाज का परिधि मानकर चलना मेरी दृष्टि में भ्रम है। मेरा मानना है कि उसका कारण हमने बहुत राग अपने बीच घसा लिये हैं जोर सभ्यता अपना मौलिक आवश्यकता से दूर पढ़कर इतनी कृत्रिम होती जा रही है कि वह पागल बन उठे है। आवश्यकता है कि उस सभ्यता को फिर अपने मूल आदर्श से जोड़ा जाय और उस रसस्थ किया जाय।

समाज में मान और मान्यता प्राप्त करना यदि उन्नति का लक्ष्य है तो ब्रह्म का आवश्यक रूप में इसका साधन बनाया ही जायगा। तब मनुष्य की चर्चा ब्रह्म की सभ्या को जटिल बनाने में लगी। यहाँ तक कि वह एक समस्या और गायन का केन्द्र बन रहेगी। लोग हर क्षण नया फंशन निकालते आर बीच क्षण का फंशन पुराना पड़ जायगा। नतीजा यह होगा कि लोग उस दाँद में धाँसे का दर पास रखकर भी यह सताप न रख सकें कि यह काफी आधुनिक है। हर कपड़ा क्षण चलने के साथ पुराना पड़ता जायगा आर नये की मांग होती जायगा। जिज्ञासु और शत्रु के नये-नये आविष्कार होंगे और जाने कितने न लोगों की बुद्धि शरीर में लगी रहा परगी। इसका कारण दूसरी जोर ब्रह्म का अकाल होगा आर राज और ज्ञान में उन लक्षण का भाव नीयता न पायगा।

यह चमक-दमक की आसुरी सभ्यता होगी और यहाँ संभव है विचार आगमान को चूमना चाहे, हीन माली आर छाया-चौकी से धर्मों का मन्त्र जायगा कि उपर अनेक नंग रह, जिह रहने का गार और राने को कौर न हो।

यह सभ्यता आदमी को परिग्रह के संबन्ध में मुग्न दिग्वायेगा और अन्तस्थ सहानुभूति और अहिंसा की भावना को चूसती जावगी। मनुष्य तब अपने स्वाथ में रत होकर शोषक बनगा और अन्न को सभ्य मानेगा।

सामाजिकता को अन्तिम समयन और उसी को चरम धम मानकर चलने में यह सतरा है ही। भौतिक दृशन उस म हमें ला पकता है। अगर दीम्बनेवाला पण्य ही सच है तो उसका भोगोपभोग जीवन का चरिताय बनता है। तब पदाथ मात्र मान हाता है अर मनुष्य उनका भोक्ता टहता है। इस श्रुति में से स्वाथ का महत्व मिता और सम्पत्ता आदम्बर का सचय हाता है।

किन्तु मैं मानता हूँ कि सामाजिकता से धिरा इस श्रुति में सञ्ची सामाजिकता का बीज नहीं है। समाज म उसस विन्म ग्रन्थियाँ पढती ह। विरोधो म्वायो का लकर उनस बग, मनुह आर सन्तनत बनती हैं जो अपनी अहन्ता में दूसरो से स्पटा ठानती ह। इसस विग्र और विस्फोट को जन्म मिता है।

वे लोग जो लोकिकता को परिभाषा म ही धन का दखने हैं जाने अनजाने इस स्वाथ विग्रह की आँच म दहन पहुँचात ह। जते आवश्यकता है कि उस आत्मा को हम सग स्मरण में रक्व जा समाज पर आकर नहीं दकता, आगे समष्टि तक जाता है जो अन्ना अनुभूति म मानवतर समाज को भी वैसे ही अपनाता चाहता है जैसे मानव-समाज का।

समाज के लिए वन्म आवश्यक है, किन्तु समष्टि के पत्र में उस वन्म का मन्ग क्या अथ रह जाता है? ग्य क्या पृथिवी के प्रात अपने को टक ले, या पृथिवी सूरज से घूँघट ल ले? आकाश के चमकत तार, दहती वायु, गुला आकाश, श्मन् पत्र और तरांगित सागर—क्या व सय भी वन्म आते और पढ़ने? तत्र वह पुछा हा मन्ग कसे अपन का कपन में मूँटे कि जिन् उन सभमें स्थान और सम्पन्न हा रगना ह। दिगत-वर्गी अध्वर उसे अध्वर है। कान्हा, जो तन का धूप के म्वास्थ्य अर दायु की अयन से बचित राता, कौँ उसक लिए आवश्यक है? जिसे वायु के साथ

यहना और वृष के साथ मिलना है, जिसके प्राण अपनी यात्रि में कोई परिधि नहीं मानते और शोरान्त को छुए बिना जिसकी सहानुभूति चैन न पायगी—येना मह शहिसक पुष्प किससे बचने को बपड़ पहने ? जिसे सत्र के प्रति खुल रहना है, सत्र को अपने में ले लेना है, वह कैसे बस्त्र का व्यवधान सह ? क्या बस्त्र ऋतुओं से और सत्यताआ से अपने को बचाने का निमित्त ही नहीं है ? क्या वह भीति का प्रतीक ही नहीं है कि जिसका सामाजिक रूप लज्जा और दैहिक रूप सदी-गर्मा है । लेकिन वह कि जिसम निग्लि के प्रति प्रीति है, जो त्रतुओं का आह्वान करता है और प्राणी मात्र के प्रति जिसका हृदय बरुणा से खुल पडा है, उसम किसके प्रति भीति शेष रहे कि बस्त्र की आवश्यकता हो ?

यह दिगम्बरता का आदेश असामाजिक नहीं है, यद्यपि सामाजिकता से सीमित नहीं है । सामाजिक होकर मानव प्राणा समाप्त नहीं है । अपने जैसे दूरे मानवा के साथ सम्पर्क साधकर ही वह परिपूर्ण नष्ट हो जाता । आगे भा उसरी सम्भारनाओं को निस्तार पात जाना है । उसे धनरूपति से, वायु से, पृथिवी से जल से, ऋतुओं से भी सामान्य प्राप्त करना है । उससे लिए जगत् मानव-जाति तक परमिल नष्ट है, समूचे ब्रह्माण्ड के प्रति उसमें निमग्न है । ऐसा पारुपमय पुरुष समाज से पार समष्टि म मिलने का प्रयास दीवता है आर मानव को ही नहीं, निरितल जगत् का उसका जामगान प्राप्त होता है ।

यह मुक्ति का आदेश है । यह धार्मिक उपयोगिता की सीमा रेखाआ म आगे जाता है । यह लोकोपकार की भाषा की परब में नहीं आता और आत्मसंन्य की भाषा ही इसे छू पाती है । कारण, एक तो भी सीमा है आत्म ही अभीम है । जिमने आत्म का पाया उसे कुछ पाने से न रहा । जिमने अपने तब कुछ न रखा उसने सत्रको सत्र दकर गन्ना सत्र पा लिया । यह आत्म-साधना अर आत्म-मुक्ति का आदेश सत्र लोकेन्द्र-व्यापण का प्रकाशन है । न । हा उपयोगितावादी समाज दान आर तनुगारी एक प्रतीयता समाज म विषय लान-बगल नहीं

करोड़पति अरबपति और दीन दरिद्र बन रहा है। प्रचुरता और अभाव दोनों साथ-साथ बढ़ रहे हैं।

ऐसे समय दिगम्बरता का ही आदर्श काम आ सकता है। वह अपरिग्रह धर्म का चरम उत्कथ है। आवश्यकता बढ़ाकर रहम समस्याएँ भी बढ़ाते ही हैं। इस तरह बंधन बढ़ता है और मोक्ष हटता है। लक्ष्मण और करोड़पति, राजा और सम्राट् क्या अपने लाग्न-कराड और राज साम्राज्य के स्वामी होने के बहाने कैती ही नहीं हैं? क्या वे आजाद हैं, कि जैसे पक्षी आजाद होता है? क्या उनका वैभव जकड़ और बढप्पन बोझ भी नहीं है? और इधर सन्त हैं कि सब घर उसे समान हैं, सब जन उसके अपने हैं और काइ परिधि उसकी आत्मा पर बाधा बनने क लिए नहीं आ पाती है।

अपरिग्रह का यह आदर्श जितना अनिवाय है उतना दुःख भी है। धन्य ह वे कि जा उस तक पहुँचते हैं। वे, कि जिनके लिए यह साधना नहीं अनायासता है। वे सचमुच भरे लगे धन्य हैं कि दिगम्बरता जिनकी अहिंसा की अभिव्यक्ति है।

जमनी और जमनी आदि देशों में नम्रता क प्रयाग हुए हैं। पाया गया है कि दैहिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए नम्रता गुणकारी है। लेकिन विचार का यह धरातल मेरे लिए अप्रस्तुत और अविचारणीय है। जिस दिगम्बरता क आदर्श की बात ऊपर कही, उसकी भूमिना एक दम भिन्न है। वह आध्यात्मिक है। वैयम्य की त्रिगम्बरता स्वास्थ्य के शौकीन नागरिक की नम्रता नहीं है। तीयद्वी दिगम्बर में अहिंसा की, हृत्य की, अपार करुणा की अभिव्यक्ति है। उसमें अभाव ता है ही नहा, एक परिपूर्णता है। उसमें शोक या आग्रह नहीं है, एक आन्तरिक अनि यायता है। आकाश का किस अतिरिक्त बरुन की आवश्यकता है? उसी तरह धूप को और चाँदनी का, दिन का और रात का किस आवरण की आवश्यकता है? यह उह नियम नहा, निवला है। इसी तरह त्रिगम्बर वैयम्य-स्विति का वग है। अतः उग त्रिगम्बरत्व क पत्र में साधारणतः

के तर्कों की संगति मुझे तनिक भी नहीं दीखती है। मेरा मानना है कि कि रिदेशों की नग्नता के प्रयोग विंचित असामाजिक प्रवृत्ति के सूचक हैं, जबकि सच्च योगी की दिगम्बरता का आदर्श विश्वजनीन हित-साधना में से ही प्राप्त होता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आदर्श का मूल्य स्वतंत्र है। यतमानता की त्रुटि उस पर आरोप बनकर नहीं जा सकती।



अपरिमह और टूस्टीशिप

एक भाई ने अपरिमह की बात उठायी। क्या कि संस्था के लिए भी धर्म अपरिमह क्यों न हो ? चर्च के पास बचा हुआ धर्म नहीं चाहिए तो संस्था के पास कोप क्यों चाहिए ? महीने के खर्च से ज्यादा होना ही गलत। उपयोगी और प्रिय बनकर जा जीयेगा उसे साधन की चिन्ता न रहेगी। संस्था के लिए भी इस नीति में अपवाद नहीं हो सकता। आगे से हम धर्म की प्राप्ति का धर्म में ही खर्च कर देना चाहते हैं, कुछ भी धर्म नहीं छोड़ना चाहते। इसमें हमारी भद्रा की परीक्षा होगी और जड़ता को जमने का अवकाश न रहेगा।

यह भाई साम्प्रदायिक है और उनकी बात मुझे अच्छी लगी। पर निश्चिन्तता मुझे नहीं हुई। पृष्ठ, 'देखिये आप गाला चलाना चाहते हैं। उसने लिए जगह कहा तो हागी। यह होगी भी खिली की। यह धर्म से मिश्रणी या दाम से। अब जगह या मरुतन तो परिमह ही है। अपरिमह में उसने साथ क्या करना होगा ?'

भाई को यह प्रश्न शायद बेकार तब मालूम हुआ। उन्हें प्रतीत हुआ कि धर्म इसी तरह खिली-न खिली चोर मार्ग में हमारे विचार में गुप्त आया करता है। उसके साथ हाता है। संस्था स्थापित-स्थापित हो जाती है। यानी संस्था का स्वयं एक स्वार्थ धर्म आता है। इस तरह अपरिमह की बगल चौकसी में धर्म बिना गति नहीं। धर्म-धर्म सब निष्कलत ही आता है। नहीं अगर निकले तो गलत क्या, प्रयोग ही सब छोड़ द्यो इत्यादि।

भाई में उल्लास था। पाग देगा मा धर्म। अपने आदर्श भाव में निर्माण थे। इस समझे भरे मा में प्रयोग का उदय हुआ।

यह बात समझ ली है। दमरु धन की नगरी है। निर्धन अन्ध तो चहों पहुँच नहीं सकता, पहुँचता उसका पता नहीं चल सकता। यानी हम दोनों वहाँ अपरिग्रह का वात चला सके तो इस आधार पर नि धन नाच था। धन बिना दमरु पहुँचते कैसे? कद फल मूल जग तरसते हैं कि कोइ उह स्वीकार करे, ऐसे मन म तो हम थे नहा। आज ऐसा बन कहीं वचा है इसका भी निश्चय नहा। इसलिए जान पना नि अपरिग्रह की वात धन का है, धन के कारण यह धम है।

अपरिग्रह में सुख आन्धा है। हा ना कसे नग। कारण निमा को कुछ या म अपना कहें ता यह सिक्का कब तक / लाया म क्या साथ था और छ भला क्या जा सकता हूँ? जिन्दगी का सफर अकला है आर वे साथ। इसलिए 'मेरा यह' और 'मेरा वह' मानना भ्रम हा है। भ्रम पीछ सकता हूँ, पर कं घनी? अन्त में ता उसे टूटना है। इससे पना सं भ्रम न रहना क्या समझलारी नहा है? अपरिग्रह याना 'मेरा नहा'। इस 'मेरे' के भाव का हम भ्रम से सब कहा स उगा ल, ता उस अपरिग्रह का सिद्धि माननी चाहिए। जितना 'मेरा हाग उतना म निवरा अर उल्ला रहूंगा जितना कम रहगा उतना स्वतंत्र अर तन्त्र रहूंगा। यह बात साधा है आर अमाध है।

पर फिर भी दिग्भ्रत होती है। उस दिग्भ्रत का पकड़ना है, टालना नहीं है।

धन आत्मा की चिन्ता करता है अर उसी आर से चला है। आमा क्या, यह कहन नहीं बनता। कहन चलते हैं, ता नगर की माग हाथ रह जाती है। जा है, वह नति है। इससे धन का भाग निधि निधि की हो जाता है। कर्ण निश्च द्वारा विधान करना है अथवा विधि बनता हा नहीं। सत्य ने, प्रज्ञ से, या उस प्रकार के निगुणानक स्वर्ग भावों निगी सूरे गुन से आगे चलते हा नगर गुरू हा जाता है। जैसे अहिमा, अपरिग्रह, अन्तेय, अमाध आदि।

'अ' निश्च ही यहाँ सूचक मान है। हिमा का अभाव अहिमा नहीं

है, न वस्तु का अभाव अपरिग्रह है। ऐसा हो तो धम अभावामय हो जाय। 'अ' अभाव का नहीं, मात्रा की असम्यक्ता का चोतक है। यह ज्ञान ही तो धम का रूप बदल जाता है। संसार से तरने का राग स्वयं संसार को तारने की शक्ति बन जाता है। तब वह प्राण-वेग को मुक्त करता है। समस्या से वह बचता नर, उसके हृदय में जाता है और वहाँ से उसे परिष्कार देता है।

अपरिग्रह नया धम नहीं है। चिन्मय होकर नया वह हो भी कैसे सकता है ? वह तो सनातन है। लेकिन जिस अपरिग्रह पर तीर्थङ्कर निज्जन धन में दिग्भ्रमर हो रहे, रंचमात्र आवरण अपने ऊपर नहीं ले सके, उस अपरिग्रह से आज का युग का गांधीजी का अपरिग्रह नया है। दिग्भ्रमर की जगह अपरिग्रह में यहाँ गम्भी होना है।

गांधीजी का दिया हुआ 'द्रुग्नी' शब्द माना अस्तर की रक्षा करता है। अपरिग्रहवादी की घात भी रह जाती है और परिग्रहवाले की ममता पर भी जैसे आघात नहीं पड़ता। सामर्थ्य विचारक इष्टीणिण उस शब्द की गिच्छी उड़ाता है। दक्षिण पंथ का विवचक भी उससे सहज अनुत्तर रहता है। यह 'द्रुग्नी' (संरक्षण) शब्द दोनों का सन्तोष और अखन्तोष का कारण है। इस शब्द की ओट में सारा पूँजोवाद मुरासित रमा है, ऐसा साम्यवादी का अभियोग है। ऊपर ध्येयवादी भी, जो तब में तृप्ति रोजता है, इस शब्द में भोग का प्रवेश के लिए द्वार खुला लेता है।

फिर भी इस शब्द को सहसा हमें पेंबना नहीं है। पूँजी विच्छेद पास है वह पूँजी का अभिमात्ता न होकर सिर्फ अभिभावक होगा, यह बात तब तक कस मानी जा सकती है जब तक निजी सम्पत्ति का ही बालू लोप न हो जाय ? और निजी सम्पत्ति का निमूलन यानी सम्पत्ति का समाजीकरण। इस विचार धारा का मन्तव्य है कि आत्मा की जार से चलकर बात का शक्ति के मन पर छाड़ देना पता है और यही मन नीपण हो जाता है। नहीं, उस उपनयन की ओर से लेना और वाक्यात्मक कानून का रूप दे देना होगा। यह साम्यवादी विचार धारा है जिगमें बात को

भावनाभित नहीं छाटा जाता। उसका कर्ना है कि उसे तो हर जन्माय से जैसी स्मरण करूंगी गुल के सदां मुकुल रहे रहने की गुलाइश है, वा कि जागे बकर रिर दानी, दयाट आर उपकागे बनने तक का मायाचार चर सकता है। नहीं साम्यवाद देगा अचक्राश न देगा। यह प्रवृत्त ऐसी बौद्धस करेगा कि जिसमें दान के नाम पर सग्रह न हा मरु।

न्य है कि सामान्य का तदु शृंगला में फही कोर कणे टीपी नहीं है। गुद आमन्ति से तो वह सरी कडी तरुगुल्य ही है। कारण, उस दृष्टि में कान् माया है, मिथ्या है। वस्तु-मात्र पर है और उसकी प्रतीति छुना है। उस अथ में अपरिग्रह पर यह साचन का निम्मा ही नहीं कि आम से न्य अनाम का क्या हाता रे। किन्तु आम क प्रति जो अनाम है, क्या वह परमात्मा क प्रति भा अनात्मीर ही है! तब तो पर माभा क अतिरिक्त भा दूसरी सत्ता का मान नना हागा। यदि परमाभा है हा वह वा अद्वैत है जिसमें वा है सर है काल एवं आकाश, वा भेद बोध में निमित्त है, तब निम्न हाकर है तो मानना हागा कि 'स्व' और 'पर' की भाग 'स्व-पर' में एक्य साधन की दृष्टि स ही है। उसका मी सांश मूल्य है, निरान्त में भेद नहीं है।

या दन तो आत्म का आर स याद दृष्टि ह, तो दान वस्तु की ओर से है। दान और दान का एकीभाव दान है। इस रूप में अपरिग्रह की कृत्यायता वस्तु स अदूने रहन में नहा है, वस्तु के मध्य छुने रहन में है। यानी वह, जो अपरिग्रह क प्रति 'अ' से आरम्भ करके उस 'अ' पर ही समान हाता है, मुक्ति लघन नहीं कर सकता। 'अ' पर वल दन से वह वल अग्ने-आप पछिद पर भी जा पन्ता है। यह आन्तरिक अनिवायता इतिहास की इस घटना में घटित देगा वा सद्यती है कि अपरिग्रह पर सर से अधिक आग्रह रागनवाली वाति, यानी जैन, मानो स्याभग निरस्पवाद भाव स आज वैभवर्गी है। आपुनिक जैन का यवदार धम संप्रद है, क्योंकि अतिरिक्त वल से उसका आदग पर

है। नैन नागरिक धनी और अनागारी दिगम्बर (तक) हैं। इस विराधाभास के मम में जाने स ऊपर की बात साफ हो जानी चाहिए।

अपरिग्रह में जब मुख्यता से हम परिग्रह समझ जानेवाले पदार्थ से अपनी आत्मरक्षा राजत हैं, तब अनजान उराकी पटागता का, जड़ता को हम महत्ता पहना रहे हाते हैं। यह मम भाव के लिए घातक शक्ति है। स्वयं चतना पदार्थ से बचन की उदा सोच सफती, वन्कि उसमी सृष्टि जीर उसमी सघटना म लगती है।

इस तरह परिग्रह के विचार को धरु के उत्पादन और निमाण के साथ चलाने की आवश्यकता और उपयोगिता प्रकट हो आती है। सब कुछ मेरा हो यदि यह मेरी वृत्ति है, तो मेरा कुछ न हो यह मेरी साधना की निशा हो सफती है। पर जगत् की समस्या है कि क्या, कितना, किस-किस का है। अपरिग्रह इस समस्या के निपटारे म यहाँ तक तो अनिवाय उदायता करता है कि यह मुझ स्वयं म दान्दार होने से बचाकर एक वार के बचाव को बम करता है। अथात् यह मुग मेरी समस्या में उत्तीर्ण करके जगत् की समस्या का स्वीकार करने याग्य बना दता है। किन्तु उगसे आगे जैसे उमना अ-कार काम नहीं दता आगे जिरका परिग्रह माना उसी पर-पन्था की समान्तीन व्यवस्था का प्रभ आता है। जाहिरा यह पन्था में अतंलग्न नहीं, सलग्न होने का प्रभ है। गहरा देर तो यह प्रभ भी अपरिग्रह धम का ही रूप है। मेरी अतरंग निवृत्ति ही उग प्रकार की प्रवृत्ति में मुझ बल दे सफती है। अन्यथा पन्थार्थ की आर से मुँह मोडकर साधी गानवाली अपरिग्रही निवृत्ति मुझ म जन्तभूत प्रवृत्ति की गनों को धुप आर अन्तत उदृष्ट ही करनेवाली है।

मैं बीज न रूँ, इगम बीज फई जाती नहीं, बीज की व्यवस्था का समार ज्यों-का त्या पडा ही रहता है। और म अगर उगसे शक्ति होर अपने को वृत्ताथ आर उग बीज की जपेगा में अपने को पकाना बना लेगा है, तो उग बीज का सहरपेना दानवाली अवयस्था का वाग्ने में मैं असमय बनता हूँ। ऐस नागरिक और सामाजिक दायित से मैं च्युत

होता हूँ। अब कोई आदमी नहीं जा असामाजिक ठहर पाये। साधु-सन्त बल्कि अधिक ही सामाजिक होते हैं। मर्यादा परीक्षण इना-गिना हा साधु को ता वमुधा कुटुम्ब है। इसलिए अपरिग्रह को पदार्थ की अनेकता में समनकर केवल नकार को साधने चलना दायित्व से उचना है।

इसीलिए आध्यात्मिक के प्रति-पक्ष में सामाजिक दृष्टिकोण को जन्म लेना हुआ। सम्पत्ति समाज की मानकर उसे अपना मानने से मैं सहज उठ जाता हूँ। 'समाज की है', इसमें यह तो गमित ही है कि यह मेरी नहीं है। ऐसे अपरिग्रह समाजवाद के पेट में हा रखा है। अपरिग्रह ही सगति समाजवाद से भी आगे है, यह बताने के लिए अपरिग्रह को समाजवाद वाले प्रश्न का हल बनाना आना होगा।

समाजवादी दृष्टिकोण लेकर चलनेवाला दण्डन तो विज्ञान भी बन गया। विज्ञान से भी आगे वह सचनेताओं के व्यवसाय का पक्ष प्रदर्शक बन गया है। उसने विगुद्ध तक-नाशित से जमा पैसाकर यथा दिया है कि सर कुछ समाज का है और इस सर को इस प्रकार सगन्त में लाना होगा। समाज का अनुशासन शासन-सम्या में मृत होगा, अपना स्वत्व सर राज्य में कटित होगा। व्यक्ति तब 'मैं' और 'मेरे' से सहज छूट जायगा। व्यक्ति की उक्ति और चेष्टा इस भाँति समाज-हित में जात होकर दृढाधता प्राप्त करगी।

“सम्पत्ति !”

“सम्पत्ति सर राज्य की होगी। स्वयं व्यक्ति सर का होगा।”

“सर क्या होगा ?”

“वह सवहार-व्यग का अधिनायकत्व (डिक्टेटोरियल) होगा।”

“सवहार-व्यग क्या ?”

“वह यग विज्ञाने पास सम्पत्ति के नाम पर जिन् धन है। धन धन की आत्मा है। यह सम्पत्ति का सामाजिक मूल्य है। इससे सर गुद धर्मिक-व्यग का अधिपत्य होगा। और सम्पत्ति धन की धराहर के रूप में सर के हाथ होगी।”

हम देखें कि इस समय तक शुद्ध रचना में अपरिग्रह की हानि नहीं है। और अकाराग्रही अपरिग्रह इसके समय कदाचित् मौन और निरुत्तर हो जा सकता है।

पिर भी हानि है। कारण, वह सिर्फ नकशा है। नक्शा की नदी में नहाया कभी नहीं गया। राज्य एक धारणा है, जैसे कि नक्शा की नदी धारणा होती है। धारणा के साथ व्यवहार आसान होता है। समूची गंगा नक्शा में हमारे अँगूठे के नीचे आ सकती है, जब कि मुझसे लारों जना को लारों वपों से गंगामाता अपनी गोद में मुलाती चली आ रही है। इससे राज्य का भी यथाथ-मानव यथाथ से कुछ भिन्न नहीं हो सकता। नाम बदलने से ही काम नहीं चल जाया करता। मैनेजिंग एजण्ट टायरबन्टर हो जाय, या हायरेक्टिंग कमिश्नर या सुपरवाइजर, या कमिस्सार्—स्थिति में अन्तर तभी आयेगा जब उन नामों से उता और धन के सचय पर बैठा हुआ आदमी लोभी की जगह त्यागी होगा। किताने का कानून उस वक्त जगदा मदद नहीं करेगा। आदमी के मन में तृष्णा बैठी होगी तो तब का शब्द उसे व्यथ नहीं कर पायेगा। इसने व्यवस्था का प्रश्न यद्यपि गणित का प्रश्न है, किन्तु अन्त में उसका मानव से सम्बन्ध है। इससे वह हृदय की, अथात् धर्म की मापा से अदृता नहीं है।

गांधीजी का शब्द 'ट्रुथी' इसी जगह हमारी सहायता करता है। धनिक धन के साथ पूरा न्याय करना चाहता है, तो उसे यथाथ में अपरिग्रही बनना होगा। धन के प्रति न्याय, अथात् उसका भरपूर हिता पयाग अपरिग्रह में आता है। आत्मा की उपासना का अर्थ धन की अग्रहण नहीं है। धन समाज-शरीर का रक्त है। उसका निरन्तर और सम प्रवाह पर ध्यान न रखना अहिंसा नहीं, हिंसा है अपरिग्रह नहीं, मछा है। साना-स्वोन्मी धातु हो सकते हैं जा सिर्फ बास्त है, लेकिन आदमी की शारीरिक और मानसिक तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति से शुद्ध होने के कारण उनके अर्थ का विज्ञान उतना व्यथ और मिथ्या नहीं है। आज

के दिन यदि अपरिग्रह में शर है तो तमी नय वह उस पर प्रभुता पा सके जिस कि परिग्रह माना है, उसे आत्मभूत और आत्म-साधक बना सके ।

अपरिग्रही ही उस व्यक्ति को हाना है जा आज सार्वजनिक धनस्रोतों का मुहाने पर है । आज का वह व्यक्ति अपरिग्रही नहीं होगा तो कल कोद अपरिग्रही उसकी जगह लेगा । कुछ और सम्भव नहीं है । मोग गिरेगा और उत्सव ही उठेगा । सार्वजनिक ट्रस्ट, जब तक ट्रस्टी अपरिग्रही न होंगे, केवल सार्वजनिक भास उत्सव करेंगे । हुकुमत स्वयं एक सार्वजनिक ट्रस्ट है । फौज और कानून उसे वहाँ नहीं रोक सकते, किन्तु अपरिग्रह रोक सकता है । आर्थिक जिसकी दृष्टि है, अर्थ की व्यवस्था उस नहीं सँपी जा सकती । अर्थ में उसे मान होगा, शोभ होगा और इस तरह वह लोक-मानस में विषमता लाने का कारण हो जायेगा । आज का धनिक वही है पहले का धनिक वह न था । पहले दृष्टि में धन नहीं, सिर्फ व्यवहार में था दृष्टि में धन था । पहले धनिक समाज-शरीर में उस गोंठ और गिल्ली के मानिन्द न था जो रक्त विकार का अपने जन्म रोक कर पूरने लगती है । अर्थ की समुचित व्यवस्था के लिए दृष्टि नैतिक नहीं आर्थिक चाहिए, यह मिथ्या प्रवाद छाया हुआ है । पश्चिम के राज-दशन और अध-दशन ने यह बहम फैलाया है । उसको अथ काटने की जरूरत है और उसके लिए ऐसी नीतिनिष्ठ पुरुषों की जरूरत है जा उसी अनासक्त भाव से धन से व्यवहार कर, जैसे मंगी मलमूत्र सं करता है । मलमूत्र के सम्बन्ध में अपरिग्रह नहीं सिखाना होता, यन्कि उल्टे यह मताना होता है कि खाद तो होना है, फवने के नहीं, संग्रह करने के योग्य है । धन के अपरिग्रह में भी धन की उपयोगिता और धन के समीचीन व्यवहार की शिक्षा गमित हानी चाहिए ।

अथवा, अथ के संबन्ध में आदमी को तृणाक्षु और इष्याक्षु बनाकर पहले अवस्था उपजाता है । फिर पाटा-गटन और पाटी-मन्ति और अन्त में रा-खाद में जा समाहित हानवाला है । यहाँ हानु उन अधार्थी

आँखों में इतना रोमास भर दिया जायगा कि उनका बाकी सब दशन, सब स्वप्न राय क प्रति छुप्त हो रहे। अथ की तो समस्या है, समाधान कि निति में है। समस्या को आर्थिक जानकर समाधान को भी अर्थ में ग्योजना खुजाने से राज मिटाने जैसा है।

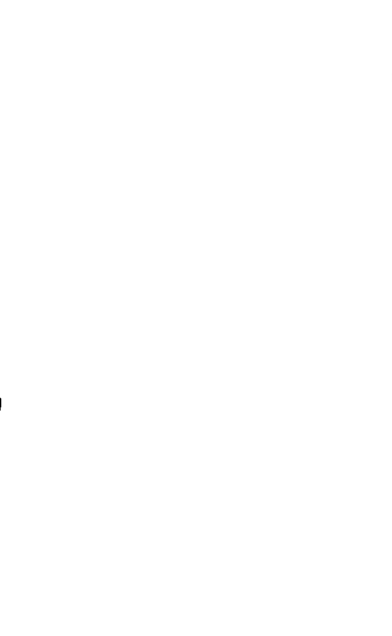
अपरिग्रह आत्म का अन्न है। इसी से उसका उपयोग, उसका प्रभाव अनात्म के प्रति है। अथतः अर्थार्थियों से चलकर उलझन और बाधन उपजानेवाला है। आत्मार्याँ तब क्या ऐसा हो सकता है, जो अथतः चलाये ? हाँ, हाँ सकता है और हो, तमी प्राण है। गाधीजी का घोरा मजाक न था जब वह कहते थे कि मेरी कद दुकानें चल रही ह। सचमुच दुकान की तरह अपने रचनात्मक संघों की पाइ-पाइ का वह ध्यान रखते थे। करोटा रुपया लोग का कर अपनी दुकानों में लगाने में उन्होंने अभ्यास की छति नहीं देरी। वकि इसी में से स्वरूप परमेश्वर की सची उपासना का उन्होंने लाभ अनुभव किया। अपरिग्रह ही उह करारों के फणों का सचालक बनने द सका। ऐसे उन्होंने धन को धन्य किया, दनघालों को भी धन्य किया और उन लाखों धमिकों के हक को उन तक पहुँचाया जो अपनी राय तपस्या भूलकर मान रहे थे कि वे दरिद्र ह। अपरिग्रह की लगन गाधीजी में इतनी तीव्र रही कि अपने को मिला सफनेवाली एक पाइ से भी वह विमुक्त नहीं हुए। अपरिग्रह का उनने निकट अर्थ था कि धन शहर से दहात की आर वह उठ, उसी लाचारी में जिम्मे यादल का पानी धरती पर गस्तता है। धन धरती का है, धरती में परीना टालनवाला का है।

वह धरती से उठकर जाता है और वापस धरती में उसे पहुँचा देने में वहाँ किसी का उपकार नहीं है केवल सगकी इताथता है।

समाज का आर धन का विभाग आकाश और तृणा के नियमों से चः और आत्मा का आर नीति का अभ्यास उसमें विमुक्त निवृत्ति आर निरुद्ध की रेखा पर चल, तो जीवन क इन समानान्तर सिगाव से कभी कुछ न हागा। ऐसे रिस्पोट पास आयेगा और सुद उमरगा, क्योंकि

नाति और शक्ति तत्र परस्पर विरुद्ध दिशा में समान बल से रिचकर एक गून्पावत्या उत्पन्न करेंगी। उस गून्पा को भरने के लिए 'यू एस-एसवाद' और 'यू-एस-एस-आगवाद' अपने-अपने तोड़न लेकर यहाँ आ घमकेंगे। इसमें समप है कि समग्र समन्वय की भारतीय सन्धृति म से, जिसके प्रविशता गारीजी थे, हम अपना आदेश प्राप्त करें और उद्योग की यात्तनाओं का अभ्यात्म की यात्तनाआ से कदम-ब-कदम मिलकर चलायें।





७

रफुट

भारतीय जनतन्त्र

भारत ने अंग्रेजों की आधीनता से छुटकारा पाते ही अपने लि
विधान-सभा की योजना की। उस सभा का भारतीय आम-मता के सत्या
का रूप स्थिर करके देना था। यह स्वरूप स्थिर हो गया है और भारत
२५ जनवरी सन् '५० के दिन स एव जनतन्त्र के रूप में दुनिया में ज
जगह ले ली है। भारत ने स्वाधीनता महात्मा गान्धी की राह में ज
अहिंसक विधि से प्राप्त की है। इसलिए विश्व में गान्धी जगह ल
अथ भारत के लिए विश्व की सेवा में अपना आत्मदान देना ही ही जाता
है। उलझा सत्ता, जो न सत्त्वा की आर स न सत्त्वति और सत्त्व की
ओर से हीन है, क्रिसा के लिए गमा आर जातक का कारण नहीं हो
सकती। स एव के लिए उसमें अभय आर आत्मदान हो है।

स्वतन्त्रता देशों का यों ही नहीं मिल जाया करती है। जान नितना
उसके लिए तूल बनना पड़ता है आर अक्सर यह एक गहरे द्रव्य को
परम्परा छोड़ जाती है। राष्ट्र छोड़ कर उदय में जाता है, तो उसका
राष्ट्रवाद दूसरे राष्ट्र की प्रतिशोध भावना पर अपनी नाम बाधता आर
उसी से अपने को मजबूत करता है। पर महात्मा गान्धी आ भारत देश
का ही प्राप्त हुए, अनोखे द्रव्य थे। उनके नेतृत्व में विश्व के इतिहास में
पहली बार एक समूह महादेश ने अपनी राजनीति-स्वायत्तता इस तरह
प्राप्त की कि परिणाम तैर नहीं हुआ, मल हुआ। भारत आर ब्रिटेन जो
मानिक आर गुलाम थे, जुलामी की कड़ी टूटने पर परस्पर निच और
बिगल नहीं रहे, बल्कि साथी और मित्र बन गये। इतिहास की यह
अद्वितीय घटना है और इस दृष्टि से भारत निधन ही अनन्य दम का
अनुग देता है।

निस्सन्देह भारत विभक्त हुआ और विभाजन में ब्रूर अमानुषिक घटनाएँ घरीं। यह सचमुच भारत के भाल पर धन्या है, भारतीयता की यह एक शर है। किंतु शर तो टिक्नी नहीं है, इसलिए भारतीयता की सफलता के लिए यह एक चुनौती है। भारत आरम्भ से माना मानव-जाति की ओर से समन्वय-नीति की प्रयोगशाला होकर रहा है। भारत का सारा इतिहास धर्म की एक प्रयोग-गाथा है। सच वहाँ चाहे राजनीति चले, भारत धर्मनीति का क्षेत्र रहा है। इस नाते विभाजन और उससे उत्पन्न हुए कटुता एक बह कलक है, जिनको भारत की आत्मा धोय बिना नहीं रह सकती। फिर भी वह आपस की बात है और भारत के अहिंसक 'राष्ट्रसुद्ध' की एक दुबलता यद्यपि उससे प्रकट होती है, उस सुद्ध की मौलिक सफलता में फाइ सदेह नहीं है।

अहिंसा पर राजनीति कहाँ तक चल सकती है, यह अभी प्रयोग और परीक्षण का ही विषय है। महात्मा गांधी का तो दर्शन राष्ट्र में नहीं, अहिंसा से परिभाषा पाता था। यानी राष्ट्र के लिए हिंसा जरूरी पड़ती हो तो भी वह स्वयं अहिंसक रहते, फिर चाहे राष्ट्र शत्रु ही समझे जाते। सच पड़िए तो एक चुस्त हिन्दू राष्ट्रवादी ने राष्ट्र शत्रु समझकर ही उनकी हत्या की। किन्तु हिन्दू राष्ट्र गांधीजी के लिए उससे अधिक पवित्र था। यह अहंता नहीं, उनके लिए आम का, सामयिक राष्ट्र नहीं, सनातन सत्त्विति का बोधक था। हिन्दू शब्द समग्र धर्म-जीवन का सातक है यह मतवाद रूप नहीं है। यह देश धारणा से बँधा नहीं है, इसलिए राज्य या राज नीति में भी सीधा उसे सरकार नहीं है। आत्म-नीति, जो मानव नीति और इसलिए सच्ची जगत् नीति भी है, वह उसने लिए नियम है। यह शाश्वत है, इसलिए वही सामयिक भी है। महात्मा गांधी इंगी अर्थ में हिन्दू थे आर मानना हागा कि सच्चे हिन्दू वही थे। इमी सनातन आदर्श के रूप में वह भारत का मारी विभाजन स्थाना चाहते थे।

गांधी धार्मिक थे, पर श्रमण साधु भी। गांधी का नेतृत्व बह ल सक्ती थी उन्मे प्राण और शक्ति ल सक्ती थी। पर धर्म उगसा धर्म ल

नीचे होने के लिए प्रजा अवश्य हो। अर्थात् राज्य में शासक और शासित ये दो पाट, दो रंग रहने ही वाले हैं। राजनीति का यह प्रयत्न है कि पाट दो रह, फिर भी विग्रह न हो।

पर विग्रह तो होता ही रहा है। युद्ध इतिहास का स्तर है। एक पर एक युद्धों में से गुजरते हुए हमने राजतंत्र का प्रजातंत्र बनाना आवश्यक मान लिया है। अर्थात् तंत्र तो होगा और वह अन्त में राज्य के लिए ही होगा तर्कित प्रजा की ओर से यह धन। प्रजा की ओर से, यानी चुनाव के जरिये प्रजा की अनुमति और उसके प्रतिनिधि लेकर।

इस 'प्रजा की ओर से' के सूत्र को विविध मात्राओं में और विविध रूपों में जमल में लाया गया है। प्रजाजन के अनुकूल राज्य होगा है यह यद्यपि आज सर्वो मान्य है, फिर भी सब देशों की राज्य-व्यवस्थाओं अपनी-अपनी हैं और एक-दूसरे से भिन्न हैं। उन भेदों के बावजूद मुख्य बग बन गए हैं, एक टेगोर सी दूसरा विक्रेटरशिप। वही राजा है वही प्रेजीडेंट है, फर्दा माल है फर्दा कुछ दूसरा नाम है उसका जो शासन के शीर्ष पर है तर्कित सब तंत्र मुख्यतया इन दो बगों के नीचे इकट्ठे हो जाते हैं। दोनों में फर्दा भी जनता की, यानी प्रजाजन की अवस्था है, ऐसा नहा यह सकते कि दानों और दास है कि जनता का हित और सुख ही उनका प्रधान लक्ष्य है। विक्रेटरशिप है, तो यह जनता के प्रेम में से बनता है। बल्कि यह तो बड़ी है, गारंटी है, जो सब को प्रजा के हित समर्पित रखती है। जाता, यानी अधिकतम बग। या यह विक्रेटरशिप 'प्रान्तारियत' की यानी नितान्त जनता की है।

यह ठीक हो, पर महात्मा गांधी राज्यके आदमी नहीं थे, क्योंकि हृदय ने थे। उन्होंने तंत्र की बात इसलिए लगभग की ही नहीं। उन्होंने राजनीति को 'रामराय' जैसा धारण किया। 'रामराय' क्या वैज्ञानिक अर्थ में जनतंत्र है? क्या उसमें राजा के लिए आवश्यक नहीं है? तर्कित अन्त की ओर तो राम-नाम की धुआँ और रामराय की टंक गांधीजी में और बढ़ गयी। प्रतीति हुआ कि 'रामराय' में तंत्र की दृष्टि से से

अपना कुछ अथ और आग्रह ही नहीं है, उसका विधान से सम्बन्ध ही नहीं है। मानो वह केवल भावना का उना है। राम कौन—जो स्वयं स्व रहा है। ऐसे वह त्रिगुण जनतन्त्र है। लेकिन रायसदन पर कोई आदमी न बैठे, या पैत्रिक नहीं निवाचित ही बैठे या इतने ही वष के लिए बैठे, आदि कुछ भी उसमें विधि निषेध नहीं है। तिरु इतना है कि 'रामराज्य' के साथ यह अनेका, अमोघ और अनिर्णय होकर आदमी के मन में जड़ गयी है कि उसमें अन्याय की स्थान न होगा न भूल होगा, न गरीबी स्व अपने कर्तव्य म उत्तर होंगे और दूसरे के प्रति स्नेहशील स्व भरपूर दगे और यथावश्यक मात्र होंगे। यह जिसम हो, फिर उनका तन्त्र और रूप ना हो, वह 'रामराज्य' है। अन्यथा तन्त्र जो भी हो, हमें उमे रामराज्य के आदेश की दिशा में बदलते जात उगने ही जाना है। राजनीति के विज्ञान के लिए 'रामराज्य' शब्द परात नियत और नियुक्त नहीं है, वह हवाइ है, भासुक है। फिर भी वह जनता की भाषा का है और राजनीति को उससे मुक्ति नहीं है। जनता के मन की उस कसाली पर तन्त्र कने जायगे और खरे हाने पर रहेगे, नश ता फंक दिये जायेंग।

गांधीजी ने एरु दृष्टि हमना दी। एरु तरह से वह राज्य को एतम करने की है, दूसरी ओर से वह राज्य को मजबूत तार अमाध बनाने वाली भी समझी जा सकती है। वह यह है कि शासक सेवक हो जाय। राजा सेवक हो और प्रजाजन स्वयं। राजन्यजन तत्र स्वाधर्मा हाने, इसलिए वे श्रेय से अधिक सजमी, अपरिग्रही, सन्तारी और उत्तर होंगे। इसी कारण वे प्रजातनों के लिए सदा अपने से अधिक सुख-सुविधा उगाकर ही मानेंगे। जनता मालिक उनेगी और राजकर्मों चाकर होंगे। शासक में नहीं, व्यवहार म ऐसा हागा, अर्थात् सेवा कम के अभ्यासी नि स्वाध, अहिंसक माधनों पर राजकर्म आयगा जा तत्र भूत-स्वम होगा।

भूत-स्वम में जाने के लिए सीना झपकी भला करा होने लगी ? देखा यदि नहीं है और यदि राजकाज सेवा नहीं प्रभुता है एरु है, वहाँ प्रतिग है, धन है, सत्ता है, तत्र हर किसी की आकांक्षा उधर क्या न दी ?

अयोग्य की और भी अधिक, क्योंकि आकाशा अयोग्यता का लक्षण है। तब अनिवाय ही कि एक कुर्सी को अनेक चाद और एक को इसी शर्त पर वह मिले कि शेष उसकी प्रतिस्पर्धी होकर गायु बन जायें। और वह एक यदि उस पद का बोटा म पाये, तो यह मुनिघा उसे तभी हागी जब लोगों के मनों में वह प्रत्यागित भागों के सपन जगा दे और उनकी प्राप्ति का भरोसा जमा दे। इसी आवश्यकता में से चुनाव के बन्धु-घोषणापत्र और पार्टी प्रचार आता है। ऐसे आकाशा, स्वप्ना और इध्या माल्य का एक भाया-जाल रच उठता है जिसमें राज्य जकड़ जाता है।

जनतन्त्र लक्षण है कि चुनाव से पहले। चुनाव में ये दल फूटते ही हैं। वे दल अन्त की ओर मुख्य दो रह जाननाले हैं। एक पदस्थ, दूसरा अपदस्थ, यानी विरोधी। अब यदि काह अपने बारे में निश्चय है तो वह दल की मन्त्र की दृष्टि से सोच सकता है कि विरोध का और विरोधी का हाना हा जनकल्याण में सबसे बड़ा बाधा है। तब उम्मा कथय हा जाता है कि विरोध को, अगर वह हो, तो निमूल कर दे और फिर इतनी मुट्टा व्यवस्था घरे, और एसा प्रचार करे कि साम्मत उम्मा हाथ एकमत हाकर ही जी सके, दूसरे मत को सम्भावना ही न रहे। इस परिणाम के आने में यहाँ कोई तक की युक्ति नहीं रहती है। अतः दगने में भी आता है कि जनक्रातियोंगला टिकेटर उपाती रही हैं। क्यों और फ़ैम यह हाता है, सम्मता और स्वतन्त्रता से सम्मत् कैसे निकल आता है, यह समझना मुश्किल नहा होना चाहिए। आकाशा म स चल्कर हम विभूति के पूजक हुए बिना रहे नहीं सकते हैं। विभूति का भ्रम जो भी हमारे मन में अपनी बाणी से, प्रचार से, या क्से जाननाले पराक्रम से जगा नेता है, हमारी पूजा का पाप याकर यही हमारे ऊपर उम्माधारी रूप में विराजतर हमें धन्य करता है। हम दग कि आकाशा न यस्त संघा, मुघा से सम्पायल, उसमें हिंसक पराक्रम और विभूति महिमा और उस यस्त से ऐम्पशाली अधिपति सम्मत् का आविभाव हा आता है।

जनतन्त्र इस तरह यद्यपि आज सर्वमान्य है, पर आज ही के दिन यह

सबसे अधिक खतरे में भी है। क्योंकि आज जनमानस में अन्तर्निरीक्षण गहरा है। माहाकाण्ड अब अशुभोद्भूत कम है, आधुनिक शक्ति अधिक है। धर्म, भावुकता से निष्कामता, भय से निभयता और वैयक्तिकता से समग्रता की ओर पैल रह रहा है। गुप्तों के साथ लगा विभ्रम आज यथा पर परमा जाता है। अपने आत्मी के हतने टूटे हैं कि उन्हें पासने अब यह पनरता है। स्वप्न मात्र की रंन जगमें अश्रद्धा घस गयी है श्रद्धा लो गरा है और अश्रद्धा का माना विधवन् संगठित कर लिया गया है। अश्रद्धा का एक विशाल विज्ञान ही बन गया है। अश्रद्धा की शक्ति से स्वतंत्रता स्वच्छता बन जाता और इस हद तक जा सकती है कि शिन्त अपने आप में प्रिय हो आय। यह अयन्ना है जिसमें सेनावाद और पक्ति बाद पनपता है। तब बचन उभरने ह, वा श्वात क क्षाने से माहक होते हैं। और उन श्वाती श्रियों का स्वामी हमार यीर पश्वय का प्रताप प्रतीक बनकर अतिशय आकषक हो उठता है। इस खतरे का बचाना है और गहरा अनुशासन से अधिक भीतरी शिन्त, यानी चरित्र का उत्तम और गन्त करने की ओर ध्यान देना है।

गार्गीजी इसलिए हमोत्रेसा में सत्रिक का जगत् हादिक अथ टालना चाहते थे। भारत के राम श्वाय के पुत्र होने के कारण ही चाहे शना बने, पार्टी लम्बर होने कारण नहीं, फिर भी एक सामान्य धारी का यात को यह अनमुना नहीं कर सकते। जनमतसूचक उस एक व्यक्ति की बात पर सत्ता-बनवास नैन समान्तरक नामविवाग से उन्होंने अपने को नहीं बचाया। राम के श्वाय को यह जमात्रसी शास्त्रगुद्ध न भा हा, पर नाम गुद्ध यदि है तो उसका अभीष्ट परिणाम आ हा जानेवाला है।

इसलिए राजनीतिक काम के बीच गार्गीजी ने आध्यात्मिक माया का प्रचलन किया। आदर्श का आरम्भ का तत्र में प्रस्तार में, अथ योन्ना में नहीं, बल्कि चरित्र की पवित्रता और श्वाय की एकाग्रता, अथात् नातरता में दग्ना बताया।

एक ही जनतंत्र का भविष्य अहिंसा के साथ है। लोकमानस में

भौतिक मूल्य के रूप में जहाँ तक अहिंसा की प्रतिष्ठा है टीन उसी हद तक जनतंत्र सफल हो सकता है। यदि साधन गुद्धि का कुछ भी ध्यान नहीं है और सफलता ही एक साध्य है, तो जनतंत्र इस पन्ति से स्वय अपना अन्त घुला लेनेवाला है।

भारत गांधी का देश है। वह बुद्ध, महावीर और शंकर की भूमि है। उसने कबीर और नानक उपजाये हैं। उसने राम आर कृष्ण जैसे भगवत् पुष्पात्तम सिरजे है। सम्राट् के प्रताप के लिए नहीं भद्रियों की वाणी और संतों के उत्सव के लिए दुनिया उसे मानती है। जनतंत्र उसका प्रकृत आदर्श है। उसे सत् साधु मान्य रहा है, जो स्वयं को से स्वय अन्विचन बना है आर दीन दुखी का जिम्मे नारायण के समान धरण किया है। भारत का आत्म-प्रतिगिधि पुरुष दरिद्रनारायण को ही अपनी आराधना आर संवा दला है। जनतंत्र और जनगौरव की निष्ठा को मृत करनेवाला हमारा भारतीय जनतंत्र मानवता का उन्नी आदर्श म प्रकृतित, ज्ञान आर प्रगति कायगा—क्या यह विश्वास न रखा जाय ?



ध्येय नहीं नित्य कर्तव्य

आप की 'क्रान्ति' का पहला नम्बर मिला, जिम्मे लिए मैं आभारी हूँ। उसके पहले देखें मैं ये शब्द हैं— निम्नने इच्छा (क्रान्ति का) तीव्रता जानना चाहता हूँ, इसे समझने की कोई कोशिश की, वह फिर कभी उसका नाम न लेगा।"

मैंने क्रान्ति का नतीजा जानना चाहता हूँ और उस समझने की कोशिश की है। और यह भी गीक है कि मरी राय हुई है कि उसका कभी नाम न लेना चाहिए।

क्रान्ति से टरना उसे बुलाना है। मैं उसे बुलाना नहीं चाहता। इसलिए उससे डरने की मेरे लिए कोई जरूरत नहीं रह जाती।

लेकिन यह साचने की बात है कि क्रान्ति करनेवाला या क्या उस आपनी क्रान्ति को बिना समझे बूझे करना होगा? या उस समय की जायगी वह नादानी होगी। तो क्या नादानी को ही क्रान्ति कहना होगा? सच यह है कि 'क्रान्ति' शब्द को सन्तान नहीं बनाना चाहिए। जिसे ऐसे की नाइ उसका चलन चलाने से सन्धी क्रान्ति पास नहा जाती, दूर होती है। मूल्य घटता है। शब्द को लोग ल उडत हैं अगलियत छूट जाती है। और ऐसा हो रहा है। 'इन्कलाब जिन्दा राद' का नारा ही बदयो के लिए यम दिग्गाद देता है। मुँह से वह इक्लाव इस मंदर तक हाता है कि जीवन में गहरे उतरने के लिए उसको मौका ही नहीं मिलता।

और क्या मतलब क्रान्ति से? कुछ गडबड, कुछ उलट-पलट, धागा धागी, और अ की जगह य का शासक बन जाना—क्या इन तरह का ही कुछ क्रान्ति है? तो मैं कहता हूँ कि यह अगिष्ट है। यह प्रगति में बाधा है। यह मानव की हार और अय्यवस्था की विजय है।

इतिहास में घटनवाली प्रातियों को दंगिये । क्या किसी ने कहीं स्वर्ग का उतार पाया ? प्राति जब तक ध्यय और मिगन रही, दूर रही, तब तब उसमें शक्ति रही । तब तक उसमें से जादश की प्ररणा प्राप्त की जा सकी । उसने घटित घटना होने पर देखा गया कि मंजिल उमा आगे है, और प्राति प्रत्यक्ष-समझ होकर भ्रम भर रह गयी है ।

इसलिए प्राति शब्द सख है, इसके आगे उपादय भी हो सकता है, यदि यह कवि माया में लिखा-पटा और लिया जाता है । अन्यथा ता वह शब्द हमें दुस्सह बन जाना चाहिये, यह भ्रम पतरनाक है कि उस शब्द में कोई वैज्ञानिक तथ्य भी हो सकता है ।

आशय यह नहीं कि हमें प्रचलित (मानसिक) मूल्या में किसी मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है । आशय यह है कि इस प्रकार का मूल्यान्तरीकरण ही प्राति की घान्त्रिकता है । उससे अलग और भिन्न कोई प्राति नहीं है ।

इससे प्राति का आरम्भ अगर नहीं है ता अपने-अपन जीवन से है । आपनी निगाह को हम बदल लेना है ।

और मानव-जीवन की दृष्टि से कह ता एक प्राति है जिसकी गता से आवश्यकता थी, है और रहेगी । वही स्थायी प्राति । और यह यह कि न शक्तिमय नहीं न हों, सेवा भावी बन । शासन-दृष्टा अग्रामाजिफ है, या व्यक्तित्व की सामाजिकता (यथाथ समाजवादिता) का प्रमाण है ।

यह नहीं तो यन्तिया-से-यन्तिया समझी जानवाली प्राति पास आकर न सारित हो सकेगी ।

इससे जरूरी है कि हम प्राति का रामाय न खानें । रामाय निस्का टक हाता है । वह द्वियथा उभाता है उठी का पाता है । आवश्यक है कि हम अपने जीवन के हर दिन आर दिन की हर घणी प्राति की यथार्थता पर आरुढ़ हात हुए चलें । प्राति हमारे लिए नित्य कतव्य हो, हमसे अलग कोई दूर का ध्येय नहीं ।



उपवास और लोकतन्त्र

गांधीजी उपवास पर हैं। नेता-सम्मेलन को माँग सामने आ चुकी है। वायसराय का जवाब भी सामने आ गया है। सरकार को पूरा विश्वास है कि वह न्याय पर है। उसका विश्वास इसलिए अकारण है कि गांधीजी के मित्र उनके पास पहुँच सकते हैं और चिड़िया की भी पूरी व्यवस्था है। सत्तार उससे जान सकेगा कि सरकार गांधीजी के व्यक्तित्व के प्रति सह्य है। पर न्याय निमम हाता है और यह निममता सरकार को झलनी पड रही है, जब कि गांधीजी को छोडने में वह अपने को असमथ पा रही है। नेता-सम्मेलन को मिले इनकार को नेताआ का अपमान नहीं मानना चाहिए। उसकी फटिनाद् मारी है, उसको हलका नहीं समझना चाहिए। यह तय है कि लिनलियगो व्यक्ति रूप में गांधीजी क दु ल दद में शरीक रहना चाहते हैं। साथ ही यह भी साफ है कि गांधीजी, अपने साथियों का विरोध उठाकर भी, युद्ध प्रयत्नों में विभ्र-बाधा न डालने की नीति को अपनाये रहे हैं।

इस पर भी संकट सिर पर है। मानो सब लचार हैं। गांधीजी उपवास के फता से अधिक उमके मोक्ता हैं। उनकी आर से यह धपधा को पुकार है। इस बार तो उपवास सीधे सिखे खास प्रयोजन से भी पुग हुआ नहीं दीगता। दूसरी ओर वायसराय भी लचार हैं। वह इस आत्म हत्या को कैसे छुम समझें ? राजनीतिक पैतरेवाजी नहीं, तो यह उनरे लिए और क्या चीज हो सकती है ? व्यक्ति की स्वच्छन्दता की रक्षा करके सरकार मला कैसे चल सकती है ? इससे लिनाथगो भी अपने यन्नी मित्र की रिहाई का हुकम नियालन में असमथ हैं !

देखा है। उपवास भी उसी प्रभु के प्रति आत्म विवेदन है, जो जन-जन के अन्तयामी हैं। इसी से उपवास गांधीजी का प्रश्न जितना है, उससे कहीं अधिक वह जगत् का प्रश्न बन गया है। गांधीजी, या काद, इच्छा करके भी अन्तराष्ट्रीय महत्त्व से उसको नीचे नहीं ला सकता। हिन्दुस्तान आज दिन ब्रिटेन की सम्पत्ति हो नहीं रह गया है। इस लड़ाई में हिन्दुस्तान गहरा मोचा है। उसकी स्थिति में घर-घर युद्ध के नक्शे को बदल सकता है। ब्रिटेन में अमरीका की दिलचस्पी है और जिसमें उन दोनों की दिलचस्पी है, वह बात चीन और रूस के माध्य से सीधी सम्बन्ध रखती है। इस तरह हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों का हो या है—यह सवाल अपेक्षाकृत पीछे पड़ गया है। लड़ाई जीती जाय, यही खाल इतना पहला बन गया है कि भारत की और सभी राष्ट्रीय बातों और माँगों को उसी एक अपेक्षा में दर्पना जरूरी हो गया है। इसी से आज सब आर लाचारी है। गांधीजी को अपन लिए उपवास और सरकार को उनसे लिए जेल ही उपाय मादूम होता है।

बेगन राष्ट्रीयता के दायर में संघर्ष का समाधान नहीं मिलेगा। पर प्रश्न है कि युद्ध द्वारा मित्र राष्ट्र क्या चाहते हैं? क्या वे न्याय की प्रतिष्ठा नहीं चाहते हैं? क्या अतलान्तिन चाटर के पीछे की मनोभावना का हम कुछ कहें? क्या मित्र राष्ट्रों के राष्ट्रनायकों की बातों के बारे में हम न मानें कि वे गहर विश्वास और इमानदारी के साथ कही गयी हैं? यदि यह सच है, तो क्या सचमुच माना जाता है कि न्याय और साम्य के आधार पर हांगकाल नव निमाण के लिए गांधी को अपना बात न कहन देना जम्मी है? अन्तराष्ट्रीय संघर्ष में आज शक्ति के हाथ निणय है। हमारे पास कोई अन्तराष्ट्रीय संघ ऐसा नहीं है, जिसमें दम हो और न्यायनिष्ठा हो। तब हारने पर हमना के लागा को मानन से संघ राना का संभगा, या इतिहास का हा इस प्रातयात्मन से बग बगाया जा संभगा कि संभगा त्पान की गति मित्रराष्ट्रा के मुकायल धोमी पन जान से ही उसकी हार हुए। निजय न्याय की हानो है वा क्या यह मन द्वारा ही नहा हागी!

लोकतंत्रों की शक्ति क्या शादिक लोकमत का उल ही नहीं है ? क्या 'लोकतंत्र' शब्द में ही गर्भित नहीं है कि शक्ति और न्याय का अधिगन लोक सामान्य में है ? यदि ऐसा है, तो नागरिक मयाग की रक्षा करते हुए वाक् स्वातंत्र्य किसी भी न्याय मानी निमाण के लिए क्या पट्टी शत नहीं टहरती ?

आगे का किसी का पता नहीं । अपना पडति इश्वर ही जानता है । पर हम अपनी सफाई से आज गुरु कर सकते ह । इस आम-मयन का राष्ट्रनायकों में प्रारम्भ हा, ता उपवास भी लाभप्रद बन सकता है । सब यह है कि आज भी सरकार के शूल और व्यवहार म मेल नहीं है । शब्द कठोर हैं और गांधीजी को न छाड सकने की लचारी का हम समझ सकें, तो बाकी सब दृष्टियों से सरकार का व्यवहार मुलायम है । इसी में सद्भाव के बीज दखे जा सकते हैं । उहा को उपवास की यथा वा सिचन मिल, ता आज भी ब्रिटेन आर भारत म राष्ट्रीय सद्भाव लडलहा सकता है । यदि गांधीजी नहीं, ता उम सद्भाव के बीन को अपनी आत्मा स सीचनेवाला दूसरा कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा । गांधीजी के अभाव में फिर क्या रह जायगा, जा अनिश्वास और कटुता की लहरों को अपने ऊपर ले और मीतर झेलकर प्रीति में घटल दे । गांधीजी आज वह दृश्य हैं, जो राष्ट्र भान्ना के रक्त में से मेल को साफ करके फिर पुनर रक्त का राष्ट्र की नाड़ियों में दाने को देते रहत ह । कम अधिक पिछली आधी सदी का इतिहास बताता है कि हिमा की शक्तियाँ यदि सुला अनय नहीं कर पायी हैं आर निरन्तर विधायक रूप में उनका परिणमन होता रहा है, तो यह एक व्यक्ति गांधी के कारण ।

निश्चयधुल्य के स्वप्न का नहीं, याजना का समय अर आ रहा है । क्या उचमुच गांधीजी को ग्वाकर यह नन्दी लाया जा सकता है ?



नैरातकवाद

हिंसा-अहिंसा की चर्चा अब पहले जितनी सम्ती नहीं है, यह अच्छा ही है। यह नहीं कि वह प्रश्न आज कम महत्वपूर्ण है। प्रश्न का महत्व तो दिन दिन बढ़ता ही जा रहा है। सकट जितना घोर पड़ रहा है, अहिंसा उतनी ही अनिवाय हो रही है। तब है कि उसने बिना प्राण नहीं। उसके सिवा जगत् के लिए दूसरी गति नहीं। साम्यवाद (कम्युनिज्म) म से मोक्ष आया, यह सपना टूट चुका है, उस 'वाद' के नीचे बुद्धि का प्रमाद दीग आया है। पूँजीवाद, जो मनुष्य को पूरी तरह राज्य के नियंत्रण में करने की जगह उसकी शक्तियों का बहुत कुछ आजाद रहने देने के कारण बनना था, 'याधियों की सृष्टि ही कर सका है। 'याधियों का इलाज उस पद्धति में से नहीं निकलनेवाला है। पूँजीवाद जनतंत्र के नाम पर जनवाद की दुहाइ देता है साम्यवाद अपनी तरह व जनवाद की मार्पत अधिना यथाधीन तंत्र का शिकुजा जमा चलता है। इन दाना वादा म से मनुष्य को लाभ नहीं मिल रहा, हर मिल रहा है। दाना ही सामान्य मनुष्य को आतंकवादो जान पहते ह। सरकारों के और दल-बल के जार व ये अपनी गति चलते देख जाते ह।

दुनिया की अगला में छूट हुए बाद ये दो ही ह। 'नेपशायन' धार्मिक ह, धार्मिक नहीं हैं। यानी, शक्ति की भूमिका पर ये नगण्य हैं। गणनीय जो दा ह वे दोनों आतंक पर नकार ऊँचे उठ और पैल रह ह।

निश्चय ही उन दानों में से किसी व हाथ दुनिया का भविष्य नहीं हो सकता। आतंक म से कोई छाया भी निमाण नहीं हुआ है, मानव जाति के भविष्य का निमाण तो यही बात है।

अतः चाहिए एक मानिक निरातकृपा । ऐसा वाद जादग और घम के भ्रम में तो बहुधा भिद्यता है । लेकिन यह यकाम है । शक्ति निम्न नहीं उद्यम आतंक हो भा ता का ? इसके उरके निरातकृपाने म कर्द खाम भी नहीं है । निरातकृप की घाण्णा शक्ति में स आनी चाहिए । विन्ध्य मय हो सकता है वही दान्त में अमय दे सकता है ।

अमय देनेवाला भा शक्ति का एक प्रकार है, इसके उदाहरण गांधी हो गये हैं । गांधीजी की अधानता म भारतीय राष्ट्रपता ने जन अग्रज से छडाइ छनी ता अग्रज का मय म्ता आया था । मगर गांधी ने म्दा उमे अमय दिया । अग्रज दुष्मन हा सकता था, क्याकि यह मूल म अपन अन्तर की इक्षानिरत का दुष्मन बन गया था । लेकिन दुष्मन है इसलिए और भी मर जीते-जा उमका बाल बाका नहा हो सकता—यह काल गांधी का रहा । चौराचारा म विद्वेष न जा तनिक उन्कर इका-दुषा अग्रज का रक्त लिया, ता उस पर गांधी ने अपने सार आत्मान की ही लगाम गांच ना और उसके लिए प्रायश्चित्त किया ।

यानी नैम-नैम फौन, उनका म्ब उनक लिए शम्मान की तंरारा और इन मत्र कारवाद्यों का विश्वास म्ता जाता है वस ही येमे अहिमा को पाने और पहचानन की तुनिवाग्ता भा म्ती जाती है । अहिमा चलती नीति क तार पर नहीं, तुनियादी मूल्य के तौर पर । देश के, रात्र के अपने आर अपने कुशल उम क लिए अहिमा नहीं यन्कि आहमा के लिए देश और रात्र, अहिमा के लिए हम, हमारा स्वात्म्य जीवन और हमारी मृत्यु ।

यह अमापता अहिमा का मिलाने-गला है । निर नी अहिमा की चचा का कम होना गुम ही है । कारण, चचा उडती अधिक है करती कम है । माना अहिमा सिद्धान्तयुवा का कुना हुआ फोद गिल्लीना हो जिमसे म्पकर मन बहला दिया जाय । या मारमधया हो जिमके सहारे पुग्मत क जाय । जैसे वह आग न हा जा हमें बलाकर रात्र कर दे, या तो फिर तथा घर कुन्दन ही कर दे ।

अभी एक जैनी भाइ न आपत्ति थी कि अहिंसा की बात वह नहीं कर सकता है जा मास खाता है ।

मैं उन अहिंसा का नही जानता जो गाकाहारिया तक सिमटी है । ऐसी अहिंसा तो सिमटती है पर एक दिन छिपर हो जायगी । केवल परम धर्म के रूप में अहिंसा का मैं दख पाता हूँ । धर्म परम वह जा सब कहीं है, जिसमें छुटकारा किसी को भी नहीं । अब तक के इतिहास की तमाम प्रगति का वही धर्म धारण करता है । आगे का विकास भी उसी में स बनेगा । हम उस से अनजान रह सकते हैं पर जब भी हम जानगे उसी का जानगे । यानी एक न एक दिन हम उसे पहचानना ही है । तभी हमारी आँख खुली कही जायेंगी ।

जाज भी मैं नहीं जानता कैसे माना जा सकता है कि कोई बिल्कुल मारता है । हर कोई अपने जीने के लिए दूसरे को मारता दीखता है । शेर मारता है तो भूय से या टर से । वह अपने को खरना और बचाना चाहता है । भलाइ माल की दुकान अपना कुनधा पालने के लिए करता है । गिंकारी शिकार के समय गिंकारी का, यानी जोगम उठान का स्वाद पा रहा होता है । वह स्वाद गिंकार का जानद है, न कि प्राणी की जान रना । डिप्लर ने जमनी का चिन्ता करने और करने की काशिश में युद्ध रदा । जापान के लिए भी आम-रक्षा का मसाला खाया था । कोरिया का उत्तर गिंकार पर अपने बचाव के लिए ही चला दौड़ा । उत्तर पर अब गिंकार की ओर से जो चलाइ है वह भी कोरिया की आमरक्षा में । इस सभी यदि गुड में चलाता तो अपने बचाव के लिए । अणुबम चलेगा तो तभी जब अपनी जान पर आ बनती दीखती । वह बम पहले भी काम आता है । लकिन धान कह सकता है कि लडाइ को उसने लदी राम नहीं किया था कि उसका प्रयोग कर नहीं हुआ जब कि अमरीका को अपने बचाव का दूसरा उपाय खोजना पना ही गया था ।

वह गुन है कि बाद पना मारता है । हर कार पहले बचता और बचाता है । मना पहले अपने का चला गठा है, दूसरा हमेशा दूसरे

नम्र पर आता है। यानी दुनिया में ऐसा काइ नहीं है जो मारने के लिए जाता है। हर काइ अपने जाने का राह में दूसरे को मारता है।

दुनिया में सब हिंसा बचाव की हिंसा है। आक्रमण की हिंसा में गहरे जाकर दग्गे तो पता चलगा कि वहाँ भी अपनापन ही मुख्य है दूसर का सताना दुश्मन नहीं है। स्वत्वभाव की रक्षा या प्रतिष्ठा की कल्पना में ही पर-हत्या का, यानी आक्रमण की धैर्यारी आता है।

इसलिए प्रश्न यह है ही नहीं कि मारना अच्छा है या बुरा ? कोई नहीं है जो मारने को अच्छा कहता हो। इस रूप में हिंसा-अहिंसा के प्रश्न का लेना ही गलत है।

जमाना, प्रश्न यह है कि अपने जीने के लिए या दूसर का मारना क्या 'अच्छा' हो सकता है।

इसके उत्तर में या दुविधा या गुञ्जायन नहीं है। अपने जीने के लिए भी मारना 'अच्छा' तो नहीं कहा जा सकता।

तब क्या यह आवश्यक है ? उपाया है ?

बाहर का भार से उसकी आवश्यकता और उपायगिता कभी सिद्ध नहीं हुई है। इतना तो कमी उदला पूरा नहीं हुआ है और युद्ध से युद्ध की निरन्तरता को ही सात्ति करनेवाले रहे हैं।

निर भी आवश्यक है। कारण, हिंसा बिना जीवन चलता जा नहीं है। सँसृजन तक में घात है। यानी यह आवश्यकता असमर्थता की है, सभ्रडा का है। दूसर शक्तों में कमजोर ही हिंसक होता है।

इसमें स सिद्धान्त निकला कि हिंसा सभ्य है अहिंसा माध्य। हिंसा कितनी या अनिष्ट है नियम सभ्य अहिंसा है। अहिंसा ही प्रज्ञा है हिंसा निषिद्ध है। हिंसा सभ्य दर में स है अहिंसा ही निषिद्ध है। निषिद्धता की नीति का अरथ सनुय जाति स पहल नहीं है। इससे जगत् का कानून हिंसा और सभ्यता का नियम अहिंसा है।

अनुक हृद स आगे अहिंसा अशक्य बनती और हिंसा अहिंसाय बदला हा तो यह एक बात है। विकासक्रम में यह स्थिति तो सभ्य ही

अभी एक जैनी भाइ न जापत्ति की कि अहिंसा की बात वह नहीं कर सकता है जा माय गता है ।

मैं उस अहिंसा को नहा जानता जो गाफाहारियों तर मिमगी है । ऐसी अहिंसा तो सिमटती जाकर एर टिन सिपर हो जायगी । केवल परम धम के रूप म अहिंसा का म देग्य पाता हूँ । धम परम वह जो सब वही है, जिससे छुटकारा किसी को भी नहीं । अब तक के इतिहास की तमाम प्रगति का वहा धम धारण करता है । आगे का विकास भी उसी में से उनेगा । हम उस से अनजान रह सकते ह पर जब भी हम जानगे उसी को जानगे । यानी एर न एक टिन हम उसे पहचानता ही है । तभी हमारी ऑन्व छुली वही जायँगी ।

आज भी म नहीं जानता कसे माना जा सकता है कि कोई सिफ मारता है । हर कार अपने जीन के लिए दूसरे का मारता दीगता है । घोर मारता है ता भूग्य स या दर स । यह अपने को रग्यना और वचाना चाहता है । कसार माग को दुवान अपना पुनवा पालने के लिए परता है । ठिकारी शिकार के समय तिलगी का, यानी जोगम उठान का स्वाद पा रहा होता है । यह स्वाद ठिकार का आनंद है, न सि प्राणी की जान रना । हिन्दु ने जमनी को त्रिन्दा रगने और करन की काशिंग में युद्ध छटा । जापान के लिए भी आत्म-रक्षा का मराल था बना था । कोरिया का उत्तर दक्षिण पर अपन बचाव के लिए ही चढ़ दाडा । उत्तर पर अब दक्षिण की आर म जो चढ़ा ह यह भी कारिया की आत्मरक्षा में । यह कभी यदि युद्ध म पग्या ता अपन बचाव के खातिर । अणुधम चलेगा ता तभी सब जपनी जान पर आ वनती दीगगी । बट रग पहल भी काम आया है । लेकिन कौन कह सकता है कि लडाइ का उरने जगी तम नहीं किया या कि उसका प्रयाग तर नहीं हुआ जब कि अमराना की अपने बचाव का दूसरा उपाय मराना बन्द हो गया था ।

यह शूट ह सि कार पहल मारता है । हर कार पहल वचता और बचाता है । रुदा पहल अपन का पाहा जाता है, दूसरा हमारा दूसरे

नगर पर आता है। यानी दुनिया में एका काइ नहीं है, जो मारने के लिए जाता है। हर काइ अपने जाने का राह में दूसरे का मारता है।

दुनिया में सब हिंसा स्वाभाविकी हिंसा है। आक्रमण की हिंसा में गहरे जाकर दण्ड ठा पता चलेगा कि वहाँ भी अपनापन ही मुख्य है, दूसरे का खताना मुख्य नहीं है। स्वत्वभंग की रक्षा या प्रतिष्ठा की कल्पना में सही पर हत्या का, यानी आक्रमण की तैयारी आता है।

इसलिए प्रश्न यह है ही नहीं कि मारना अच्छा है या बुरा? काइ नहीं है जो मारने को अच्छा कहता है। इस रूप में हिंसा-अहिंसा के प्रश्न का लना ही गलत है।

अर्थात्, प्रश्न यह है कि अपने जीने के लिए भाई दूसरे का मारना क्या 'अच्छा' हो सकता है?

इसके उत्तर में भाई दुविधा की गुञ्जापन नहीं है। अपने जीने के लिए भी मारना 'अच्छा' तो नहीं कहा जा सकता।

तब क्या वह आवश्यक है? उपयोग है?

गहर की अरु स उसकी आवश्यकता अरु उपयोगिता कभी सिद्ध नही हुई है। हत्या से कभी बदला पूरा नहीं हुआ है और युद्ध सब युद्ध की निरपेक्षता का ही साक्षि करनवाये बन हैं।

निर भी आवश्यक है। कारण हिंसा बिना जीवन चलता जा नही है। सँस लेने तक में घात है। यानी वह आवश्यकता असमर्थता की है, शब्दका का है। दूसरे शब्दों में कमजोर ही हिंसक होता है।

इन्हीं से विज्ञान निकला कि हिंसा सत्य है, अहिंसा माध्यम। हिंसा कितनी भी अनिष्ट न हो, नियम सत्ता अहिंसा है। अहिंसा ही प्रश्न है हिंसा निराल्पता है। हिंसा सत्ता दर में सही अहिंसा ही निदर है। निदरता की नीति का आरम्भ मनुष्य जाति से पहले नहीं है। इससे जंगल का कानून हिंसा अरु समाज का नियम अहिंसा है।

अतः हमें सँस जागे अहिंसा अदम्य बनती धीरे हिंसा अग्रिहाय रहती है तो यह एक बात है। विकासक्रम में यह स्थिति तो सदा ही

रहनेवाली है। पर तत्त्व दर्शन से हिंसा का समझ निकालकर चाकायदा उसकी तैयारी में लग जाना बिल्कुल दूसरी बात है।

यह दूसरे प्रकार की तीर तैयारी के साथ की जानेवाली हिंसा मान्यता के लिए लज्जा की चीज दानी चाहिए। पर वह उल्टे गोरव की बात बनी हुई है—यह हमारी आत्मा की मानव सभ्यता की विटम्बना है। हमारे ज्ञान विज्ञान और सस्कृति-सम्पत्ता पर यह तीव्र प्रश्न है। हमारी सारी विचार-शक्ति की ही यह एक आलोचना है।।

यह कोरा बहम है कि मारने से जीने के मान में कुछ लाभ हो सकता है। जॉर्जों से, अनुमान से या कल्पना से दीगनेवाला ऐसा लाभ मिथ्या दर्शन और प्रमत्त दृष्टि की सृष्टि है। वह निरी भरीचिन्ता है। निश्चय ही यह प्रतीत होनेवाला लाभ प्रतीति से बाहर पढ़कर कोरा हान्य निकल आनेवाला है।

अब एक उससे बिल्कुल उल्टी जीवन-नीति है। वह आहिंसा की है। उसमें अपने बचाव की बात सोचने की जगह ही नहीं है। उसमें अपने को देने की तत्परता है। उसे आरिभ्र कदा, पैतिभ्र कदा, या कुछ कदा। उसमें जीने के लिए मारने के धोरे को जगह नहीं है। उसमें अस्तु के सामने डटकर स्वयं मर कर जाने की तैयारी की बात है। निश्चय इसमें गहरी निभयता और ऊँचे पराक्रम की आवश्यकता है। स्पष्ट ही इस नीति में अधिक सम्भावना है। भविष्य नहा गढ़ा हो सकता उस पर जा मूल में तृष्णात और परिणाम में यथ है। मजबूती के साथ उस भविष्य की सुनिश्चिता को बाँधना होगा उस अहिंसक नीति पर कि जिसकी जट भद्रा में है और परिणाम जिसका अमाय और निरन्तर है।



जैनेन्द्र-साहित्य

	न० र०		नये र०
उपवास		मयन	७ ००
सुवर्ण	४ ००	सावन्निवार	७ ००
दिवस	४ ००	साहित्य का श्रेय कर प्रेस	७-००
ब्रह्म	०	ये और दे (कमला)	३-०५
मुनीना	३ ०	प्रदोषर	
सांग्र	१ ०	काम, प्रेस और परिवार	३-००
कल्याण	१-००	प्रस्तुत ग्रन्थ	४-००
अध्वन	६ ००	हमारे अन्य प्रकाशन	
यात्रा (प्रथम भाग)	१-०	करलसिंह (उपन्यास)	
यात्रा (द्वितीय भाग)	५ ०	का० मा० पांडुर	२ ००
कहानी-संग्रह		मिह्री का पुत्र (उपन्यास)	
जैनेन्द्र की कहानियाँ		कालिन्दी चरणागिप्राही	००
(सात भागों में) प्रत्येक भाग	२ ०	बबाना 'म० भगवानगान	००
नाटक		बबाना, राह य २	
मन्थानिना	१ ०	म० भगवानगान	१ ७
पाठ और प्रकाश	० ०	वीरन झाड़ी	
नियम		म० भगवानगान	०-७
सूत्र	१ ००	नाति का आर मन्थाना	१ १०

जैनेन्द्रजी का नवानतम

उपन्यास 'अनाप-स्वामी' (प्रथम भाग)

प्रकाशित

पूर्वोदय प्रकाशन, ऋषि भवन,

८, फौजवाजार, दिल्ली

रहनेवाली है। पर सत्य दान से हिंसा का समथन निमाकर शकायदा उसकी तैयारी में लग जाना बिल्कुल दूसरी बात है।

यह दूसरे प्रकार की तीर तैयारी के साथ की जानेवाली हिंसा मान घटा के लिए सज्जा की चीज होनी चाहिए। पर वह उल्टे गारन की बात बनी हुई है—यह हमारी आन की मानन सम्बन्धता की बिडम्बना है। हमारे ज्ञान विज्ञान और संस्कृति-सम्बन्धता पर यह तीव्र प्रश्न है। हमारी सारी विचार-पद्धति की ही यह एक आलाचना है।।

यह कोरा बहम है कि मारने से जीन क मान में कुछ लाभ हो सकता है। अँवों से, अनुमान से या कल्पना से दीजनेवाला ऐसा लाभ मिथ्या दर्शन और प्रमत्त दृष्टि की सृष्टि है। वह निरी गरीचिना है। निश्चय ही वह प्रतीत होनेवाला लाभ प्रतीति से बाहर पकर कोरा शून्य निकल आनेवाला है।

अन एव उसमें बिल्कुल उलटी जीवन-नीति है। वह अहिंसा की है। उसमें अपने बचाव की बात सोचने की जगह ही नहा है। उसमें अपने को देने की तत्परता है। उसे आत्मिक बहा, नीतिक बहा या कुछ बहा। उसमें जीने के लिए मारने के घागे को जगह नहीं है। उसमें अशक्त के सामने हटकर स्वयं मर तरु जाने की तैयारी की बात है। निश्चय इसमें गहरी निभयता और ऊँचे पराक्रम की आन्यकता है। स्पष्ट ही इस नीति में अधिक सम्भावना है। भविष्य नहा गना हो सकता उस पर जो मूल में तृणार्त और परिणाम में व्यय है। भजवृती व साथ उग्र भविष्य की सुनि याद को कौधना हागा उस अहिंसक नीति पर कि जिमकी जड़ थदा में है और परिणाम जिसका अमाप और निरन्तन है।



: जैनेन्द्र कुमार

जन्म १९०५ ई० । आरम्भिक शिक्षा ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, हस्तिनापुर (१९११-१८) प्राइवेट मेट्रिक, १९१९ । काशी विश्वविद्यालय १९१९, १९२० । असाह्याग आन्दोलन में कालिब छोड़ दिया १९२१ । पहली बार जेल १९२४ । फिर जेल १९३०, १९३२ । कोई नौकरी नहीं मिली । अपने को कायमी बेकार कहते हैं ।

साहित्य में प्रवेश, पहला कथा-कमल 'फौसी' से हुआ १९२३ ई० । प्रथम उपन्यास 'परल', १९३० । प्रथम विचार पुस्तक — 'जैनेन्द्र के विचार' १९३७ ।

उनके साहित्य प्रवेश पर जो हलचल मची उसका अनादृत्य कतिपय विज्ञों के इन उद्गारों से हो सकता है—

“ तुम गोकर्ण चाहते हो ? दिखता तो यह जैनेन्द्र है ! ”

“ 'जैनेन्द्र के विचार' जैसा टाक्सडाय को पढ़ते समय ”

“ हिन्दी-साहित्य के ५ शरारतवादी को एक ही टाप ”

ः जैनेन्द्र कुमार

जन्म १९० इ०। आरम्भिक शिक्षा ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, हस्तिना
 (१९११-१८) प्राइवेट मैट्रिक, १९१९। काशी विश्वविद्यालय १ १९,
 १२०। असहयोग आन्दोलन में कालिज छाठ दिया १९२१। पहली
 बार जेल १९२४। फिर जेल १९२०, १ ३२। कोई नौकरी नहीं मिली।
 अपने को कायमी बंकार कहते हैं।

साहित्य में प्रवेश, पहला क्या संग्रह 'फॉसी' से हुआ, १९२९ इ०।
 प्रथम उपन्यास 'परख', १ ३०। प्रथम विचार पुस्तक — 'जैनेन्द्र के
 विचार' १९३७।

उनके साहित्य प्रवेश पर जा हलचल मची उसका अनुमान कतिपर
 विशों के इन उद्गारों से हो सकता है—

“तुम गोर्की चाहते हो! हिन्दुस्तान में कोई गोर्की है या हो
 सकता तो वह जैनेन्द्र है।”

—प्रेमचन्द्र

“‘जैनेन्द्र के विचार’ पढ़कर मैंने ऐसा आनन्द अनुभव किया
 जैसा टाल्सटाय को पढ़ते समय हुआ है, बल्कि उससे भी विषय ”

विशोरलाल मंगरूवाला

“दिल्ली-साहित्य के कथा क्षेत्र में हमन (जैनेन्द्र में) रवि और
 शरत् बाबू को एक ही राय पाया और अब पाया।”

—मेधिलीशरण गुप्त

